वर्ष-2, अंक-7
मूल्य-30 रुपये

देस हरियाणा

ISSN 2454-6679

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

हरियाणा के 50 साल
क्या खोया क्या पाया

- खेती-बाड़ी
- साहित्य-संस्कृति
- समाज
- शिक्षा-सेहत
- शहर-देहात
- लोकधारा
- खेल
- सामाजिक न्याय

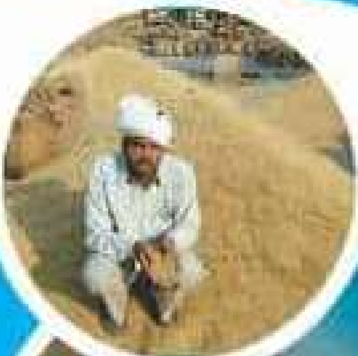

ISSN 2454-6879

देसहरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

संयुक्तांक : 8-9, नवम्बर 2016 से फरवरी 2017

सम्पादक

सुभाष चंद्र

सम्पादन सहयोग

जयपाल, कृष्ण कुमार, अमन वाशिष्ठ

सलाहकार

प्रो. टी. आर. कुंडू , ओम सिंह अशफाक, परमानंद शास्त्री

व्यवस्था

इकबाल, सुनील, विपुला

सहयोग राशि

व्यक्तिगत : एक वर्ष 175 रुपए तीन वर्ष 500 रुपए
संस्था : एक वर्ष 400 रुपए, तीन वर्ष 1 हजार रुपए
आजीवन : पांच हजार रुपए संरक्षक : दस हजार रुपए

ऑनलाईन भुगतान के लिए

बैंक खाता : देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र
खाता संख्या : 50297128780, IFS Code: ALLA0211940

ई-मेल : haryanades@gmail.com, desharyana@gmail.com

WEB : desharyana.in

ISSN 2454-6879

प्रकाशित रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक। समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा।

देस हरियाणा

912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118

मो. : 94164-82156

स्वामी-प्रकाशक-सम्पादक-मुद्रक सुभाष चंद्र द्वारा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा से प्रकाशित

इस बार

सम्पादकीय 3

खेती-बाड़ी

डा. अर्जुन सिंह	हरियाणा कृषि परिदृश्य	47
कुलदीप सिंह ढींढसा	खेती को लाभकारी पेश नहीं बना पाए	51
राज कुमार शेखुपुरिया	खेती में आए बदलाव	52
राजेंद्र चौधरी	संशोधित जीन वाली सरसों क्यों नहीं?	53

समाज

रघुवीर सिंह	आजादी से पहले का हरियाणा	29
राजकिशन नैन	सिमट रही है आज अंजरि में किसानी	33
राजेंद्र सिंह 'सोमेश'	तब और अब	41
डा. सतीश त्यागी	वरिष्ठ पत्रकार	42
कृष्ण स्वरूप गोरखपुरिया	हरियाणा के सम्मुख सामाजिक चुनौतियां	43

सामाजिक न्याय

जगमति सांगवान	महिलाओं के प्रति सामाजिक नजरिया	67
सुमित सौरभ	महिला की भूमिका में बदलाव	69
डा. सुभाष चंद्र	हरियाणा में दलित	70
सुनील 'थुआ'	विकलांगजन : दया नहीं अधिकार	73
नरेश कुमार	हरियाणा में प्रवासी मजदूर	100

शिक्षा

अरूण कुमार कैहरबा	हरियाणा में स्कूली शिक्षा दशा-दिशा	54
सुरेन्द्र ढिल्लों	बाजार के हवाले शिक्षा	61
रेनू यादव	भारत में उच्च शिक्षा और युवा वर्ग	62

सेहत

डा. पंकज गुप्ता	स्वास्थ्य सेवाएं तथा उनकी कीमत	63
डा. रणबीर सिंह दहिया	स्वास्थ्य के क्षेत्र में हरियाणा	64
देवदत्त	नशा: एक विकराल समस्या	65

मीडिया

डा. अशोक कुमार	हरियाणा में मीडिया	91
सहीराम	मीडिया में हरियाणवी महिला	93

शहर-देहात

कृष्ण कुमार	हरियाणवी लोकमानस	122
दुलीचन्द्र रमन	करनाल:कर्ण नगरी से स्मार्ट सिटी	126
जगदीप सिंह	गुड़गांव से गुरुग्राम तक	127

खेल

सरिता चौधरी	हरियाणा की खेलों में उपलब्धियां	102

अगला सोपान

सुरेन्द्रपाल सिंह	आने वाले 10 सालों में हरियाणा	124

बढ़ते कदम

गीता पाल	जीना इसी का नाम है	107

कहानी

अमित मनोज	कच्चे रास्तों का धनी-धोरी	5
हरभगवान चावला	दया धर्म का मूल है उर्फ कुत्ता कथा	20
रोहताश	बिरादरी को मार गोली	25

साहित्य

राजेंद्र गौतम	हरियाणा में हिन्दी कविता	76
ज्ञान प्रकाश विवेक	हरियाणा में हिन्दी कहानी	80
विपिन सुनेजा 'शायक़'	हरियाणा में हिन्दी गज़ल	85
डा. हरविन्द्र सिंह	हरियाणा में पंजाबी भाषा	87
गुरनाम कैहरबां	हरियाणा रंगमंच	89

युवा कलम

मदन भारती की कविताएं 45

कविताएं

मुकेश अग्रवाल-24, राकेश कैत-24, दीपक बिढान-40
दीप चंद निर्मोही-75 इब्ने इंशां-92

गजलें

डा. सुभाष सैनी- 68

लघु कथा

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला-52, शंकर पुणतांबेकर-63, 101
सुरेन्द्रपाल सिंह-106 विजयदान देथा-99, 108

हलचल

'ठहरे हुए पलों में' का विमोचन		104
बूटा सिंह सिरसा	नरेन्द्र दाभोलकर को समर्पित	105
सत्यवीर नाहड़िया	बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मृति समारोह	106
रानी कुमारी	कहानी पाठ:जनवादी लेखक संघ, दिल्ली	108
अजायब जलालाना	तर्कशील सोसायटी सिरसा	90

धमाचौकड़ी

बाल कविताएं रामधारी सिंह दिनकर, डा. आर. अस्थाना,
निरंकार देव सेवक, चंद्रपाल सिंह यादव मयंक, प्रकाश पुरोहित 125

शख्शियत

प्रिंस लाम्बा	दानवीर सेठ चौ. छाज्जूराम	121

लोकधारा

आलेख राजेंद्र बड़गुजर हरियाणा का लोक साहित्य 111
सिनेमा सत्यवीर नाहड़िया हरियाणवी सिनेमा 50 साल 114
पॉप कल्चर इकबाल सिंह हरियाणवी पॉप-बदलते समाज का सूचक 117
कविता विपिन चौधरीं-109, रोशन लाल श्योराण-112
लोक गीत-माजिद मेवाती-113 **गीत**-अरूण कैहरबा-113
गजल रिसाल जांगड़ा-116 **रागनी**-सत्यवीर नाहड़िया-115
लघु कथा-धर्मेंद्र कंवारी-120 **लोक कथा**-कौआ और चिड़िया-110
पाठक पाती-128 **रेखांकन**-सुरेश बरनवाल

इनआमे-हरियाना

हमें जिस रोज से हासिल हुआ इनआमे-हरियाना।
बनारस की सुबह से खुशनुमा है शामे-हरियाना।
न क्यों शादाब हो हर फ़र्दे-ख़ासो आमे हरियाना।
तयूरे-बाग़ भी लेते हैं जबकि नामे-हरियाना।
नसीमे-रूह परवर चल पड़ी है सहने-गुलशन में,
न हो क्यों बुलबुलें शैदा असीरे-दामे-हरियाना।
फरोग़ इतना कहां हासिल हुआ है अहले-आलम को,
कहां कम है अरूजे-आस्मां से बामे-हरियाना।
अयां है इसके हर ज़र्रे से दिन को तूर का आलम
है शब के इससे बढ़कर चर्ख नीली फ़ामे-हरियाना।
रहेंगे किस तरह इस मयक़दा में तश्नालब साक़ी
कि हम भी तो हैं रिन्दाने-मये आशामे-हरियाना।
मिटा देंगे हम अपनी हस्ती-ए-फ़ानी को ऐ नैरंग
न आने देंगे हम लेकिन कभी इल्ज़ामे-हरियाना।

यह नज़म 1966 में रेवाड़ी के मशहूर शायर मरहूम नैरंग सरहदी ने लिखी थी और पहली बार 26 जनवरी 1967 को रेवाड़ी में हुए गणतंत्र दिवस समारोह में गाई गई थी। (इसे विपिन सुनेजा सायक ने उपलब्ध कराया है) हरियाणा से जो अपेक्षाएं थी उसे इसमें पिरोया है

हरियाणा इस वर्ष स्वर्ण जयंती का जश्न मना रहा है। यद्यपि इस जश्न में लोगों का जोश स्वत: स्फूर्त नहीं है, बल्कि सरकार द्वारा पहल की गई है। जश्न के साथ यह अवसर पिछले पचास सालों में हरियाणवी समाज ने क्या खोया क्या पाया पर गहन विचार करने का भी है।

1857 में हरियाणा के लोगों ने पहले स्वतंत्रता संग्राम में बढ़चढ़ कर भाग लिया था, जिससे नाराज होकर अंग्रेजों ने हरियाणा क्षेत्र को दिल्ली से अलग करके पंजाब के साथ जोड़ दिया था। तभी से इस क्षेत्र की सरकारी तौर पर अवहेलना होती रही। सरकारी तौर पर विकास की उत्प्रेरक संस्थाओं का अभाव ही रहा।

पिछले पचास सालों में निसंदेह हरियाणा ने बहुत से क्षेत्रों में गर्व करने लायक उपलब्धियां हासिल की हैं। प्रतिव्यक्ति आय, कृषि-उत्पादन, बिजली-सड़क व संचार साधनों के बाद खेलों में हरियाणा ने अभूतपूर्व प्रगति किया है। लेकिन यह भी सच है कि आर्थिक विकास के बावजूद सांस्कृतिक पक्ष की अनदेखी हुई है। मानव विकास के सूचकांक भी असंतुलित विकास की ओर संकेत करते हैं। मानव विकास सूचकांक में हरियाणा छठे स्थान पर है। लेकिन यदि इसमें से आय के घटक को निकाल दिया जाए तो हरियाणा बारहवें स्थान पर खिसक जाता है। असल में खडंजे-पडंजे को ही विकास मान लिया गया और मानव-संसाधनों का विकास उपेक्षित ही रहा। भौतिक ढांचे पर तो ध्यान दिया, लेकिन समाज की आत्मा उपेक्षित रही।

आर्थिक व ढांचागत विकास के सांस्कृतिक रूपांतरण के अभाव में हरियाणा का सामाजिक ताना-बाना संकटग्रस्त हैं। जिसकी अभिव्यक्ति असंतुलित लिंगानुपात, इज्जत के नाम पर हत्या व दुलीना-गोहाना-मिर्चपुर जैसी दलित उत्पीड़न की दिल दहला देने वाली घटनाओं में हो रही थी। रही सही कसर जाट आरक्षण के दौरान जातिगत हिंसा, लूटपाट व आगजनी ने निकाल दी। मानसिक रोगियों की बढ़ती संख्या, नशे का बढ़ता प्रचलन, आर्थिक संकट के चलते खुदकुशी व आध्यात्मिक आस्था में भारी गिरावट के बावजूद बाबाओं, गुरुओं और डेरों में उमड़ता जन सैलाब सामाजिकता व बौद्धिक जिजीविषा के क्षरण के ही संकेतक हैं।

हरियाणा के समाज को लेकर दो तरह की बौद्धिक प्रवृतियां व प्रतिक्रियाएं हैं। एक के अनुसार हरियाणा नं. वन है जिसमें चहुं ओर विकास की गंगा बह रही है। संस्कृति के नाम पर खण्डहरों में तब्दील होते किलों-हवेलियों, बावड़ियों-पनघटों, परिधान-आभूषणों के क्षरण का अखंड रुदन है और अतीत का गौरवगान है। दूसरी में सांस्कृतिक मूल्यों की गिरावट व सोच के पिछड़ेपन की आत्यंतिक व्याख्या हैं और परंपरा से विलगाव है। दरपेश सामाजिक चुनौतियों से जुझने के लिए आर्थिक-सांस्कृतिक पक्षों पर समग्रता में घोर आत्ममंथन जरूरी है।

अपने अस्तित्व के समय से ही कुछ राजनेता व बुद्धिजीवी हरियाणा की एकरूप व एकदम परिभाषित की जाने वाली विशिष्ट पहचान खोजने के प्रयास करते रहे हैं। इस प्रयास में हरियाणा की क्षेत्रीय, भाषायी व सांस्कृतिक विविधता को दुत्कारा है, जबकि

विविधता हरियाणा की कमजोरी नहीं, बल्कि ताकत है। दरअसल किसी एकरूप पहचान गढ़ने की बजाए इसकी विभिन्न विशिष्टताओं में मौजूद एकसूत्रता को उद्‌घाटित करने की जरूरत है। हरियाणवी समाज व संस्कृति के निर्माण में वैदिक-अवैदिक मतों शैवों-बौद्धों-नाथों-योगियों-सूफी-संतों-सिक्ख गुरुओं आदि विभिन्न धर्मों-मतों, संस्कृतियों-परंपराओं का योगदान रहा है। संकीर्णता-कट्टरता और अंधविश्वास-पाखंड़ों का भी बोलबाला नहीं रहा। विभिन्न संस्कृतियों के तत्वों से बनी संस्कृति में किसी शुद्ध संस्कृति की खोज हरियाणा के जनजीवन के लिए घातक ही साबित होगी।

पिछले पचास सालों में हरियाणा के समाज का पूरी तरह कायाकल्प हो गया है। इस बदलाव में कुछ महत्वपूर्ण समाप्त हो गया है और बहुत कुछ अवांछित शामिल हो गया है। तीस-चालीस साल पहले के सामाजिक संबंध-रिश्तेनाते, जनजीवन के दृश्य, खेती-किसानी में काम आने वाले औजार-उपकरण, खाना बनाने के ढंग-स्वाद शताब्दियों पुराने लगते हैं। शहर के बाजारों के स्वरूप, काम-धंधे और व्यापार के तौर-तरीकों में भी स्पष्ट बदलाव हैं। पुराने बाजारों की महक और बहियों वाले साहूकार-बणिये की जगह बड़े-बड़े शोरूम और मेगा-माल ले रहे हैं। घरों के नक्शे और उनकी आंतरिक सज्जा एक अलग ही समाज की सूचक है। जीवन का हर पहलू क्रांतिकारी ढंग से बदला है और इस बदलाव का पुराने से विशेष मोह नहीं है। इसीकारण शायद वर्तमान पीढ़ी का पचास साल पहले के समाज व संस्कृति से पूर्णत: बिछोह है।

बाहरी आवरण में आमूलचूल परिवर्तन आया ही है, सामाजिक सोच में भी उल्लेखनीय बदलाव हुआ है। समाज की अमानवीय सामंती प्रथाओं व गैर-बराबरी की समस्त संरचनाओं का शोषित-वंचित-दलित वर्गों की ओर से जबरदस्त प्रतिरोध हो रहा है तो समाज के प्रगतिशील तत्वों का भी इन्हें समर्थन मिल रहा है।

वेशभूषा-खानपान की आदतों में भारी परिवर्तन है। धोती-पगड़ी केवल रस्म अदायगी के समय की पोशाक रह गई है। 'देसां में देस हरियाणा जित दूध दही का खाणा' वाले क्षेत्र में सामाजिक उत्सवों और बाजार में फास्ट फूड़ के खोमचों पर टूट पड़ने वाली भीड़ रूचियों में आए परिवर्तन को ही दर्शाती है। 'शहर की दलाली, मुंह चिकणा पेट खाली' की कहावत ने गांव तक पैर पसार लिए हैं। उजले कपड़े और चेहरे की चमक अनिवार्यत: खुशहाली के लक्षण नहीं हैं।

संस्कृति की पोटली की मूल्यवान धरोहर को कहानियों-कथाओं-गीतों तथा अन्य कला-माध्यमों के जरिये ही अगली पीढ़ी को सौंपा जाता रहा है। लेकिन सामाजिक उत्सवों पर गाए जाने वाले गीत मनोरंजन व अपने जीवन की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति न रहकर सगुन की रस्म निभाने का साधन मात्र रह गए हैं। और उनकी जगह ले रहे हैं - हिंसा, उन्माद व कामुकता को बढ़ावा देते वाले पॉप गीत। युवा ही नहीं अधेड़ों और बुजुर्गों की जुबान पर भी ये चढ़ गए हैं।

मनोरंजन के साधनों के साथ उसका चरित्र भी बदल रहा है। परस्परता मनोरंजन की अनिवार्यता नहीं रही। मशीन, इलेक्ट्रोनिक गैजेट्स और मास कल्चर के सानिध्य में विकसित होता नागरिक बाजारोन्मुख है, न कि समाजोन्मुख। खिलौने, कार्टून व धारावाहिक ही नये नागरिक को निर्मित कर रहे हैं। इसका अपने परिवार, समाज व परिवेश से भावनात्मक-संवेदनात्मक संबंध नहीं बन रहा। कहा जा रहा है कि बुजुर्गों को तो बाबाओं और डेरों के गुरुओं ने बींध लिया है और युवाओं को मोबाइल-इंटरनेट ने।

गांव के प्रवेश पर गड़े विकास पट में पंचायत घर, पशु-अस्पताल, दूध डेरी, कोप्रेटिव सोसाइटी आदि का जिक्र तो है, लेकिन पुस्तकालय-वाचनालय विकास पट का हिस्सा नहीं बने। जिस ढांचागत विकास को हरियाणा की उपलब्धि माना जाता था। वो ढांचा अब जर्जर हो रहा है। सरकारी ढांचे के प्रति लोग उदासीन ही रहे। जिनको इसकी हिफजत करनी थी वे ही इनकी ईंटें उखाड़कर ले गए। ग्रामीण समाज की आपसदारी समाप्त प्राय: है। बगैर पक्षपात के सच बात कहने का साहस करने वाले लोगों का सर्वथा टोटा होता जा रहा है। जैसे समाज का नैतिक साहस व बल चुक गया है। हरियाणा की परंपरागत कृषक जातियों का खेती से मोहभंग हो रहा है। छोटी जोत, फसल की बढ़ती लागत और उचित मूल्य न मिलना तो कारण हैं ही। किसानों के एक बड़े हिस्से ने खुद काम करना लगभग छोड़ दिया है। श्रम से दूरी से एक लंपट वर्ग भी पैदा हुआ है जो कमजोरों पर अपना रौब गांठता है। चिंता की बात है कि यही लंपट तत्व अंतर-सामुदायिक झगड़ों-झपटों में जाति-नायक भी बन जाता है। जाति व लठ आधारित राजनीति की खुराक भी यही वर्ग है।

हरियाणा के समाज के समक्ष गंभीर चुनौतियां हैं और समाधान है सर्वांगीण व सर्व समावेशी विकास। यदि विकास सिर्फ कुछ व्यक्तियों, कुछ घरानों या कुछ क्षेत्रों का ही हुआ तो समाज में कभी खुशहाली व शांति से नहीं आ सकती। रविन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था कि जिसको अपने पैरों तले दबा कर रखा है वो आपके पैर जकड़ लेगा और आपको ऊपर नहीं उठने देगा। इसलिए सबके विकास के लिए जरूरी है सबका विकास। इस अवसर पर हरियाणा को दूसरी पारी आरंभ करने की जरूरत है। परंपरागत तौर पर मुख्यधारा की भूमिकाओं से वंचित वर्ग अपार ऊर्जा स्रोत हैं। अपनी क्षमताओं को साबित करने की बेचैनी भी इन वर्गों में दिखाई दे रही है। सरकार-प्रशासन, नागरिकों-सामाजिक संगठनों, साहित्यकारों-संस्कृतिकर्मियों सबको तेजी से बदल रहे हरियाणा के समाज को सही दिशा में ले जाने के हरसंभव प्रयास करने होंगे।

'देस हरियाणा' का यह यह संयुक्तांक (८ व ९) हरियाणा की स्वर्ण जयंती के अवसर पर समाज के विभिन्न क्षेत्रों में क्या खोया - क्या पाया पर केंद्रित है। इसमें हरियाणा के समाज, खेती-बाड़ी, शिक्षा-सेहत, सामाजिक न्याय, साहित्य, मीडिया, शहर-देहात, लोकधारा पर आलेख हैं। हम लेखकों के आभारी हैं उनकी प्रतिबद्धता से ही यह संभव हो सका है। उम्मीद है कि उत्सवी माहौल में यह अंक हरियाणा समाज के समक्ष दरपेश चुनौतियों की ओर ध्यान आकृष्ट करेगा।

जैसा भी है अंक आपके हाथों में है।

सुभाष चंद्र

कच्चे रास्तों का धनी-धोरी

❏अमित मनोज

जिमाड़ों में हमारी खास रूचि हो गई थी। स्कूल में पढ़ाते हुए हम और चीजों की बजाय खाने-पीने में ही ज्यादा ध्यान देते। आस-पास के जिमाड़ों में हम सहर्ष शामिल होते और दूर के जिमाड़ों में भी निमंत्रण मिलने पर किराये की गाड़ी से पहुंच जाते। हममें से पीने वाले साथी इस तरह की स्वतंत्रताओं का बड़ा फायदा उठाते और पूरे रास्ते पीते हुए चलते। पीने वालों के लिए ऐसी जगहों पर हाजिरी भरना ही काफी होता और हम शाकाहारी लोगों के लिए हाजिरी के साथ-साथ भर पेट खाना भी जरूरी होता। असल में पीने वाले और मांसाहारी लोग हम शाकाहारियों को बहुत हल्का समझते और जब-तब बात होने पर वे हमारे साथ दोयम दर्जे का व्यवहार करते। सामूहिक पार्टियों में बराबर का हिस्सा देने के बावजूद हमारे हिस्से अधिक कुछ न आता। हमें थोड़ा बहुत ठंडा, फ्रूटी या सलाद उनके साथ मिल जाता और इसे हम बहुत बड़ी बात मानते। तब पीने वाले लोग बड़े खुश होते कि उन्होंने न पीने वालों को अपने में मिलाकर काफी फायदा उठा लिया।

एक दिन हम न पीने वाले शाकाहारियों ने एक तरकीब निकाली। हमने साफ कह दिया कि यदि मांसाहारी मुर्गा खाएंगे तो हम भी अपनी पसंद का कुछ मंगवाएंगे। यदि वे दारू पीएंगे तो हम उतने ही मूल्य का कोई पेय पदार्थ पीएंगे। फिर होता यह कि एक मुर्गे के उन्हें दो-ढाई सौ खर्च करने पड़ते तो हमारी पसंद का भाव भी दो-ढाई सौ रुपये किलो से कम न होता। यूं बराबर खिंचने पर हम तो खुश होते पर वे मायूस। इसलिए कि अब सामूहिक पार्टियों का खर्च हजार से ऊपर ही आता जो और दिनों छह-सात सौ पर ही रुका रहता। मांसाहारियों से हमें फिर कोई शिकायत नहीं रही और हम शाकाहारी भी सामूहिक पार्टियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगे।

बहुत बार हम स्कूल में ही पार्टी का आयोजन करते। करतार भाई गजब की पनीर वाली सब्जी बनाता और हम देसी घी के साथ मेसी रोटी खाते तो बस खाते ही रह जाते। बर्फी या गुलाब जामुन भी साथ में होते तो खूब मजा आता। एक बार एक नई मैडम ने आकर हमारी इस तरह की सामूहिक पार्टियों में 'अइयां-कुतइयां' मिला दी जिसका सहयोगी हमारा ही एक साथी बना हुआ था जो किसी भी बात पर सामने वाले की बेइज्जती के लिए बहुत जोर से हंसता था और वह हंसी किसी को भी इस तरह चुभती कि दोस्ती लगभग-लगभग दुश्मनी में बदल जाती। इस तरह न जाने कितने साथी नाराज हो उससे अलग-थलग रहने लगे और वह साथी स्कूल की एकमात्र मैडम के साथ गप्प लड़ाने में अपनी बहुत बहादुरी समझने लगा। इससे हुआ यह कि नई मैडम के प्रचार भाषणों से बचने और उससे चिढ़ के कारण स्कूल में सामूहिक पार्टियों का आयोजन बंद कर दिया और हमने सबकी इच्छा से स्टेट हाइवे पर स्थित एक होटल चुन लिया जो स्कूल से पूरा पच्चीस किलोमीटर दूर था। नैतिकता के नाते हम उस अध्यापक को भी साथ ले जाने लगे। होटल में हम अपनी पसंद के व्यंजन मंगाते और मजे से खाते। अगले दिन हमारी पार्टी का आंखों देखा हाल वह साथी ही मैडम को सुनाता और मैडम की जीभ ललचाती। साथी किसी भी तरह मैडम के नजदीक रहना चाहता और इसीलिए उसने चुगली-चाटे का सारा डिपार्टमेंट बड़ा राजी हो संभाल लिया था। फिर भी हम इकट्ठे थे और लगातार अपनी पार्टियों का आयोजन कर रहे थे। इधर-उधर के जिमाड़ों में भी राजी-राजी जा रहे थे।

स्कूल मिडिल था और सबसे बड़ी बात यह थी कि यह मेन रोड से हटकर था। यही स्कूल अगर ओन-रोड होता तो हमारी मौज-मस्ती इतनी नहीं होती। ओन-रोड पर जब मर्जी कोई अफसर मुंह उठाकर आ जाता है। डांट भी सुनो और नखरे भी सहो। अगले दिन अखबार में भी पढ़ो कि फलां-फलां स्कूल में इतने अध्यापक गैरहाजिर पाये गए। अखबार में नाम पढ़ इन अफसरों को बड़े मजे आते हैं। कुछ तो घूमते ही इसलिए रहते हैं कि ज्यादा से ज्यादा उनका अखबार में नाम छपे और इलाके के मास्टरों में उनके नाम की इतनी दहशत फैल जाए कि डरता मास्टर क्लास से बाहर ही न जाए। पर, अफसर मास्टरों को जानते नहीं। सरकारी को तो बिलकुल नहीं।

ऐसा नहीं है कि हमने कभी पढ़ाया नहीं। प्राइवेट स्कूल में बहुत पढ़ाया है जी। उस समय तनख्वाह भी कितनी कम थी और मैनेजमेंट वाले पूरा दिन तानकर रखते थे। महीने वाले दिन जो रुपल्ली देते थे वो तो घर जाते-जाते खर्च हो जाया करती थी। फिर महीने भर उधार-सुधार चलती और किसी तरह जीवन की गाड़ी आगे चलती।

यह तो शुक्र हुआ कि हम लोग जैसे-तैसे सेट्टिंग करके इस शिक्षा विभाग में चार चांद लगाने आ गए। शुरू में आये तो क्या सपने थे। मैं अपनी बताऊँ तो विश्वास नहीं होगा आपको। जिस दिन ज्वाइन किया था यह कसम खायी थी कि पूरी ईमानदारी से काम करूँगा। हालांकि (यह बताने की बात नहीं है, पर धीरे से बता देता हूँ कि मुझे भी लगने के लिए मेरी मां को अपने कुंडल तक गिरवी रखने पड़े थे।) मेरी यह कसम छह महीने बाद ही टूट गयी जब मैंने देखा कि हमारे स्कूल में पढ़ाने की कोई परम्परा ही नहीं है। प्राइमरी हो या मिडिल, दोनों में एक से बढ़कर एक हैं। हमारे हैडमास्टर एक बुजुर्ग टाइप व्यक्ति हैं या कहिये कि बुजुर्ग ही हैं जो इलाके में भैंसों के एक बड़े सौदागर के रूप में प्रसिद्ध हैं। पत्नी उनकी

बहुत पहले हैडमास्टर साहब के किसी और से प्रेम-प्रसंग के बारे में पता लगने के कारण यह दुनिया छोड़कर जा चुकी। तब से हैडमास्टर साहब का दिन कहीं और ही उगता-छुपता है। नयी-नयी भैंस देखने के पीछे वे जरुरतमंदों को भी तलाशते रहते हैं। इसीलिये ऐसा होता कि हैडमास्टर साहब किसी किसी के यहां रात-वात को भी भैंस देखने चले जाते। यह हमें अगले दिन बड़ी आसानी से पता चल जाता। हम स्कूल में पहुँचते तो हैडमास्टर साहब नीम की दातुन करते हुए स्कूल में मिलते वहीं टंकी पर नहाते और वहीं अपने सफ़ेद कुर्ते को दोबारा धोकर पहनते। घंटे भर में गीला हुआ कुरता ऐसा हो जाता कि वह पहना जा सके। सर्दियों में धोने-वोने की जरूरत इसलिए नहीं पड़ती थी कि हैडमास्टर साहब को सर्दियों में सर्दी बहुत लगती थी और इसलिए न तो वे सर्दी में कोई परेशानी उठाना चाहते थे और न ही वे रोज-रोज अपने कुर्ते को बदलने में विश्वास करते थे।

हैडमास्टर साहब की खाने-पीने की स्टाइल बड़ी जबरदस्त थी। रोटी खाए तो उन्हें महीनों-महीनों हो जाते थे। सुबह चलते तो एक फौजी मग्घा दूध का मारकर चलते और स्कूल पहुँचने से पहले वे नांगल सिरोही के कन्हैया लाल की चाय की दुकान पर एक किलो दूध गर्म करवाते। पाव बर्फी तुलवाते और गुनगुने दूध में ओला-सोला कर उसे एक ही सांस में पी जाते। तब हैडमास्टर साहब अपने कुर्ते को थोड़ा ऊपर करके पेट पर हाथ फेरते और जोर से डकार मारते। फिर वे घड़ी देखते और स्कूल की ओर सरकना शुरू करते।

स्कूल में हम लोग भी हैडमास्टर साहब के पहुँचने तक एक-एक चाय पी चुके होते। बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव अपना सारा ध्यान मिड-डे-मील में लगा देते। स्कूल में एक मिड-डे-मील ही था जो बहुत कुछ कमाकर देता था। चाय का सारा खर्चा मिड-डे-मील में ही एडजस्ट किया जाता था। कई-कई बार मिड-डे-मील के मामले में अध्यापकों के सिर भी फूट जाते थे और एक बार तो मिड-डे-मील को लेकर स्कूल के सारे मास्टरों की पंचायत भी हुई थी। उन दिनों मिड-डे-मील का चार्ज मुरारी लाल जी के पास था और यह पूरे साल भर से उन्हीं के पास था। यह अघोषित और अलिखित प्रस्ताव था कि मिड-डे-मील में जितनी भी राशि बचेगी, उसमें एक बड़ी पार्टी के अलावा स्कूल का भी कुछ काम किया जायेगा। मुरारी लाल जी बारह महीने से कमा ही रहे थे। उनकी तरफ खूब बेईमानी को छुपाने के बाद भी पूरे एक लाख रुपये निकलते थे। स्कूल के दो कमरों की छतें न जाने कितने दिनों से टपक रही थीं और यह सोचा गया था कि मिड-डे-मील के पैसों से इस बार स्कूल के चार कमरों की छतें ठीक करवाई जाएंगी। दो छतों के रुपये ऊपर से आये थे जिसे तीन-चार महीने पहले ही ठीक करवा दिया गया था। बावजूद इसके वे छतें फिर से टपकने लगी थीं। छत का काम शेर सिंह जी ने करवाया था और सारा स्कूल क्या गांव भी जानता है कि उन छतों में मसाला तक ठीक से न लगा था। कायदे से छत का काम हैडमास्टर साहब की देख-रेख में होना था, पर हैडमास्टर साहब ने शेरसिंह जी पर तरस खाते हुए दस हजार बचाकर एकमुश्त बचाकर देने को कह सारा काम-धाम शेरसिंह जी को सौंप दिया था। शेरसिंह जी की यह बदकिस्मती थी कि जिस दिन छत के लिए ठेके में मिस्त्री को तैयार किया, उनका एक्सीडेंट हो गया था और घर पहुंचे तो उन्हें पता चला कि उनकी भैंस की ताज़ा बियाया पाड़ा कुछ देर पहले ही मरा है। यही नहीं भैंस का एक थन भी खराब हो गया है जिसमें से दूध ही नहीं निकलता। तब शेरसिंह जी की घरवाली ने उनको सलाह दी थी कि आप स्कूल की बेईमानी में ना पड़ो। बेईमानी की कमाई सबको हजम नहीं होती जी।

शेर सिंह जी अपना सा मुंह लेकर रह गए। घरवाली की बात उनको ठीक भी लगी। दूसरे ही क्षण लगा कि स्कूल में क्या जवाब देंगे। सब कहेंगे--निभा ली जिम्मेवारी। बात तो सब बना लें। काम करें तब पसीना आता है। बिना हड्डी की जीभ को तो जब मर्जी देकर मार लो !!

शेर सिंह जी ने फिर एक चालाकी चली। सोचा कि सांप भी मर जायेगा और लाठी भी न टूटेगी। अगले दिन स्कूल की छुट्टी के बाद रमेश सुखसहायक को रोक लिया, जो बजरंगबली का भगत था। तब रमेश सुख सहायक उर्फ भगतजी ने पानी का जग भरकर कसम खायी थी कि स्कूल की छत डलवाने में वह कोई भी बेईमानी नहीं करेगा। एक तो वह बजरंग बली का भक्त है और हर मंगलवार बाबा के बणी वाले मंदिर पैदल जाता है। यही नहीं पूरे गांव में न जाने कितनी बार वह बाबा के सत्संग करवा चुका और भक्तजनों की कृपा के रूप में इकट्ठे हुए दसों हज़ार सिक्कों को वह कब से संभालकर रखे हुआ है। उसकी ईमानदारी का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि उन सिक्कों को वह हर महीने के पहले मंगलवार को गिनता है और हमेशा पूरा पाता है। इसके अलावा भी यह स्कूल उसके गांव का स्कूल है और यह भी कि उसके बाबा ने इस स्कूल की नींव रखने वाले मिस्त्री को पहला हुक्का अपने घर से लाकर पिलाया था।

'कैसी बात करता है रमेस! तुझपे बिस्वास ना होता तो मैं तेरे को थोड़ी न कहता।' शेरसिंह जी ने रमेश के लम्बे-चौड़े बयान को रोकते हुए कहा।

तब का दिन था। शेरसिंह जी तो घर पर आराम से अपनी भैंस के खराब हुए थन को ठीक करने में लगे रहे और उधर स्कूल में रमेश सुख सहायक उर्फ़ भगतजी ने जाने क्या किया, क्या न किया। सावन की पहली बारिश में ही कमरे की छतों ने रामजी के सामने हाथ जोड़ लिए कि बस अब और रहने दो।

शेरसिंह जी क्या कहते। वे रमेश सुखसहायक की तरफ देखते भी तो रमेश दूर से ही हाथ जोड़ लेता-'मन्ने कुछ ना करो जी। सीमेंट ही खराब आयगी आग्गा सी।'

तब मास्टरों की ही घरेलू पंचायत ने मिड-डे-मील के धनी-धोरी मुरारी लाल जी की तरफ देखा था। मुरारी लाल जी ने बड़ी ही शालीनता से कहा था-'वे पूरी कोशिश करेंगे कि मिड-डे-मील में थोड़ा और बचे, लेकिन मैं हिसाब का पक्का आदमी हूँ और तय मानक से ज्यादा बेईमानी करने में असमर्थ हूं।'

सबने इस बात पर चुप्पी लगा ली। जानते थे कि थोड़ा सा बोलते ही लठ उठ जायेंगे। दूसरा जो भी बोलेगा उसे ही मिड-डे-मील का चार्ज पकड़ा दिया जायेगा और तब कोई कितना ही फूंक-फूंक कर कदम धर ले, मिड-डे-मील की दलाली से बच नहीं पायेगा।

एक दिन मामला थोड़ा अलग खिंच गया। दो कमरों की आई ग्रांट में तीन मास्टर और रम गए। जब से जेबीटी की इंटर्नशिप वाले आये हैं, प्राइमरी मास्टरों को काम थोड़ा कम हो गया। हैडमास्टर साहब के लिए खाली मास्टरों को संभालना थोड़ा

मुश्किल होता जा रहा था। हैडमास्टर साहब को हमेशा डर लगा रहता कि जब भी वे गांव में कोई भैंस देखने जाएँ, पीछे बचे मास्टर पता नहीं कब कोई दूसरी भैंस देखने चले जाएँ। तब बदनामी सारी की सारी हैडमास्टर की होगी।

यह सही भी था। तीनेक साल पहले इसी स्कूल के एक मास्टर ने आठवीं की लड़की को सवाल समझाते हुए हाथ पकड़ लिया था, तब लड़की के साथ वाली लड़की ने उस लड़की के घर जाकर बताया तो उस मास्टर की इतनी पिटाई हुई थी कि वह खून थूकता बदली करवा के भागा था। तब से हैडमास्टर साहब स्कूल के मामले में थोड़ा हिसाब बरतने लगे थे। उनका यह पक्का हिसाब था कि 'मास्टर को जो कुछ करना हो, अपने स्कूल में नहीं करना चाहिए। गंद खाने के लिए भतेरी दुनिया पड़ी है'।

बावजूद इसके नए-नए आये मास्टर बात समझने को तैयार ही नहीं होते। अलबत्ता तो क्लास में जाते ही नहीं, जाते तो ठीक उस वक्त जब इंटर्नशिप वाली कोई युवा कन्या क्लास में बच्चों को होमवर्क दे रही होती। तब क्लास का असली इंचार्ज कुर्सी खींचकर भावी अध्यापिका के पास बैठा-बैठा बच्चों की कापियों में दिया जाता होमवर्क देखता जाता और न जाने कब वह इस देखने वाले समय में युवा मैडम से ऐसी संगति बिठा लेता कि फिर सुबह आये बच्चे होमवर्क के रूप में क्या लेकर घर जाते, खुद ही स्थायी अध्यापक और भावी अध्यापिका नहीं जान रहे होते। कुछ इतने शर्मीले होते कि इंटर्नशिप वालों के आने के बाद एक दिन भी क्लास में नहीं जाते और सारा दिन अखबार में छपी वर्ग पहेली को इस तरह भरते जैसे कि उनसे बुद्धिमान दूसरा मास्टर इस धरती पर तो कम से कम है ही नहीं।

एक दिन बारिश बहुत तेज आ गई। तब स्कूल में पूरे ढाब के ढाब भर गए। मौसम की नजाकत को देखते हुए शेरसिंह जी ने पकौड़ों का नाम ले दिया। फिर क्या था सुखलू मास्टर ने रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजीको गांव की दुकान से आलू-प्याज, बेसन-हरी मिर्च लाने का ऑर्डर दे दिया। रमेश ने पहले पैसों की मांग की तो सुखलू मास्टर ने बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव की तरफ देखा। बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादवने सबको सुनाते हुए सुखलू मास्टर को कह दिया- 'कमाए तो दुनिया और पैसों के लिए मेरी तरफ देखो।' यह 'कमाए' और 'दुनिया' शब्द स्कूल पर बड़े भारी पड़े। मुरारी लाल जी को लगा कि यह तो सीधा-सीधा उन्हीं को टारगेट किया गया है। या तो वे दरी पर आराम से लेटे थे। बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव के बोलते ही उठ कर बैठ गए और छूटते ही बोले-'कमाने के लिए कालजा चाहिए। जो मूसी तक को मारने में घबराए, वो क्या घंटा कमाएगा।' 'घंटा' शब्द यहां भी चुभने वाला था और यह तो सीधा-सीधा बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव को लगा कि उन्हीं के लिए बोला गया है।

बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव

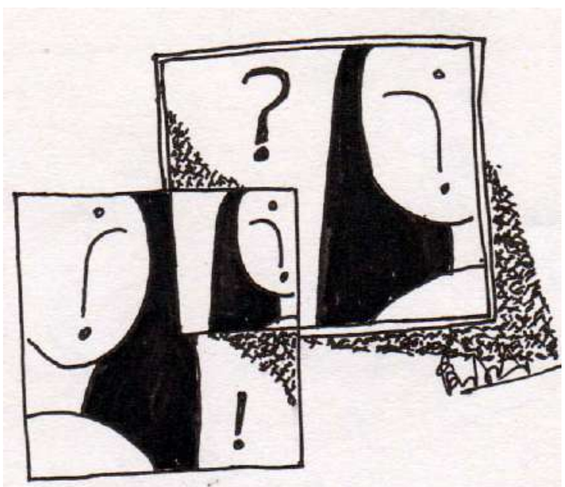

बोले-'तुम तो शुरू से ही बेईमान रहे हो। पिछले स्कूल में भी तुमने क्या किया था, जानता हूँ।'

'क्या जानते हो, बताओ न। क्या किया था मैंने, पता तो चले मुझे भी।' मुरारी लाल जी तुनककर बोले।

'बस मेरा मुंह मत खुलवाओ, मिड-डे-मील का नाज किस बनिये के यहां बेचकर आते थे, बता दूँगा तो नीचे से धरती निकल जायेगी।' बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव ने उंगली तानते कहा।

'... ... ...' मुरारी लाल जी कुछ बोलते,बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव ने और छौंक मार दिया-'और यहांभी तुमने कौनसी कम कसर घाल रखी है। स्कूल के ही खाए बैठे हो लाखों रुपये...'

बस फिर जो सीन बनना था, वह किसी भी फिल्म से कम न था। पिटे तो नहीं, बाकी कसर रही नहीं। साइंस और एसएस मास्टर तो चाह रहे थे कि सिर-विर और फूट जाए तो मजे आ जाएँ। इससे बढ़िया मजा तो पकौड़ों में भी नहीं आता।

आवाज़ सुनकर प्राइमरी ऑफिस के इर्द-गिर्द बच्चे इकट्ठे हो गए। मिडिल से रामप्रकाश सर और स्कूल की एकमात्र मैडम कविता बहनजी भागे आये। हैडमास्टर साहब उस वक्त थे नहीं। वे गांव में एक दिन पहले ही बियाई भैंस देखने गए थे। बच्चों के साथ-साथ इंटर्नशिप वाले तीनों-चारों भावी अध्यापक और अध्यापिकाएं भी ऑफिस की तरफ आ गए थे। पीटीआई जसपाल ने यह देखा तो बच्चों को ऑफिस से बाहर निकल कर डंडा दिखाते हुए बोल दिया- 'जाओ छुट्टी हो गई ...'

बच्चों का क्या था। स्कूल में लड़ाई कोई नयी बात थोड़े न थी। वार-त्यौहार मास्टरों को लड़ना भी शोभा देता है। स्कूल में मास्टर नहीं लड़ेंगे तो कौन लड़ेगा। अब बच्चे पढ़ते कहां हैं जो वे पढाएं। नहीं तो मास्टरों में कोई कमी थोड़े ही है। सारे के सारे बड़ी-बड़ी डिग्रियां लिए बैठे हैं। बच्चे बस्ता लादे पहले ही तैयार थे। छुट्टी का नाम सुनते ही गेट की तरफ भाग पड़े-'छुट्टी ...'

भागना रोज का था, पर हाय रे किस्मत! भागते-भागते दो बच्चे एक-दूसरे से उलझकर गिर पड़े और क्या था कि पकौड़ों का मजा किरकिरा हो गया। दोनों बच्चों का सिर फूट गया। एक के थोड़ी ज्यादा लगी थी। दूसरे की भी सारी शर्ट खून से भर गयी थी। शेरसिंह जी और एसएस मास्टर तेज भागकर बच्चों के पास गए और दूसरे साथियों की मदद से हल्की-हल्की आती बारिश के बीच भागकर नांगल सिरोही के सरकारी अस्पताल में लेकर गए।

हैडमास्टर के पास कैसे यह खबर पहुंची। मास्टरों के लड़ने की खबर गांव में पहुंचाई तो पहुंचाई किसने। हैडमास्टर साहब पायजामा संभाले स्कूल में आये। उनका सांस चढ़ा हुआ था और उनके साथ गांव के ही दो-तीन जने थे। उनमें से सबसे कम उम्र वाला आदमी गांव की सरपंच का पति

था। वह हमेशा सरपंच की ही भूमिका में रहता था। सब कहते भी उसे 'सरपंच' ही थे। हैडमास्टर साहब बहुत चिंतित हुए। सरपंच और दूसरे लोगों को कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी को खीजते हुए कहा–'रमेस, पाणी पिया पहल्यां।' रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी गांव का चौधरी था। सरपंच पति दलित जाति से था। तब यह कैसे हो सकता था कि रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी सरपंच पति को पानी पिला दे।

––'खुद पीओ उठ कै न', रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी ने सीधे बोल दिया।

हैडमास्टर साहब पहले ही स्कूल के पंगों से दुखी थे, इसलिए बात को आई गई कर बरामदे में से भाग रहे एक बच्चे को रोका। पहले उसे इस तरह भागने के लिए डांटा। फिर उसे पानी लेने को कहा।

'इभी गयो ही थो मैं। जाता ही दिलबाग की काल बियाई भैंस की पूंछ कै हाथ लगायो ही थोक् आणकी लड़ाई की खबर पहुंचगी। इतनी बड़ी उम्र कां नै लड़तां शर्म तो कती ना आवै।' हैडमास्टर ने सरपंच पति की ओर मुखातिब होते कहा।

'और यो तो थम सौ गुरुजी। नहीं तो आं स्कूल म्हं लीलाराम जिसा कांड रोज होवीं।' सरपंच पति ने साथ आये आदमी की तरफ देखते हैडमास्टर साहब को कहा। 'मैं भी योई सोचूं, मेरा बिना आं स्कूल नै कौन समालैगो।'

थम तो गुरुजी कदे सीं ठाठी रह्या सो। हामनै भी तो थम ही पढ़ाया करया करै था। मेरो तो दिमाक ही ना चाल्यो गुरुजी। आ`मैं तो थारी सेवा म्हं ही लाग्यो रह्या कर थो। मन्नै तो बालक भी थारा कनै घाल राख्या सीं। थारी बोहड़िया तो बोल्ली अक पराईवेट म्हं बालक पढ़ावांगा। सरकारी स्कूल म्हं तो मास्टरां नै पढ़ानू छोड़ दियो। आजकाल तो गरीब सी गरीब भी पराईवेट म्हं पढ़ावै से। फेर थम तो गांव का सरपंच सो। मैं ही नाटग्यो। थारा सी बढ़िया कुण पढ़ा सकै से गुरुजी।'

हैडमास्टर साहब के दिमाग में या तो दिलबाग की भैंस की दूध भरी ऊंडी घूम रही थी। या अब अपने चेले और सरपंच पति की ये बातें घूमने लगी। –सही तो कहती है सरपंचनी। इब कित पढ़ाई सीं मास्टर। खुद उन्हें ही कितने साल हो गए क्लास में गए। आठ साल से तो यूँ का यूँ याद है। घरवाली मरे पाछे एक दिन भी तो क्लास में जाकर नहीं देखा। कितने बच्चे आये, कितने गए, गुरुजी को अब याद कहां था। वे तो रोज कोई न कोई भैंस दिमाग में लिए स्कूल में घुसते और कोई न कोई भैंस दिमाग में लिए घर भीतर बड़ते। अब उनका सारा ध्यान भैंसों की खल और बिनौलों में लग गया। कभी उनके सवाल समझाने का तरीका इतना शानदार होता था कि बच्चे को घर जाकर दोहराने की जरुरत नहीं होती थी।

उन दिनों दो ही मास्टर होते थे पूरे स्कूल में और क्या मजाल की कभी कोई छुट्टी ली हो। दोनों में इतना तगड़ा कम्पीटिशन होता था कि पूछो ही मत। न जाने दोनों जनों ने कितने विद्यार्थियों का दाखिला जवाहर नवोदय विद्यालय में करवाया था। और वजीफा तो ब्लॉक में सबसे ज्यादा गुरुजी के स्कूल के बच्चों को ही मिलता था। तब यह स्कूल जिले के टॉप टेन स्कूलों में आता था। बीच के दस सालों को छोड़ दिया जाए तो गुरुजी की सारी उम्र इसी स्कूल में ही कटी है। दस साल बाद प्रमोट होकर आये तो सीनियर होने के नाते स्कूल के इंचार्ज बन गए और सबके लिए 'हैडमास्टर साहब' बन गए।

––सही तो कह रहा है लक्खा। पिछले दस सालों से गुरुजी ने पढ़ाया ही कहां है। और गुरुजी ने ही कहां, अब पढ़ा ही कौन रहा है। सबके सब मास्टर तो निन्यानवे के फेर में पड़े हुए हैं। कभी किसी क्लास में सौ–सौ बच्चे होते थे। आज पूरे स्कूल के इतने नहीं ठहरते। कुछ स्कूलों में तो आठ–आठ, दस–दस बच्चे रह गए हैं। जब से सुरीना राजन ने शिक्षा के बदलाव के लिए कम बच्चों वाले स्कूलों को एक–दूसरे में मर्ज करने की पॉलिसी बनाई है, बहुत से मास्टरों और गांवों की नींद ही उड़ गयी है। अब सबको खतरा है। किसी तरह नौकरी बची रहे। मास्टरों के हाल देखकर ही तो अनपढ़ लोगों तक ने अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में पढ़ाना शुरू कर दिया।

––सही तो हो रहा है। मेरे जैसे की नौकरी तो जैसे–तैसे पूरी हो जायेगी। ये जवान बालक क्या करेंगे। सारे अभी से निठल्ले बैठना सीख गए हैं। सोच रहे हैं गुरुजी। योगेश को देख लो। सारे दिन बहाने मारता रहता है। पिताजी बीमार है। मां बीमार है। सुबह आता है और या तो गुडगांव एमएलए के यहां बैठा रहता है या फिर नारनौल प्रोपर्टी बिल्डर के यहां। कहता है दोस्त है वह बिल्डर उसका। झूठा। एक नम्बर का। थूकते हैं गुरुजी। यह भूलकर कि कोई उनके पास बैठा हुआ है। खुद करोड़ रुपये फंसा रखे हैं। लोगों के किल्ले बिकवाता है और मोटा कमीशन मारता है। जब भी कहता हूं –साहब दो महीने और दे दो, दो महीने और दे दो...दो के जाने कितने महीने हो गए। सुधरता नहीं। साला...

हैडमास्टर साहब के मुंह से गाली निकली तो सरपंच पति लक्खा ने कहा– 'क्या हुआ गुरुजी ! ठीक तो सै सबकिमी।'

हैडमास्टर साहब ने बैठने की थोड़ी सी अपनी पोजीशन बदली। फिर सोच में डूब गए।

––सबका ध्यान मिड–डे–मील और झूठी पर्ची लगाने में रहता है। एक–आध मास्टर नया–नया आकर पढ़ाने लगता है। बड़ी–बड़ी बातें करता है। फिर दो–एक साल बाद क्या होता है उसे कि वह सबसे ज्यादा कामचोरी और हरामखोरी करने लगता है। जब से यह मोबाइल चला है, सारे दिन अंगूठे के सहारे जाने क्या करता रहता है। कभी कभी लगता है। अंगूठा घिस तो नहीं जायेगा। अलबत्ता तो क्लास में जाते नहीं। जाते हैं तो पढ़ाते नहीं। पढ़ाते भी होंगे तो चार बार तो फोन को छेड़–छेड़ कर देखेंगे कि किसी का कुछ लिखा आ तो नहीं गया।

प्राइमरी के दो बच्चे पानी लेकर आये तो हैडमास्टर साहब आज के स्कूल में लौटे। थोड़ी देर बैठे। फिर एक जने को निर्देश देकर कुछ सोचते हुए सरपंच पति लक्खा और दूसरे आदमियों के साथ गांव की ओर ही निकल गए।

अगले तीन दिनों तक हैडमास्टर साहब स्कूल में आये नहीं। पास के गांवों में ताज़ा बियाई भैंस देखने गए थे। इसी बीच किसी की सलाह पर हैडमास्टर साहब ने अपने ही गांव के एक चमारों के लड़के को आधी बंटाई में रेवड़ लाकर दिया था, ताकि दो पैसे आते रहें और अपनी लड़की की शादी में बिना किसी की परवाह किये ढंग की चार पहियों वाली गाड़ी दे सकें। बकरियां संभाले भी उन्हें कई दिन हो गए थे, नहीं तो हैडमास्टर साहब स्कूल से बेइंतहा प्यार करते थे।

हैडमास्टर साहब के नहीं आने से स्कूल के कई जने निराश से ही हो गए थे। तीन दिन तक अपने मन का कर पाने में

उन्हें दिक्कत महसूस हो रही थी। हैडमास्टर साहब के सामने कितने सारे उलटे-सीधे सुझाव वे देते तो उनकी भी आत्मा ठंडी होती और उन्हें भी लगता कि उनका भी योगदान इस स्कूल के निर्माण में है।

मुरारी लाल जी मारे अपमान के क्लासों में नहीं जा रहे थे। उन्होंने मोनीटर को बुलाकर कह दिया था...'थोड़ा क्लास देख लेते। मेरी तबीयत खराब है।'

'समझ गया गुरु जी।'-मोनीटर कहकर क्लास की तरफ भागा था और जब क्लास में जाकर मोनीटर ने गुरु जी का सन्देश सुनाया तो गलती से काम न करने वाले विद्यार्थी उछल पड़े थे। मुरारी लाल जी पढ़ाने वाले मास्टरों की श्रेणी में आते थे। वे पढ़ाते भी थे, पर जब से उनको मिड-डे-मील का चार्ज दिया गया, सारे दिन हिसाब-किताब में ही उलझे रहने लग गए। तब उनका क्लास में जाना धीरे-धीरे कम होता गया और वे कटमा क्लास लेने के आदी हो गए।

स्कूल के दो ग्रुप बन गए थे। एक में बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव के समर्थक थे जो सत्ता में परिवर्तन चाहते थे। दूसरे में मुरारी लाल जी थे जिनके पास स्कूल की सत्ता थी। मिड-डे-मील के अतिरिक्त सालाना दस और पन्द्रह हजार की ग्रांट को एडजस्ट करने की जिम्मेदारी जिस मास्टर की थी, वह भी मुरारी लाल जी का खास था और इसलिए उनकी दोस्ती फेविकोल के जोड़ की तरह बहुत मजबूत दिखने वाली दिखती थी।

चौथे दिन हैडमास्टर साहब अपनी टांट खुजाते स्कूल में प्रविष्ट हुए तो मास्टरों के चेहरे खिल गए। आज दूध का दूध और पानी का पानी हो जायेगा। हैडमास्टर साहब भी मन में करके आये थे कि वे खातों की अदला-बदली कर देंगे ताकि स्कूल की शांति बनी रहे और उनका भैंस-वैंस देखने का धंधा आराम से चलता रहे। इस तरह के लड़ाई-झगड़े हुए तो यह स्कूल तो अफसरों का अड्डा ही बनकर रह जायेगा और आकर कोई भी कह देगा कि हैडमास्टर साहब आपके होते हुए भी स्कूल डिस्टर्ब होता है तो इसका तो राम ही रुखाला है।

हैडमास्टर साहब आये तो ग्राउंड में इधर-उधर झुण्ड बनाये खड़े बच्चे भाग कर क्लासों में घुस गए। एकाध मास्टर जो क्लास में अपने मोबाइल के साथ दिखायी दे रहा था, हैडमास्टर साहब के आने से थोड़ा उधर देखा, फिर नए खरीदे मोबाइल से अपनी सेल्फी लेने में व्यस्त हो गए। इंटर्नशिप वाले एक-दूसरे से लगातार संपर्क में आते दिख रहे थे और इन दिनों भावी अध्यापिका प्यार की ऊँची-ऊँची पींगें मचका रही थी। भावी अध्यापक और भावी अध्यापिका के बीच और बातों के अलावा इस पर चर्चा अधिक होती थी कि क्लास का इंचार्ज उसके पास कुर्सी डालकर बैठ जाता है और पढ़ाने बिल्कुल नहीं देता। कहता है - इस गांव के कौन-सा अफसर बनेंगे। भावी अध्यापक इस मामले में नयी-नयी दोस्त बनी भावी अध्यापिका के साथ था और उन दोनों ने क्लास इंचार्ज सुरेश मास्टर की शिकायत हैडमास्टर साहब से करने की सोच ली थी। भावी अध्यापिका इस बात से बहुत खुश थी कि संकट के समय में उसके साथ भी कोई है।

हैडमास्टर साहब आज भी एक किलो दूध और पाव भर बर्फी घोलकर पीकर आये थे। कुर्सी पर उनके बैठने के स्टाइल से ही लग रहा था कि हैडमास्टर साहब कहीं सीधे भैंस देखकर आ रहे हैं। उनकी आंखों की पुतलियों में रात की नींद साफ-साफ झलक रही है और पलकों के किनारों पर लगी पीली पपड़ियां कुछ ज्यादा ही दिखायी दे रही हैं।

हैडमास्टर साहब ने आते ही पहले अपने हफ्ते भर से छूटे खानों में हाजिरी मारी। यह अप्रोच रोड का ही सुख था कि कई-कई दिनों तक रजिस्टर छुआ तक न जाता था। बाकी मास्टर भी रजिस्टर से इतना परेशान इसलिए नहीं रहते थे कि सबने अपने-अपने हिसाब से हाजिरी लगाने का सरल सा रास्ता ढूंढ रखा था। ज्यादातर लोग हस्ताक्षर न करके सीधा-सीधा अपना नाम रजिस्टर के खाने में मांडते थे। इसका एक फायदा यह होता कि खुद के कभी-कभी न आने पर दूसरा विश्वासपात्र और शुभचिंतक मास्टर भी वैसे का वैसा नाम मांड दिया करता। कुछ लोग अंग्रेजी के दो अक्षर लिखने में ही अपने खाने को पूरा समझते थे। जैसे अभिषेक कुमार जी हमेशा 'A K' और नरेंद्र कुमार जी हमेशा 'NK' लिखते थे। छुट्टी-वुट्टी के लिए पूरी दरियादिली इसलिए थी कि छुट्टी-वुट्टी के मामले में सब मेच्योर थे। जानते थे कि एक मास्टर आदमी छुट्टी की ही बेईमानी कर सकता है। इसलिए छुट्टी-वुट्टी को लेकर कोई भी इश्यू बनाना मूर्खता है और यह मास्टर वर्ग के लिए तो बेहद शर्म की बात है।

यह बात अलग है कि एक दफा इसी स्कूल में छुट्टी का बहुत बड़ा इश्यू बन गया था। बात यह थी कि स्कूल में रहकर ही अपनी आगे की पढाई करने वाले अभिषेक कुमार जी को जब-तब छुट्टी चाहिए ही होती थी। अभिषेक कुमार जी नियम के अनुरूप छुट्टी लिखकर रजिस्टर में छोड़ जाते और अगले दिन आने पर या तो छुट्टी की अर्जी फाड़कर खाने में AK मांड देते या ओन रिकार्ड लगी जरूरी छुट्टी को एक बटा दो लिखकर आधे खाने में अराइवेल और डिपार्चर के समय NK, NK मांड देते। एक दिन हुआ यह था कि किसी बात पर अभिषेक कुमार जी और नरेंद्र कुमार जी में मनमुटाव हो गया। हैडमास्टर साहब कहीं भैंस और अधबंटाई में दिए अपने रेवड़ को देखने गए थे और स्कूल का चार्ज एसएस मास्टर जगदीप बोहरा के पास था। अभिषेक कुमार जी हमेशा की तरह छुट्टी रखकर अपने दूसरे साथी और बोहरा जी को बोलकर गया था कि 'कोई आ जाए तो देख लेना'। बोहरा जी ने अभिषेक कुमार को निश्चिन्त करते हुए कहा था कि 'तू मौज कर यार। हाम रह्या न। कहीं नहीं मोर चुगता इस स्कूल को। जा आराम से जा।' अभिषेक कुमार जी की आंखों में आंसू आ गए थे बोहरा जी का उनके प्रति प्रेम देखकर।

अगले दिन अभिषेक कुमार जी की जिन आखों में आंसू थे, शोले भड़क रहे थे। हुआ यह था कि अभिषेक कुमार जी की आंखों में न केवल छुट्टी लग गयी थी, बल्कि पूरे खाने में 'पूर्ण आकस्मिक अवकाश' लिख दिया गया था। अभिषेक कुमार जी इस बात पर भड़क गए थे कि आज तक किसी सरकारी मास्टर के खाने में 'पूर्ण' शब्द नहीं लिखा गया तो यह उसी के खाने में क्यों। बोहरा जी ने तो गरमा-गरमी में अभिषेक कुमार जी को खुद के निर्दोष होने की कहकर नरेन्द्र कुमार जी की तरफ इशारा कर दिया था जिसके साथ स्कूल का एकमात्र स्थायी सुखसहायक रमेश उर्फ़ भगतजी शामिल था।

अभिषेक कुमार जी उबल ही रहे थे कि नरेंद्र कुमार जी का स्टाफ रूम-कम-ऑफिस में आना हुआ। तब रमेश सुख सहायक उर्फ़ भगतजी ने आग में घी डालने का काम किया और सीधे नरेंद्र कुमार जी

की तरफ मुंह करके कहा–'नाराज सीं अभिषेक जी।'

'तो मैं क्या करूं'–नरेंद्र कुमार जी बोले।

'तुम्हारी ही तो करतूत है यह'–अभिषेक कुमार जी सीधे नरेंद्र कुमार जी से मुखातिब होकर बोले।

'मेरी क्यूं है। हैडमास्टर बोहरा जी थे उस दिन। और चुरड़िया क्यों उठते हैं। कोई नहीं आएगा तो छुट्टी तो लगेगी ही।' नरेंद्र कुमार जी एक सांस में कह गए।

या तो बोहरा जी चुप बैठे थे और सोफे पर पसरे आधी–आधी आंखें बंद कर साइंस मास्टर राममेहर की तरह राम के नाम लेने में लगे थे। नरेंद्र कुमार जी से अपना नाम सुनते ही तुनककर बोले–'मैंने क्या अपने आप लगाई थी छुट्टी। तुम और यह रमेश तड़के से गैल लग रहे थे कि अभिषेक आएगा तो एक बटा दो कर लेगा। इसलिए स्कूल में सबके साथ बरोबर का ब्यौहार होणा चाहिए। सबके सब यहां सरकारी दामाद हैं। ना कोई छोट्टा और ना कोई बड़ा।'

बड़ा हंगामा होते–होते रहा। स्कूल में सबकी छुट्टियों पर लगाम कस दी। फिर मास्टरों की धड़ाधड़ छुट्टियां लगने लगी तो सबके पसीने आ गए। इस तरह की लड़ाई में तो सबका ही नुकसान है, यह सबको समझ में आ गया। स्कूल की एकमात्र मैडम कविता ने भी इस विषय पर पहली बार अपना मुंह खोला था। कविता मैडम सलाई–बुनाई में बहुत निपुण थी और गर्मियों–सर्दियों में क्रोशिया या सलाई लेकर कुछ न कुछ बुना करती थी। मैडम का कहना था कि बुनाई उसका शौक है और वह इसके बिना रह ही नहीं सकती। स्कूल में नारी का सम्मान करते हुए सबने यह छूट दे दी कि मैडम को कम से कम डिस्टर्ब किया जाए। जाने कब किस पर कृपा हो जाए और मैडम उसके नाप के घरे अपनी सलाइयों में डाल ले। तब मैडम अपने दो पीरियड रो–पीटकर लेती और स्टाफ रूम–कम–ऑफिस में एक सिंगल सोफे पर बैठी सलाई–बुनाई के काम को अंजाम देती रहती।

छुट्टी को लेकर बोहरा जी भी परेशानी में थे। पिछले ही महीने दो पूरी–पूरी छुट्टियां लग गयी थीं। सरकारी मास्टर के लिए छुट्टियांतो ब्रह्मास्त्र की तरह होती हैं और यही एक पूँजी। बोहरा जी के ही दखल से चार–पांच मास्टरों की छोटी सी बैठक में यह तय किया गया कि छुट्टी–वुट्टी के मामले में सबको एक रहना पड़ेगा। सबकी नजर में तो मास्टर दुसमन बना हुआ है। हाम आपस में भी बना कर नहीं रखेंगे तो बहुत मुश्किल होगी। बोहरा जी आगे कहते—हमारा तो टेम किसी तरह पास होग्या। फिर वे हमारी तरफ इशारा कर कहते—इन बाळकां का क्या होगा ? तब सबने बोहरा जी की बात का समर्थन किया और नरेंद्र कुमार व अभिषेक कुमार के बीच के विवाद पर विचार करते हुए बोहरा जी ने ही यह ऐतिहासिक फैसला सुनाया कि अभिषेक कुमार जी के खाते में लिखे गए 'पूर्ण आकस्मिक अवकाश' में 'पूर्ण'

शब्द पर सफेदा लगा कर इस बात को यहीं रफा–दफा किया जाए। रमेश सुख सहायक उर्फ़ भगतजीने यह सुनते ही तुरंत हैडमास्टर साहब की मेज की ऊपर वाली दराज से व्हाईट फ्ल्यूड निकाल और शुभ काम को मानते हुए स्कूल की सलाई–बुनाई में व्यस्त एक मात्र मैडम से 'पूर्ण' शब्द पर भाईचारे का सफेदा लगाकर यह बताने का प्रयास किया कि नफरत में कुछ भी तो नहीं धरा है। इसी बात पर नरेंद्र कुमार जी ने अभिषेक कुमार जी से हाथ मिलाया और भविष्य में ऐसी कोई गलती न होने की तसल्ली दी। रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी ने बोहरा जी के दिए सौ रुपयों को स्कूल के ग्राउंड में खेल रहे बच्चे को देकर देस्सा की दुकान से चिल्ड ठंडा लाने का आदेश दिया। आदेश की पालना के लिए बच्चा दौड़ता हुआ गया तो रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजीको लगा कि उसके गांव की नयी पीढ़ी कम से कम नालायक तो नहीं ही है।

स्टाफ बड़ा था तो कुछ न कुछ होता ही रहता था। कभी कोई रूठ जाता तो कभी कोई। हर बार बोहरा जी को हैडमास्टर साहब के स्कूल में न रहने के कारण मध्यस्थता करनी पड़ती। बोहरा जी आज भी मानते हैं कि वे नहीं होते तो इस स्कूल का भविष्य बहुत बुरा होता। बोहरा जी 'चिड़ी भिड़ाऊ' और 'झगड़ा मिटाऊ' दोनों ही भूमिकाओं को बड़े अच्छे से निभा लेते थे। मास्टरी के अतिरिक्त उनका मुख्य काम ब्याज पर रुपये देना था और यह काम उनके लिए पुश्तैनी था। वे कहते भी थे कि उन्होंने अपने पिता के बोहरेपने के काम को इतना आगे बढ़ाया है कि स्वर्ग से भी वे उनके लिए आशीष देते होंगे। स्कूल में भी बोहरा जी अक्सर ब्याज के हिसाब–किताब में लगे रहते थे। कई बार तो ब्याज पर रुपये उठाने वाले लोग स्कूल में ही आ जाया करते। बोहरा जी ऐसे लोगों को कभी निराश नहीं करते और अपने इस समाज सेवा के काम को पूरी ईमानदारी से निभाते। बोहरा जी अपनी एक जेब से रुपये और दूसरी से प्रनोट निकालकर आने वाले को तुरंत संकट से उबारते।

लड़ने–वड़ने की खबरें बच्चे अपने घर पहुंचाते तो स्कूल में आये कुछ पागल टाइप अभिभावकों को बोहरा जी और शेरसिंह जी ही समझा–बुझाकर वापिस भेजते।

स्कूल के दिन धीरे–धीरे खराब होने लगे थे। गांव के लोगों का आना–जाना बढ़ गया था जो स्कूल के किसी भी मास्टर को पसंद नहीं था। गांव के लोग ताका–झांकी कुछ ज्यादा ही करने लगे थे। शिक्षा के मंदिर में यह सब शिक्षा के पुजारियों को खटकने लगा था। वैसे भी दिनों–दिन बच्चों की संख्या कम हो रही थी। इसके लिए भी सरकार की खराब नीतियों का ही होना था। आधार पहचान तक के लिए तो ठीक था, पर इससे ज्यादा उसके उपयोग

की क्या जरुरत थी। जाने किस मूर्ख ने यह सलाह दी थी कि बच्चों की यूनिक आईडी जारी कर उसे आधार के साथ जोड़ दिया जाए। अब क्या तो स्कूल में इतने बच्चे थे कि मिड-डे-मील में पूरे हजार रुपये दिन के बच जाते थे। फर्जी बच्चों के नाम का राशन तो कभी बनाना ही नहीं पड़ता था। बल्कि कभी-कभी स्टोर में गेंहू-चावल का स्टॉक इतना बच जाता था कि मुरारी लाल जी को बीच-बीच में कई-कई बार कट्टे के कट्टे उठवाकर हिसाब मिलाना पड़ता था।

आधार से पहले बच्चों के नामों में कोई समस्या नहीं थी। हमारे खुद के बच्चों के नाम भी किसी न किसी क्लास में लिखे हुए थे। हमारे बच्चे शहर के नामी स्कूलों में पढ़ते थे और कभी भूले-भटके हमारे साथ स्कूल पिकनिक की तरह आते थे। गांव के आधे से ज्यादा बच्चे स्कूल का रंग-ढंग देखकर शहर और आस-पास के प्राइवेट स्कूलों में पढ़ने जाते थे। गांव में हम कभी गए ही नहीं। जाने की जरूरत ही नहीं पड़ी। सरकारी स्कूल में पढ़ाने का गांव वालों को भी बहुत फायदा था। सरकारी स्कूल में मिलते एससी-बीसी के वजीफे से वे आधे साल की फीस पटा देते और आधी मजदूरी कर या अन्य संसाधनों से चुकाते। हमें यह फायदा था कि स्कूल में सारी की सारी पोस्टें बची रहें और मिड-डे-मील से बचे रुपयों को स्कूल के भले के लिए खर्चते रहें। ज्यादा बच्चों के होने से राशन बनाने वाली महिलाओं को भी मजा आता था। महीने के भले ही उन्हें हजार-आठ सौ रुपये का मेहनताना मिलता था, पर इसके अलावा वे जान-बूझकर इतना पकाती थी कि बच्चों और मास्टरों के खाने के बाद भी खूब बचा रहे। मिड-डे-मील वर्कर तब खुश होतीं और अपने साथ लायी बाल्टियों को ऊपर तक भरकर ले जातीं और जाते ही अपनी भैंसों की लहास में पड़े तूड़े में मिला देतीं। भैंसें बहुत खुश होतीं और कांता मिड-डे-मील वर्कर के अनुसार--सरकारी राशन खाने वाले दिन उसकी भैंस आध सेर दूध फालतू देती है। सरकार की यह योजना तो चोखी है।

एसएमसी (स्कूल मैनेजमेंट कमेटी) के पास इतना वक्त होता नहीं था कि वह कभी स्कूल आकर कुछ देखती। एसएमसी के सारे के सारे लोग ऐसे थे जिनके पास असल में स्कूल आने के लिए समय ही न था। दो-तीन मिस्त्री थे और कुछ ऐसी महिलाएं थीं जिन्हें अपना नाम तक ठीक से लिखना नहीं आता था। पढ़ी-लिखी के नाम पर रमेश सुख सहायक उर्फ़ भगतजी के छोटे भाई की बहू ही थी जो पूरे पांच पढ़ कर आई थी। इसे रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजीके कहने से ही हैडमास्टर साहब ने रखा था। रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजीने शुरू वाले दिन ही अपने छोटे भाई की बहू से कह दिया था -'ए, जब भी स्कूल सीं कोई कागज आवै, आंख मींच कै नै साइन कर दिइये।' छोटे भाई की बहू ने घूंघट काढे-काढे हाथ जोड़ यह जता दिया था—'जेठ जी, जो थारी इच्छा!!'

रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी के छोटे भाई की बहू अब तक स्कूल का हर कागज बिना कुछ कहे साइन करती थी। वह पार्टटाइम स्वीपर-कम-पिअन के हाथ से रजिस्टर ले आराम से पढ़ती थी और चेहरे पर बिना कोई भाव लाए सुंदर से हस्ताक्षर रजिस्टर पर टांक देती थी। बीच में कुछ ऐसा हुआ कि रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी और उसके छोटे भाई में गांव की ही फिरनी को लेकर एक विवाद हो गया। हालांकि बाद में वह मिट भी गया, दोनों घरों की औरतों के दिलों के तार ठीक से नहीं जुड पाये। आज फिर हैडमास्टर साहब के कहने पर पार्ट टाइम स्वीपर-कम-पिअन सविता के घर गया। सविता जैसे इंतजार ही कर रही थी। सविता ने पहली बार पूरा रजिस्टर उलट-पुलटकर देखा। सविता बड़बड़ाने लगी—शर्म ही नहीं आती। एक ही बात को कितनी बार लिखेंगे। वह रजिस्टर चौक में लेकर आ गयी और पार्ट टाइम स्वीपर-कम-पिअन को देते हुए बोली—'स्कूल में कह देना। पेशाबघर की दीवार ठीक से चिणवा लो। हर साल गिर जाती है। इबकी बार तो साइन कर री सूं, आगा सीं मेरो नाम काट दियो।'

पार्टटाइम स्वीपर-कम-पिअन सविता को अब तक यूँ ही समझता था। आज उसे समझ आई कि वह तो बम है जी बम, न जाने कब फूट जाए। उसने कुछ नहीं कहा और चुपचाप रजिस्टर लेकर हैडमास्टर साहब के पास आ पूरा किस्सा सुनाने लग गया। हैडमास्टर साहब के माथे पर चिंता की खूब सारी लकीरें अंकित हो गयी। वो मान रहे थे कि इतने बरसों तक इस गांव में पढ़ाने का कोई फायदा जैसे उन्हें हुआ ही नहीं।

--'रमेश, तेरी बोहड़िया नै भी जबान आगी। आज साइन करण सीं ही नाटगी।' हैडमास्टर साहब ने ग्राउंड से अभी-अभी स्टाफ रूम-कम-ऑफिस में घुसे रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी से कहा।

--'जी इब कोन्या मान्नै वा मेरी। दूसरी बदल ल्यो...', रमेश सुखसहायक उर्फ भगतजी ने बड़ी मासूमियत से कहा।

हैडमास्टर साहब भी समझ गए कि अब स्कूल के अच्छे दिन गायब हो गए और बुरे दिन आने शुरू हो गए और इसीलिये उन्होंने ऊपर से दबाव के कारण फर्जी बच्चों के नाम कटने से मात्र एक तिहाई विद्यार्थियों के बाकी रहने को बचाए रखने के लिए स्कूल की एकमात्र मैडम की तरफ देखकर कहा-'बहण जी, थम भी किमी करो, नहीं तो रह्या-पह्या बालक भी टूट ज्याइंगा...'

बहनजी पर पहली बार हैडमास्टर साहब के कहे का असर हुआ और उन्होंने नए सत्र की शुरुआत में ही कुछ नया करने को लेकर एक हवन करवाने की घोषणा कर डाली। यही नहीं हवन वाले दिन उन्होंने क्रोशिया -सलाई को हाथ तक न लगाया और कक्षा-कक्षा घूम कर बच्चों को घी और समिधा लाने को इतना प्रेरित किया कि अगले दिन सब बच्चों के हाथों में कटोरियां दिख रही थीं, जिसमें कुछ न कुछ था जो बहनजी को प्रफुल्लित कर रहा था। सारे स्कूल की नयी-पुरानी, साबुत-फटी दरियां बिछाकर बहनजी ने यह सिद्ध कर दिया था कि मन से कोई काम कर लो, परिणाम उसका अच्छा ही होता है। स्कूल में जोर-जोर से पढ़े गए मंत्र बता रहे थे कि बहनजी की पढाई-लिखाई गुरुकुल में हुई है। बावजूद इसके बहनजी के हर काम को 'ढोंग' समझने वाले दो-तीन मास्टर प्राइमरी की तरफ बैठ हंसी-ठठ्टा फोड़ते रहे और इधर बहनजी 'हे यज्ञरूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए, छोड़ देवें छल-कपट को मानसिक बल दीजिए' जोर-जोर से गाती रही। सुना कि उस दिन तीन हजार के लगभग रुपये इकट्ठे हुए जिन्हें रमेश सुख सहायक उर्फ़ भगतजी ने अपने पास रख लिए थे और अभी तक किसी के कहने से लौटाए नहीं थे। एक दिन जब ज्यादा ही पूछा तो उसने बजरंगबली के सिक्कों वाली थैली में मिला देने की बात कहकर सदा के लिए पल्ला झाड़ लिया था। जिस पर एक-दो मास्टरों के ज्यादा ही एतराज करने को लेकर रमेश सुख सहायक उर्फ़ भगतजीने इतना

बुरा मान लिया था कि उसने स्कूल के एक बेहद गोपनीय मामले को उछालकर गांव के पंच और लम्बरदार टाइप के लोगों को स्कूल में लाकर बैठा दिया था। तब से हैडमास्टर साहब ने हवन के पैसे लौटाने की बात रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी की आत्मा पर छोड़ दी थी। इतना सुनने पर अगले दिन ही रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी ने सबके बीच में आ हजार-हजार के तीन नोट हैडमास्टर साहब की छाती पर मार दिए थे। जिससे सर्व सम्मति से स्कूल के लिए स्थायी हवन कुंड और गर्मियों में पक्षियों के पानी के लिए सिकोरे खरीदने के लिए प्रस्ताव पास किया। इसी अनौपचारिक बैठक में मुरारी लाल जी से मिड-डे-मील का पिछला बकाया लगभग एक लाख रुपया हैडमास्टर साहब को देने का फैसला हुआ था। फैसले के साथ ही हैडमास्टर साहब को मुरारी लाल जी द्वारा दिए जाने वाले एक लाख रुपये में एक तगड़ी झोटी (भैंस) दिखायी देने लगी थी।

मिड-डे-मील के हिसाब-किताब के सारे कच्चे-पक्के रजिस्टर बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव को सौंप दिए थे जो बूथ लेवल ऑफिसर के काम के साथ उनके लिए अतिरिक्त प्रभार की तरह था। बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव बूथ लेवल ऑफिसर वाला काम बड़े चाव से करते थे और इसके लिए उन्हें सालाना पांच हजार रुपये मिलते थे जिसे वे किसी पुरस्कार से कम नहीं समझते थे। बूथ लेवल ऑफिसर लिखा काला बैग वो हमेशा अपने साथ रखते थे और ससुराल तक अपने अफसर होने का प्रचार कर चुके थे।

एक बार गांव के ही एक आदमी ने बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव पर मायके गयी उसकी बहू के फर्जी साइन कर वोट बनाने का दबाव दिया जिसे बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव ने पूरी तरह -'फर्जी काम नहीं करता' कहकर अस्वीकार कर दिया था। उस आदमी ने पूरे गांव में बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव की दादागिरी का प्रचार किया और यह भी कहा --बूथ लेवल ऑफिसर हमारे गांव की महिलाओं के मुंह देखने में राजी रहता है। इसलिए बिना मुंह देखे वह किसी बहु-घोटली का बोट नहीं बनाता।

बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव ने भी इस बात का डटकर मुकाबला किया और एसडीएम जो चुनाव का बड़ा अफसर था, के सामने बहुत अच्छे ड्राफ्ट की चिट्ठी देकर यह सिद्ध कर दिया कि अभी भी बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव जैसे ईमानदार मास्टर हरियाणा के सरकारी स्कूलों में मौजूद हैं। एसडीएम साहब ने मामले की तफ्तीश करवाई कि बिना कैंडीडेट की मौजूदगी के वोट बनवाने वाले आदमी को स्कूल आकर बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव से सबके सामने माफ़ी मांगनी पड़ी। तब से बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव 'बूथ लेवल ऑफिसर' लिखे बैग को अपनी देह से अलग करके नहीं चलते थे।

स्कूल में बच्चों की लगातार घटती संख्या हमारे लिए संकट पैदा करने वाली थी। अपने-अपने गांवों के निकट और अप्रोच रोड से इतनी दूर, गांव के बिना किसी दखल वाला, इससे बेहतर स्टेशन हमें नहीं मिलने वाला था। इस स्कूल में कितनी मौज की, यह हमीं जानते हैं। फर्जी नाम काटने के बाद अब हमारे पास जरूरतमंद और गरीब लोगों के ही बच्चे बचे थे। ये ऐसे लोग थे जिनके लिए अपना पेट तक भरना मुश्किल था। स्कूल में दाखिले के बहाने बच्चे तो कम से कम भर पेट भोजन कर ही लेते थे। ज्यादा डला होने के कारण कभी-कभी मां-बाप को भी पौष्टिक भोजन खाने को मिल जाता था।

स्कूल के दाखिले बढ़ाने के लिए हमारी भी ड्यूटी लगी थी कि हम गांव में चक्कर लगाकर आयें। गांव में हम दाखिला फार्म लेकर घूमते। लोगों से बात करते। लोग हमारे मजे लेते। कई-कई हमें घेरने की कोशिश भी करते। उनके सवाल बड़े मौजूं होते। पर हम बचने की कोशिश करते। लोगों की बातें तो ठीक ही थीं। पर ऐसे ही किसी की मान लें तो सरकारी स्कूल के मास्टर फिर कौन कहेगा हमें। कुछ जगह हम बोलते तो कुछ जगह खुद को दबता हुआ देखकर आगे सरक जाते। धर्मेश और मैं चुप-चुप गांव की गलियों में घूमते।

उस दिन धर्मेश ने मुझसे कहा था-'एक बात बताऊँ, सुशील !'

'बता !'-मैंने कहा था।

'लोग कहते तो ठीक ही हैं।।।'-धर्मेश ने धीरे से मेरे कान में कहा था।

'हां, यार पढ़ाते-वढ़ाते तो हम सच में नहीं हैं।'—मुझे भी कहना पड़ा था।

'असल में सबने सरकारी स्कूलों को सिर्फ चमार-धानकों के बच्चों का स्कूल मान लिया है। देखते नहीं जब शेरसिंह जी क्लास में पढ़ाते हैं तो बोहरा जी क्या कहते हैं—रै, इतणु मत पढ़ाया कर शेरसिंह आणनै। कितै ये अफसर बणी ना। जै इ पढ्गा तो आपणलां को कित नम्बर।'—धर्मेश ने कहा तो मुझे समझ में आया।

'... ... ...'—मैं धर्मेश को लेकर सोच रहा था कि वह सब चीजों का कितना ध्यान रखता है।

'मुझे तो स्थिति बड़ी नाजुक लग रही है।'—धर्मेश ने चिंता जताते कहा।

'कैसे ?'—मैंने हैरानी से पूछा।

'सरकारी स्कूलों के इतने बच्चे टूट रहे हैं कि ज्यादातर गांवों के स्कूल तो बंद ही कर दिए जायेंगे।'—धर्मेश ने खुलासा किया।

'हां, कई गांवों में ऐसा हो गया है।'—मैंने सच को स्वीकारते हुए कहा।

'सुरीना राजन ऐसा शिकंजा कसने वाली है कि बच्चू याद रखोगे।'—धर्मेश ने मुझे डराते हुए कहा।

'क्या कर रही है वह ?'—मैंने जानना चाहा।

'शिक्षा में आमूल चूल परिवर्तन। रिटायर होने से पहले ही ऐसा कुछ कर जायेगी कि जो मास्टर पढ़ाएगा नहीं, उसकी छुट्टी तय है।'—धर्मेश ने भविष्य की ओर इशारा करते हुए कहा।

'... ... ...'—मेरे पास बोलने को कुछ था ही नहीं। मैं तो भविष्य में खोया हुआ था। पांच साल पहले तो लगा ही हूँ। घर के जेवर बेच और मंत्री से सेटिंग करके। यहां से हटने के बाद किसी और काम के लायक भी नहीं रहूँगा।

'भविष्य में देखना। सरकारी मास्टर यदि नहीं सुधरे तो भीख मांगते दिखा दूँगा मैं। साईकिल लिए गांव की गलियों में हमारी तरह घूमते फिरेंगे-बाळक पढ़वा लो ! बालक पढ़वा लो !! फिर कोई गली से बाहर निकलेगा। मोल भाव करेगा और घर के बाहर बिठा अपने बच्चे का कोई मुश्किल टॉपिक क्लीयर करने को कहेगा। बच्चा संतुष्ट होगा, जब मां-बाप मास्टर को सौ-पचास रुपये एहसान करते हुए देंगे। मास्टर अपनी किताबें-सिताबें समेटते अगले घर को चल देगा—बालक पढ़वालो ! बालक पढ़वालो !!'... ...' धर्मेश ने मुझे गणित समझाते कहा।

'... ... ...' मैं अब भी चुप था...'चल, कुछ एडमिशन करते हैं...' धर्मेश ने विषयान्तर करते कहा तो मेरा कांपना थोड़ा कम हुआ।

नदी के पाट के साथ एक कच्ची

पोली थी। तीन लड़कियां पोली में खेलती बाहर से साफ-साफ दिख रही थी। पोली में एक चारपाई भी डली थी, जिस पर कोई चादरओढ़कर सोया हुआ था। हम दोनों चारपाई के नजदीक पहुंचे। हमने देखा तीन छोटी-छोटी बच्चियां थीं, जिसमें से सबसे बड़ी हाथ में किताब लिए कुछ पढ़ रही थी। दो अन्य वहीँ बैठी गुड्डे-गुडिया का खेल खेल रही थी।

धर्मेश ने किताब पढ़ रही लड़की को कहा—

'बेटे! पापा हैं ?'

लड़की ने चारपाई पर सोये हुए आदमी की तरफ इशारा किया तो हम समझ गए थे कि यह उनका पापा ही है।

'बेटे ! जगाओ पापा को। बोलो कि सरजी आये हैं।'—धर्मेश ने ही कहा।

'पापा अभी सोये ही हैं सरजी'—बच्ची ने बड़े सम्मान और प्यार से कहा।

'स्कूल कौन से में पढ़ते हो बेटा !'—मैंने पूछना चाहा।

'ब्राईट फ्यूचर में सरजी'—बच्ची ने उसी आवाज़ से कहा।

'गुड। वैरी गुड।'—मैंने फिर कहा।

'जगाओ बेटा! एक बार। पापा को जगाओ !!'—धर्मेश ने बच्ची से फिर कहा।

बच्ची ने हमारा कहना मान चारपाई की तरफ मुंह कर आवाज़ लगाई—'पापा ! ओ पापा !!'

बच्ची के कहने में न मालूम क्या जादू था कि पापा उठ कर बैठ गया।

हमने उसे 'नमस्ते' की। उसने नमस्ते का कोई जवाब नहीं दिया।

उसने हमसे एक ही सवाल पूछा-'सरकारी स्कूल सी सो ?'

हमने बड़ी शान से कहा—'हांजी। हांजी।'

इतना सुनना था कि वह आदमी फिर से चादर तानकर सो गया। हमने फिर कुछ कहा तो वह मुंह ढके-ढके तुनककर बोला—

'जाओ यार! टेम कोन्या।'

हमारे लिए उसका यह कहना और इस तरह बात करना किसी तमाचे से कम न था। मैं कुछ बोलता कि धर्मेश ने मुझे इशारे से चलने को कहा। रास्ते में मैंने धर्मेश से कहा भी -'इससे बड़ी बेइज्जती मेरी आज तक नहीं हुयी।'

'अभी शुरुआत है। लोग जाग रहे हैं। हमने अपनी छवि ठीक नहीं की तो ऐसे ही टकरायेंगे।'—धर्मेश ने समझाते हुए कहा—

'और स्कूल में किसी के सामने मत बोलना। इस आदमी ने हमारी ऐसी बेइज्जती की है कि खुद को आइना देखते शर्म आएगी।'

'इसीलिए मैं कहता हूँ कि एक दिन ये गरीब-गुरबा लोग उठकर ही बिगड़ चुकी व्यवस्था को यहां-वहां से ठीक करेंगे।'—धर्मेश ने एक और सच मुझसे कहा।

सही में स्कूल के बुरे दिन चल रहे थे। अच्छे दिन सच में कहीं दुबक गए थे। अखबार में नाम छपने की कसर बाकी थी, वह भी बीईओ साहब के आने से पूरी हो गयी। न जाने बीईओ साहब को किसने सूचना दे दी थी कि हमारे स्कूल में सुबह के समय पर पहुंचना थोड़ा हो ही नहीं पाता है। सबके पास इतने काम होते हैं न जी कि लेट होना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है।

बीईओ साहब पहुंचे तो सिर्फ एक मास्टर और रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी थे। मास्टर जी असेम्बली के पीछे खड़े थे और रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी बच्चों को 'साबधान ! बिसराम!' करवा रहे थे। रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी भले ही सुखसहायक के पद पर थे, पर पहनावे में तो हैडमास्टर साहब को भी परे बिठाते थे। बीईओ साहब को लगा ही नहीं कि रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी सुख सहायक की छोटी सी पोस्ट को सुशोभित कर रहा है। उन्होंने रमेश सुख सहायक उर्फ़ भगतजी से उनकी क्वालिफिकेशन पूछी तो रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजीने शर्माते हुए आठ पास बताया। बीईओ साहब ने रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजीको कोम्प्लिमेंट देते हुए कहा—'दसमी होते तो आज बाब्बू होते।' रमेश सुख सहायक उर्फ़ भगतजी ने इस सबको 'किस्मत का खेल' बताया और बीईओ साहब के लिए दो-तीन बच्चों को मिड-डे-मील की रसोई में चाय बनाने भेज दिया। बच्चे आधे घंटे बाद धुंआ-धोलिया कर चाय बनाकर ले आये जिसे बीईओ साहब ने गर्म-गर्म ही सुड़क-सुड़क कर पी लिया। तब तक कुछ मास्टर-वास्टर आ गए थे, जो बीईओ साहब को देखकर सकपका गए थे।

मास्टर हाथ जोड़ने लगे कि इस बार-इस बार माफ कर दिया जाए, भविष्य में कोई गलती नहीं होगी। बीईओ साहब 'सब मास्टरों का एक सा हाल है। पढ़ा कर कोई खुश ही नहीं है' जैसा बहुत कुछ सुनाते हुए लेट आये मास्टरों को बख्शने का एहसान कर रहे थे और अध्यापक हाजिरी रजिस्टर के अभी तक न आये आधे के लगभग मास्टरों के खानों में प्रश्नवाचक चिह्न लगा एक महान कार्य को अंजाम दे रहे थे।

बीईओ साहब के पता नहीं क्या ध्यान में आया उठ कर बरामदे में चल दिए। दो-चार जने पीछे-पीछे हो लिए। रमेश सुखसहायक तो ऐसे चल रहा था जैसे स्कूल का हैडमास्टर वही हो। बीईओ साहब जिस क्लास में घुसे, वह शोर बहुत मचा रही थी। कोने वाली इस क्लास के दो दरवाजे थे। दूसरा दरवाजा पेशाबघरों की तरफ खुलता था, जहां सब पेशाबघरों में ताला लगा हुआ था। मास्टरों वाला पेशाब घर ठीक-ठाक था। बच्चे बदबू से बचने के लिए चार फीट की चहारदीवारी कूद कर साथ लगते खेतों में पेशाब करने का आनंद उठाते तो गुरु जी लोग भी कभी-कभी गपियाने को लेकर एक-दो खेतों को क्रॉस कर आराम से मुक्ति का सुख भोगकर आते।

बीईओ साहब क्लास में घुसे तो बच्चे घबरा से गए थे। मोनिटर ने तो जान लिया था कि आज खैर नहीं। यह क्लास बूथ लेवल आफिसर सुधीर यादव जी की थी जो रोज की तरह आज भी स्कूल में आते-आते लेट हो गए थे। ऐसे वक्त में तो खास तौर से उनकी बाइक पंचर हो जाया करती थी।

बीईओ साहब ने पूछा—'किसकी क्लास है यह ?'

बीईओ साहब पुराने मास्टर रहे हुए हैं। आवाज़ में उनकी आज भी कड़कपना है। एक बच्चा बहुत धीरे से बोला—'सुधीर सरां की।'

बीईओ साहब ने इधर-उधर देखा तो रमेश सुखसहायक उर्फ़ भगतजी बीच में बोल पड़ा—'जी, फोन आयो थो उणको। रास्ता म्हं सीं। मोटरसायकल पिंचर व्हागी।'

रमेश सुखसहायक ने झूठ बोला था, पर इस सफाई के साथ कि बीईओ साहब को कुछ लगे ही ना कि यह झूठ भी बोल सकता है। रमेश खुश था कि उसने झूठ को सच की तरह बोला। इसी बात को भुनाकर वह बूथ लेवल आफिसर कम मिड-डे-मील इंचार्ज सुधीर यादव से सौ का एक नोट झटक लेगा।

बीईओ साहब न आने वालों के खाने में प्रश्नचिह्न लगा चुके थे, इसलिए बीईओ साहब ने बात को न बढ़ाते हुए विषयान्तर करते पूछा-'मोनीटर कौन है क्लास का ?'

मोनीटर बने बच्चे का मुंह लाल था। उसकी शर्ट के सारे बटन टूटे हुए थे और बाल बड़े-बड़े थे। एक बाजू आधी ऊपर थी और गर्दन पर ढेर सारा रेत लगा हुआ था। लग ही रहा था कि कुश्ती-वुश्ती करके आया है। मोनीटर को लग गया कि वह गया काम से। पढ़ने में उसका जरा भी जी न लगता था। बूथ लेवल आफिसर सुधीर यादव ने मोनीटर भी उसको इसलिए बनाया हुआ कि उनके न रहने पर क्लास को कंट्रोल में रखे। अब यही फंस गया बेचारा। सुधीर यादव जी कितना नाराज होंगे !!

'ये बटन कहां से तुड़वा लिए?'—बीईओ साहब ने पूछा तो सारी क्लास हंस पड़ी। बटन कोई लगे हुए थे जो तुड़वा लिए। जब से देखा तब से तो उसका यही भेस देखते आये हैं।

बीईओ साहब थोड़ा खीज से भी गए थे। अफसर हैं आखिर। ऐसे पांचवीं क्लास तक के बच्चे हँसेंगे तो कर लिया उन्होंने तो औचक निरीक्षण !

'चल एक छोटा सा सवाल बता तू'—बीईओ साहब अपने पुराने मास्टर वाले रूप में आ गए।

मोनीटर और घबरा गया। आज तो उसकी खैर नहीं।

'भारत का परधानमंत्री कौन है ?'—बीईओ साहब ने पहला सवाल पूछा,

मोनीटर खुश हो गया। इस सवाल का जवाब तो उसे आता है। तपाक से बोला—'अटल बिहारी बाजपेयी।'

साथ खड़े साइंस मास्टर ने माथे पर हाथ मारा। अटल बिहारी वाजपेयी का कार्यकाल तो कब का खत्म हो चुका। गधा कहीं का!

और तो और बीईओ साहब ने पूरी क्लास से जितने प्रश्न पूछे उनमें से सत्तर प्रतिशत गलत थे। हैरानी तब हुयी जब क्लास के सही में होशियार बच्चे ने 'फ्यूचर' की स्पेलिंग सुनाने में गड़बड़ कर दी।

बीईओ साहब बहुत नाराज हुए। उन्हें आज ही किसी 'अरजेन्ट' मीटिंग में जाना था, इसलिए वे बड़बड़ाते हुए स्कूल से बाहर निकल गए।

अगले दिन बीईओ के आने पर चर्चा हुई। प्रश्नचिन्ह लगे खानों वाले मास्टरों ने विधायक-सिधायक के यहां फोन कर पहले ही मामला फिट कर लिया। स्कूल के योगेश जेबीटी मास्टर को यूं ही छूट नहीं मिली हुयी थी। विधायक के वे यूं ही इतने बरसों से तलवे नहीं चाट रहे थे। स्कूल पर संकट आये और बीईओ की इतनी हिम्मत कि वह योगेश जेबीटी मास्टर के रहते किसी भी मास्टर का स्पष्टीकरण भेज दे। जेबीटी मास्टर योगेश का मुख्य काम तो प्रोपर्टी डीलिंग का ही है। मास्टरी तो उनके लिए टाइम पास है। नारनौल में 'मास्टर प्रोपर्टी' वाली बड़ी सी बिल्डिंग के वही मालिक हैं। जिले से लेकर नीमराणा और जयपुर तक के शहरों में उनकी साझेदारी है। खुद

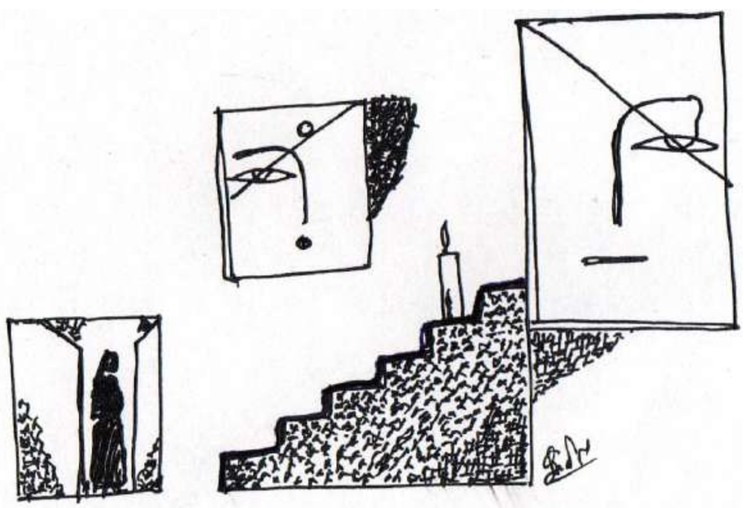

इसी शहर के एक बड़े धंधे में वे विधायक जी के साथ मिले हुए हैं। बीईओ के आने के आधे घंटे बाद ही स्कूल के मास्टरों ने सारा मामला योगेश जी के संज्ञान में ला दिया था। यह संयोग ही था जिस मीटिंग में बीईओ साहब गए हुए थे उसे विधायक द्वारा ही ली जानी थी। योगेश वहीँ बैठा था। योगेश विधायक के सामने ही बीईओ साहब को कह दिया था—'बीईओ साहब, आज सुबह वाले स्कूल का क्या मामला है। आपको पता नहीं मुख्यमंत्री की रैली है और सारे मास्टर उसी में व्यस्त हैं।'

बीईओ साहब विधायक के सामने ही बैठे हुए थे। अपने ऑफिस में होते तो कुछ बोलते भी। योगेश और विधायक के संबंधों को वे जानते ही हैं। पिछली दफा जब मेवात में पटक दिए गए थे तब योगेश ने ही उन्हें महेंद्रगढ़ में लाने की सिफारिश की थी, नहीं तो बीईओ साहब को पता लग जाता कि औचक निरीक्षण होता क्या है। बीईओ साहब की खिसियानी हंसी देखने लायक थी। विधायक जी के सामने हकलाते हुए बोले—'कुछ नहीं सर, वह तो इधर आ रहा था तो सोचा...कुछ रिकार्ड के लिए भी... आप तो जानते ही हो सर...'

विधायक ने बीईओ की हालत देख ली थी। उन्हें और कुछ बोलना उचित ही नहीं लगा। वे बीईओ को कुछ और ही आदेश देने में तल्लीन हो गए और बीईओ साहब 'जी सर...जी सर...' करते अपनी डायरी में स्पीडली उसे नोट करने लगे।

उधर यही चर्चा थी कि बीईओ चाहते हुए भी किसी का बाल नहीं पाड़ सकता। विधायक की एक मान के तो न देखे। विधायक को देखकर तो डीईओ तक पेशाब कर देता है। इस बीईओ की तो औकात ही क्या है।

बावजूद इसके बूथ लेवल आफिसर सुधीर यादव जी की क्लास में बहुत बड़ा पंगा हुआ और पुलिस केस होते-होते बचा। सुधीर यादव जी ने और मास्टरों से प्राप्त रिपोर्ट पर कार्रवाई करते हुए सीधे मोनीटर को जाकर पूरे दो घंटे तक मुर्गा बना दिया और मां-भैण की गालियांदेते हुए क्लास के सही में होशियार बच्चे को नीम की ताज़ा तोड़ी कामची से इतना मारा कि बच्चा बेहोश हो गया। यही नहीं गिरने की वजह से एक डेस्क का कोना उसके माथे पर लगा जो तुरंत टिटोले के रूप में उभर आया। बूथ लेवल आफिसर सुधीर यादव जी के लिए यह सब अप्रत्याशित था। उनका हाई हुआ बीपी तुरंत नॉर्मल हो गया और वे बेहोश हुए बच्चे को देखकर घबरा गए।

उनकी क्लास में यह तीसरी बड़ी घटना थी जिसने सुधीर यादवजी को पुलिस के मामले में जाते-जाते बचाया था। इससे पहले भी वे एक बच्चे का अंगूठा तोड़ चुके थे। एक मामले में तो उन्हें बच्चे के मां-बाप को 'पैसा हाथ का मैल है' मानते हुए दस हज़ार रुपये देकर पीछा छुटाना पड़ा

था।

सुधीर यादवजी समझ गए। गलती तो फिर से हो गयी। भागकर बोहरा जी को बुलाकर लाए। बोहरा जी ने आते ही बच्चे को पहचान लिया। बोले—'चंदू बावरिया को सै यो तो। बिना पैसां ना सुल्टैगो यो मामलो।'

सुधीर यादवजी ने मामला कैसे भी सुल्टाने का दबाव बोहरा जी पर दिया। बोहरा जी ने पानी मंगवा कर बेहोश हुए लड़के पर छींटे मारे और उसे नांगल सिरोही डॉक्टर के पास ले जाकर कमजोरी के नाम पर एक-दो ग्लूकोज के डब्बे और बच्चे को पटाने के नाम पर दो लाइनदार कापियां खरीद कर दी तथा बच्चे को रास्ते में ही एक जगह बाइक रोककर अपने मां-बाप को यह कहने को कहा कि उसे किसी ने मारा नहीं है और यह टिटोला उसे चक्कर आने के कारण डेस्क पर गिरने से हुआ है। बच्चे ने सुधीर यादवजी के कान पकड़कर 'सॉरी' बोलने और आंखों में आये आंसुओं को देखकर माफ करने के अंदाज की तरह वैसा ही करने को कहा। वह तो स्कूल के दूसरे नालायक बच्चों की वजह से चंदू बावरिये को पता लग गया जिसे बूथ लेवल आफिसर सुधीर यादवजी और ब्याज पर पैसे का लेन-देन करने वाले बोहरा जी ने पांच हजार देकर पटा लिया। सुधीर यादवजी ने अपने कहे अनुसार बोहरा जी को नारनौल के एक नए खुले होटल में जोर की पार्टी दी, जिसे बूथ लेवल आफिसर कम मिड-डे-मील इंचार्ज सुधीर यादवजी ने अगले ही महीने मिड-डे-मील के खाते में एडजस्ट किया।

बीईओ के इस तरह आने से मास्टरों को बहुत नागवार गुजरा था। यह तो सुधीर यादवजी थे जो पूरे मामले को संभाल गए, नहीं तो कोई गरीब मास्टर वह भी बिना किसी लाभ वाले चार्ज के साथ होता तो कैसे गुजर होता। यह कोई बात हुई कि बीईओ साहब बिना बताए स्कूल में आ जाते हैं। औचक निरीक्षण में 'औचक' का इतना लाभ नहीं उठाना चाहिए कि अफसर का जब मन करे, चल दे। इस तरह के औचक निरीक्षणों से न केवल मास्टरों का मनोबल गिरता है, बल्कि स्कूल भी लगातार डिस्टर्ब होता है। अत: औचक निरीक्षण को तत्काल प्रभाव से बैन कर देना चाहिए।

आमतौर पर तो बीईओ साहब के औचक निरीक्षणों की सूचना इधर-उधर से मिल जाया करती थी। पड़ौसी स्कूलों के साथी अध्यापक एसएमएस या फोन करके जब सूचना देते थे तो पूरा स्कूल अलर्ट हो जाता। 'फरलो' पर गए अध्यापकों की छुट्टियां रजिस्टर में लिख-लिख कर रख दी जाती और रजिस्टर के तमाम खानों को अद्यतन कर दिया जाता। बच्चों को लगाकर पूरा स्कूल साफ़ करवा दिया जाता और कोई भी क्लास तब खाली न छोड़ी जाती। पेशाब घरों के बंद पड़े ताले खुलवा दिए जाते और बच्चों को कहकर पानी की दो-दो चार-चार बाल्टियां गंदे हुए पेशाब घरों में उड़ेल दी जाती। विद्यार्थियों की चप्पलें कमरों के बाहर एक कतार में निकलवा दी जाती ताकि बीईओ साहब आयें तो खुश हो जाएँ कि यह स्कूल अनुशासन में कितना अग्रणीय है।

एक बार उड़ती हुई सूचना पर ऐसी ही तमाम तैयारियों के बावजूद बीईओ साहब नहीं आये तो पूरा स्कूल बहुत नाराज हुआ था। अध्यापकों ने इसे धोखा बताया था और जीवन के एक दिन 'खराब' किये जाने के आरोप में बीईओ साहब को मां-भैण की चुनिन्दा गालियां सुननी पड़ी थीं। अध्यापकों ने यह महसूस किया था कि यदि ऐसे ही दो-चार बार उन्हें बीईओ के औचक निरीक्षण के नाम पर स्कूल की पूर्व तैयारियां करनी पड़ गयी तो उनका न जाने कितना नुकसान हो जायेगा।

इसी उठापटक और गांव के दिनों-दिन बढ़ रहे दखल से हमारी मौज-मस्ती बहुत प्रभावित हो रही थी। वजह थी कि बहुत दिनों से सामूहिक पार्टी का सूत नहीं बैठा था। ब्याह-शादियां चल तो रही थीं, पर इकट्ठा कायक्रम बन ही नहीं पाया। मिड डे मील की रोटी-सब्जी जरूर पसारा मांड-मांड कर खाने से हम बोर हो गए थे। मिड डे मील हमारे लिए जन्मसिद्ध अधिकार की तरह था। बच्चों को मिले, न मिले। इससे हमें कोई मतलब नहीं। बच्चों की सरकार सोचे। हमें तो पेट भरने से मतलब था।

एक का न्यौता आता तो एक आध उसके साथ चला जाता। जैसे कोई स्कीम हो। एक के साथ एक फ्री।

स्टाफ सैक्रेटरी ने स्कूल के बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव को मिले कलैंडर में जाने कितने निशान लगा लिए थे। जिमाड़ों के। शुरू में तो प्राइमरी ऑफिस के ब्लैकबोर्ड पर आगामी जिमाड़ों की सूची दर्ज कर देते थे और यह भी कि किस वार को कौन-सा अध्यापक क्या खिलाए-पिलाएगा। बाद में रोज-रोज का चक्कर छोड़ते हुए स्कूल के ही पार्ट टाइम स्वीपर कम पिअन कम दुकानदार की ड्यूटी लगा दी थी कि रोज वह बारह बजे दिन के हिसाब से निर्धारित चीजें जरूर भेज दे। एक दिन बीईओ ने अपने औचक निरीक्षण के दौरान ब्लैकबोर्ड पर लिखी ये तारीखें देख ली थीं तो पूछा था—'ये क्या लिखा है। कौन सी टेबल है यह और ये क्या कोड वर्ड लिख रखे हैं। हममें से कोई क्या बोलता। पहले ही ऑफिस में झुण्ड बनाकर बैठे होने पर डांट खा चुके थे। ऊपर से यह पोल खुल गई तो बाहर और पता लग जाएगा कि स्कूल में हम क्या गुल खिलाते हैं। ये बीईओ साहब भी ऐसे ही थे। अपने निरीक्षणों को बढ़ा-चढ़ाकर अखबार में छपवाते थे। हम डर गए थे कि कहीं हमारी भी इस तरह की बातें अखबार में आ गईं तो गांव से बाहर भी सबको पता लग जायेगा कि स्कूल में हम पढ़ाते-वढ़ाते नहीं। हमने राम-राम किया कि बीईओ साहब स्कूल से चले जाएँ। उनके जाते ही हमने डस्टर से ब्लैकबोर्ड पर छपी सारी तारीखें मिटा दी। यह मानकर कि जान बची लाखों पाए।

पार्ट टाइम स्वीपर कम पिअन कम दुकानदार हमारी सब चीजों पर रुपया-दो रुपया फालतू वसूल करता, जिसका हममें से कई जने विरोध कर देते तो कई यह भी समझाते कि हम उसके पैसे कई-कई दिनों में देंगे ताकि ब्याज के चक्कर के कारण वह हमसे महंगा लगाकर भी कुछ वसूल न सके। यह राजी हो लेगा। उसी दिन मुझे समझ में आया था कि बूथ लेवल ऑफिसर कम मिड-डे-मील इंचार्ज सुधीर यादव छह-छह महीनों में उसके रुपये क्यों देते हैं।

स्कूल के ही एक साथी जय प्रकाश ने अपने लड़के की शादी की तारीख बहुत पहले तय कर ली थी और उसी दिन हमने बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादवजी के लाये हुए कलैण्डर पर तारीख को लाल पैन के गोल दायरे में इस तरह कैद कर दिया था कि दूर से ही वह नजर आ जाए और हम हमेशा यह याद रखें कि इस दिन एक खास जिमाड़ा है।

रात चांदनी थी और चांद पूरा गोल था। सड़क पर चलते हुए गाड़ी की तेज रोशनी में चांदी-सी रोशनी दिख नहीं

रही थी। हमारी मण्डली के बाहर के कुछ साथी न जाने के बहाने लगा रहे थे तो सोचा कि उन्हें मौके पर ही पकड़-पकड़ कर लाया जाए। कोई कहता कि मैं बाहर हूं या कहीं और तो हम गाड़ी लेकर वहीं पहुंच जाते। कई रुपये देने में आना-कानी कर रहे थे तो बूथ लेवल ऑफिसर कम मिड-डे-मील इंचार्ज सुधीर यादवजी की तरफ से उन्हें यह विश्वास दिलाया गया कि इस ट्रिप का सारा खर्चा किसी मास्टर की जेब से नहीं लगेगा। इसकी एक-एक पाई मिड-डे-मील के उचंती खाते से की जायेगी। तब कुछ लोगों को लगा कि बूथ लेवल ऑफिसर कम मिड-डे-मील इंचार्ज सुधीर यादवजी मुरारी लाल जी से बहुत बेहतरीन आदमी हैं। यदि शुरू से ही मिड-डे-मील का चार्ज सुधीर यादवजी के पास होता तो यह स्कूल अब तक बहुत तरक्की कर लेता।

बावजूद इसके कुछ जाने से नाकस-मौलिया कर रहे थे। पर हम न जाने वाले का कोई बहाना न सुनते और गाड़ी में जबरदस्ती उसे इस तरह बिठाते जैसे भागे हुए अपराधी को पुलिस बिठाती है। पूरे दो घंटे लग गए थे हमें इकट्ठा होने में। कहिये कि इकट्ठा करने में। पर जब चले तो मजे आ गए। ड्राइवर ने नए-पुराने गानों का बेहतरीन कलैक्शन बजाना शुरू किया तो फिर मौज-मस्ती बढ़ती गई। कई जने अपने को बाराती रंग में रंगने को बीयर-वीयर पीकर चले थे तो कई अपने शाकाहारीपने को बचाए रखने के लिए हल्दीराम के चना क्रेकर को फांक रहे थे।

बारात राजस्थान में दूर स्थित एक गांव की ढाणी में जानी थी। रात की चांदनी में रेत का दृश्य कुछ अलग ही आभास देता है। जांटी के पेड़ों के झुरमुट तरह-तरह की आकृतियां बना हमें लुभा-से रहे थे। कच्चे रास्तों के आजू-बाजू रेत के हल्के-हल्के टीले जैसे किसी सभ्यता के गवाह बने हुए हों। चांद ऊपर ही आसमान में था पर हम सब उसे भूल रहे थे। फिल्मी गानों की तेज आवाज हम न पीने वालों को भी पीने वालों के साथ मदमस्त कर रही थी। सबका मन कर रहा था कि गाड़ी को किसी खेत में रोककर ठंडी-ठंडी रेत पर जाकर थोड़ी देर नाचा जाए। टोकने की देर थी कि सब उतरकर नाचने लगे। घंटे भर नाचकर फिर से गाड़ी में सवार हुए तो हमारे शरीर थक से गए थे। हम लेकिन खुश थे। ऐसी थकान हमें अरसे बाद नसीब हुई थी।

सड़क का रास्ता बहुत दूर से था तो हम कच्चे रास्तों से होकर जा रहे थे। बारात में शामिल होने। एक गांव से दूसरा गांव जैसे एक मंजिल से दूसरी मंजिल। रात चांदनी न होती तो लगता जैसे किसी गुफा में जा रहे हैं। भीतर ही भीतर। जैसे निकलने का कोई रास्ता न हो। रेत पर भी हमारी गाड़ी मजे से चल रही थी। चल क्या रही थी, बल्कि उड़ रही थी। गांव के लोगों को पीछे छोड़ते हुए, जिसे हम कोई उपलब्धि मान रहे थे। हममें से कई जने गांव वालों पर इस तरह ऊल-जलूल टिप्पणी कर रहे थे जैसे हम बहुत बड़े रईस हैं। हमें इन पीछे छूटते पिछड़े ग्रामीणों से कुछ भी तो लेना-देना नहीं था। इस वक्त हम शानदार गाड़ी में सवार थे और खूब सारी धूल उड़ाते बेफिक्र हुए चल रहे थे।

गानों के बीच-बीच में ही कोई चुटकुला-वुटकला सुनाता तो हम सब किलकी मारकर हँसते। अब हम स्कूल में नहीं थे और यहांकुछ भी बोल सकते थे। शर्माना बोलने वाले पर निर्भर था। श्लील-अश्लील की कोई सीमा नहीं थी। मजाक में तरह-तरह के मुद्दे उछाले जाते और हम जोर से ठट्ठा फोड़ते ।

अंधेरा बढ़ गया था, पर गाड़ी की रफ्तार वही थी। हम फुल मस्ती में थे और सफर का पूरा मजा ले रहे थे कि अचानक हमारी गाड़ी रेत में फंस गईं। ड्राइवर जितनी रेस देता, गाड़ी उतनी ही रेत में धंसती। यह हुआ तो आखिर हुआ क्या। हमारी सब हंसी-खुशी मिनटों में गायब हो गई। ड्राइवर ने चल रहे मदमस्त गाने बंद कर दिए। करतार भाई भी अपने होश में आ गया और तीन-चार दूसरे साथी भी जिन्होंने एक-एक बीयर और चढ़ा ली थी और तीसरी-चौथी का ढक्कन खोलने वाले थे। गाड़ी के यूं अचानक रुकने से सारा मजा किरकिरा हो गया था। पूरे सफर में एक बार भी न बोलने वाले ड्राइवर ने बार-बार रेस देकर गाड़ी को रेत से निकालना चाहा, पर उसकी चलीनहीं। पहली बार वह सकुचाते हुए बोला-'धक्का लगाना पड़ेगा सर जी।' हम सब जैसे आसमान से पटक दिए गए हों। ...धक्का लगाना पड़ेगा। ऐसा सपने में भी न सोचा था। ...हम कोट-वोट पहने लोग धक्का लगाएंगे। गुस्सा आया ड्राइवर पर...जान-बूझ कर फंसा दी होगी साले ने। गुस्सा रेत पर भी आया और सरकार पर भी।

--'...रेत था तो सरकार ने सड़क क्यों नहीं बनवाई। ...कहां सोती हैं सरकारें। ...पब्लिक क्या राजमार्गों पर ही चलती है।' --'...कच्चे रास्तों का भी तो कोई धनी-धोरी होना चाहिए न।'

धक्का लगाना था तो लगाना ही था। ड्राइवर ने दो एक कोशिशें और की, पर गाड़ी रेत में ही धंसती गई। धक्के के सिवाय हमारे पास कोई विकल्प न था और हम बेमन से गाड़ी की खिड़कियां खोल नीचे उतर गए। ज्यादा खराब माजणा उनका हो रहा था जिन्होंने पैग-वैग लगाए हुए थे। हालांकि इस संकट में वे अपने को बहुत मजबूत दिखाने की कोशिश कर रहे थे, पर हमें पता था कि सबसे ज्यादा वही डरे हुए थे। चांद की चांदी-सी रोशनी में दूर तक कोई रोशनी नहीं दिखाई दे रही थी। या तो दूर तक कोई गांव नहीं था या उस वक्त लाइट नहीं थी कि कोई गांव हमें दिखता।

गाड़ी से उतरे तो ही पता चला कि यहां कितना रेत है। हमारे पांव रेत में धंसे हुए थे और हम रेत से घिरे थे। बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादवजी ने थोड़ी हिम्मत दिखाई, बोले--'चलो, सारे मिलकर धक्का लगाते हैं। इतने आदमी हैं हम।' कुछ ने मन से कुछ ने बेमन से कहा-'हां।' कुछ का पता ही नहीं चल रहा था कि उन्होंने हां कहा कि ना।

ड्राइवर ने गाड़ी से बाहर आ पिछले टायरों के नीचे से थोड़ी रेत को निकाला ताकि लीक साफ रहे और धंसी हुई गाड़ी निकल जाए। वह जल्दी-से रेत निकाल सीट पर जाकर बैठ गया और हमें गाड़ी के आगे जाकर धक्का लगाने को कहा। हम तीन-चार जने गाड़ी के बोनट के आगे खड़े हो गए और दूसरे साथी भी यथा जगह गाड़ी के हाथ लगाए हुए थे। ड्राइवर ने अपनी पोजीशन संभाली तो हमने भी धक्का लगाना शुरू किया। गाड़ी थोड़ा ड्राइवर के जोर से, थोड़ा हमारे जोर से पीछे को चली। हमारे जी में जी आया। लगा कि अब हम गाड़ी को खराब रास्ते से निकाल देंगे। हमने फिर से एक-दो-तीन करके जोर लगाया। पर कोई बात नहीं बनी ड्राइवर ने भी पूरी कोशिश की। लेकिन गाड़ी फिर फंसने लगी और हम धूल में सने लोगों का उत्साह ढीला होने लगा। हमारा सारा मजा निकल गया।

ड्राइवर ने होर्न दे फिर हमें गाड़ी के पीछे जाने को कहा ताकि गाड़ी थोड़ी-सी आगे को सरक जाए और वह तेजी से उसे बैक कर ले। हम सब जने गाड़ी के

पीछे और दायें-बायें लग गए। गाड़ी जरा-भी न सरकी। अब हम गाड़ी के दोनों तरफ जा-जाकर कोशिश करने लगे और असफलता से निराश होने लगे। हमारे आस-पास इतना रेत उड़ रहा था कि चांद तक हमें धुंधला नजर आने लगा। साथी लोग थक गए थे और पेशाब-बीड़ी के बहाने इधर-उधर होने लगे थे।

चिंता हमारे चेहरों पर अधिक थी। हम होश में थे और ऐसी स्थिति को देख भयभीत थे। सुनसान इलाके में कब क्या हो जाए। हमारे कपड़े-वपड़े सब रेत से सन गए थे। लग ही नहीं रहा था कि हम वे बारात के लिए पहनकर आए हैं। धूल हमारे चेहरों पर भी जम चुकी थी। गाड़ी की हैडलाइटों में धूल के कण हमारे बालों,आखों की पुतलियों व भौहों पर साफ देखे जा सकते थे। मुझे रह-रह कर छींके आ रही थीं। तय था कि सांस के साथ धूल भीतर जाने लगी थी और हम इधर-उधर हो अपने को धूल से बचाने का प्रयास कर रहे थे।

ड्राइवर ने हारकर गाड़ी बंद की तो सब कुछ जैसे शांत-शांत सा हो गया। रेत और चांद का संगम देखने लायक था। रेत के समुद्र में हमारी नाव ऐसी फंस गई थी कि हम न घर के थे न घाट के। पानी की भी एक दो बोतलें थीं जिन्हें हमने कब का पी लिया था। करतार भाई ने अपनी मंडली के साथ दारू की बोतलें ले बोनट के पास खड़े हो-होकर पैग बनाने शुरू किए। भाई ने बोतल और शराब से भरे गिलासों को बोनट पर जचा दिया और साथियों के साथ एन्ज्वॉय करने लगा। उसे पता था कि चिंता करने वाले हम लोग बहुत हैं।

बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव को हैडमास्टर साहब एक साइड में ले गए और अश्लील इशारा करते हुए बोले-'और चाल्लो बरात म्हं ।'

विजय मुस्कराए भर ही थे कि हैडमास्टर साहब ने इस कार्यक्रम की योजना बनाने वाले एक मास्टर पर ही जातिसूचक टिप्पणी कर दी--'खातीड़े के चक्कर में आओगे तो ऐसा ही होगा।'

यह किसी और को सुनाई न दिया। देता तो रेत में रेत का रंग कुछ अलग ही देखने को मिलता। कोई कुछ न बोल रहा था। सबको मालूम था हैडमास्टर साहब और एक-दो दूसरे मास्टरों में जातिवाद कहां तक घुसा हुआ है। यह समय बोलने का था भी नहीं। पहले हमें गाड़ी की समस्या से जूझना था। रेत से गाड़ी न निकली तो हम कहीं के न रहेंगे और भूखे पेट बिन बिस्तरों के रेत पर ही सोना पड़ेगा। सुना था कि रेत वाले इलाकों में ऐसे-ऐसे सांप होते हैं जो आदमी की छाती पर आकर बैठते हैं तो उसे सांसों ही सांसों में पी जाते हैं। ऐसे समय में हमें सारी वे बातें याद आ रही थीं जो रेत की थी और बहुत खतरनाक भी। खतरनाक भी और डरावनी भी। गनीमत यह थी कि रात चांदनी थी और चांद सिर के ऊपर दोपहर के सूरज की तरह आसमान में टंगा था। रात अंधेरी होती तो हमें कुछ न दिखता। तब भी नहीं जब हम सब अपने-अपने

मोबाइलों की टॉर्चें जला लेते। हमें भूख सता रही थी और लग रहा था कि आज की रात इस रेत के समुद्र में ही गुजारनी पड़ेगी। हम न तैर सकने वाले नाविक थे और हमारी नाव बीच मंझधार में फंसी हुई थी।

ड्राइवर और हम सबके चेहरों पर चुप्पी छा गई थी। बोले तो कोई क्या बोले। हमने अपना-अपना पूरा जोर लगा लिया था, लेकिन उससे पार नहीं पड़ रही थी और हम मंजिल तक पहुंचने वाले आधे रास्ते में ही लड़खड़ाकर गिरने वाले थे। हम सब अपने-अपने मोबाइलों से दोस्तों को सूचित कर चुके थे, पर कोई हमारी मदद नहीं कर पा रहा था। कइयों ने तो फेसबुक पर स्टेटस तक अपडेट कर दिए थे। दोस्त मदद के नाम पर बस हमें लाइक कर रहे थे। ऐसे समय हमें खीज हो रही थी कि अपने बाल नोच लें...यहां जान को बनी है और दोस्तों को लाइक सूझ रहा है। साले खुद फसेंगे तो पता चलेगा।

'ऐसे कब तक खड़े रहेंगे...' मैं बूथ लेवल ऑफिसर कम मिड-डे-मील इंचार्ज सुधीर यादवजी को बोला।

'फिर क्या करें।' ...वे बोले।

'गाड़ी तो निकालनी ही पड़ेगी। कोई ट्रैक्टर-वै्क्टर नहीं मिल जाए कहीं से...'

सुधीर यादवजी हंसे-'ठीक कहते हो सुशील। ट्रैक्टर भी साथ ले आते।'

'तुम यार हंसते बहुत हो। मेरी बातों को कभी गंभीरता से भी लिया करो।'

'बुरा मान गए सुशील जी। गांव पीछे देखो तीन-चार किलोमीटर दूर छोड़कर आए है। कौन जाएगा वहां।'

मैनें तुरंत कह दिया--'कैसी बात करते हो यार। मैं जांऊगा। एक जना और मेरे साथ भेज दो।'

'पैदल जाना पड़ेगा। रेत में से। जा पाओगे।'

'हां, जाऊंगा।

मैंने अपने साथ धर्मेश को लिया और हम गांव जाने के लिए पैदल ही चल पड़े।

रात चांदनी थी और दूर से गांव एक धब्बे की तरह दिख रहा था। दसेक का टाइम था। गांव में सोता पड़ा हुआ था। कुत्तों के भौंकने की आवाजें लगातार तेज होती जा रही थीं। हमारे कदम फुर्ती से उठ रहे थे। कोई ट्रैक्टर वाला ढूंढना था जो हमारी फंसी हुई गाड़ी निकाल दे। कुत्ते हम अजनबियों के पीछे पड़ गए और किसी तरह हमने उनसे अपने को बचाया। हम संभलकर चलने लगे। जाने कब कोई कुत्ता पिंडी दबोच ले और हमें लेने के देने पड़ जाएं।

धर्मेश ने अपने मोबाइल की टॉर्च जलाई हुई थी...कोई कुत्ता भौंकता तो वह उसकी आंखों में मार जोर से 'तोह् तोह्' कहता। कुत्ता टॉर्च की रोशनी से दूर भाग जाता।

सामने गांव नजदीक ही दिख रहा था। पेड़ों के झुरमुट से अंधेरे का गुच्छा सा बना हुआ था। हम आगे बढ़े तो पहली बिल्डिंग दिखी। बिल्डिंग बड़ी थी। उसका गेट आधा बंद था। आधा खुला। भीतर तक खाली सा बड़ा मैदान।

'स्कूल लगता है मेरे को तो'—

धर्मेश ने अंदाजा लगाया।

बात को पुख्ता करने के लिए आधे खुले और आधे बंद गेट की थम्बियों पर मोबाइल की टॉर्च की रोशनी फेंकी तो हल्के-हल्के लाल रंग में दिख रहे 'शिक्षार्थ' जैसे शब्द दिखायी दिए।

धर्मेश ने कहा—'यहांभी वही सब कुछ है। न जाने कब पेंट करवाया होगा और यह आधा गेट जाने कब से टूटा पड़ा होगा। मास्टरों के पास फुर्सत कहां है जो स्कूलों पर ध्यान दें। महीने वाले दिन तनख्वाह उनके खातों में जानी चाहिए, फिर सब अपनी ऐसी-तैसी कराएं।'

धर्मेश शुरू हो चुका था। मैंने ही उसे याद दिलाया—'भाई अपनी गाड़ी फंसी हुई है। ट्रैक्टर लेकर चलना है। पहले वह देखते हैं...'

'वह तो फंसेगी ही...'—धर्मेश ने कहा तो मैं कुछ समझा नहीं और उसके साथ आगे को बढ़ गया।

सर्दी थी और लोग घरों के भीतर सोए हुए थे। गांव जिस तरह से शांत था, लग रहा था सोए हुए उसे काफी वक्त हो गया हो। गांव के लोगो में जल्दी सोने की आदत है। लाइट-वाइट भी नहीं थी। गलियों में चांद की वजह से कच्चे-पक्के मकानों की परछाइयां कई तरह की आकृतियां बनाए हुए थीं। गांव में हमें कोई दिख नहीं रहा था कि उससे कुछ पूछते। हम सूनी गलियों में घूम रहे थे। गांव छोटा ही दिख रहा था। ढाणी टाइप।

गली के मोड़ पर एक कुत्ता फिर भौंका। मैंने उसे 'तोह् तोह्' कहकर चुप किया।

धर्मेश ने कहा-'ऐसे कब तक चलते रहेंगे। किसी को जगा कर पूछ लेते है कि ट्रैक्टर किसके यहां मिलेगा। नहीं तो चक्कर ही काटते रहेंगे।'

मैंने गर्दन के इशारे से ही हां में हां मिलाई और एक घर के दरवाजे के लटके कड़े को जोर-जोर से बजाया। कोई आवाज़ नहीं आई। धर्मेश ने भी फिर से वही क्रिया दोहराई। इस बार बात बन गई। भीतर से कोई आवाज़ आई। हम जान गए कि हमारी आवाज़ सुन कोई जाग गया है। अधेड़ उम्र का एक आदमी हाथ म्हं टॉर्च लेकर आया और दरवाजा खोल हमसे पूछा—'कुण सै भाया...इतणी रात म्हं...'

'बराती हैं हम। दूर गांव जाना है। रेत में हमारी गाड़ी फंस गई...' मैं बोला।

'ट्रैक्टर चईए। हां... घणु रेत सै उत। या नरेगा के चाल्ही। सारो नास कर दियो। इतनु सूणो रास्तो रेत गेर कै खराब कर दियो। सरंपच कै समझ ना आवै। तीन महना सी यो ही हाल सै। थाम चाल्हो मेरे साथ। मैं चाल्हूं ट्रैक्टर आला कनै...' हमारे जी में जी आया। अब हमारी गाड़ी निकल जाएगी और हम बारात में चले जाएंगे। भूख कब से हमें सता रही थी।

'जी बाबा जी।'—मैंने कहा।

उस आदमी ने हमें ऊपर से नीचे कई बार घूर कर देखा। बोला—'के काम करो भाया।'

'हम पढ़ाते हैं। स्कूल में। हरियाणा से हैं।'—मैं उत्साहित था कि किसी ने हमसे हमारा परिचय भी पूछा।

'...थे मास्टर सो।'—अधेड़ उम्र का वह आदमी यह कहकर थोड़ा हंसा।

मेरे समझ में उसकी हंसी का अर्थ बिल्कुल न आया। मैं कुछ बोलता कि धर्मेश ने मेरा हाथ दबा दिया। उसके हाथ दबाने को मैं समझ गया कि अब कुछ बोलना नहीं है। बस ट्रैक्टर का जुगाड़ करना है।

अधेड़ उम्र का आदमी चद्दर की बुक्कल मार हमारे साथ चल पड़ा। वह हमारे आगे-आगे था और दो गलियां पारकर एक बड़े से मकान जहां कुछ-कुछ लाइटें भी जल रही थीं, के सामने रुक कर हेल्ले मारने लगा।

'भाया गिरवर... ओ भाया गिरवर...सांकळ खोल्लो...'

कोई आवाज न आने पर उसने बड़ा-सा दरवाजा खटखटाया और फिर कहा- 'भाया गिरवर...ओ भाया गिरवर...सांकळ खोल्लो...'

भीतर से आवाज आई...'कुण सै...'

'मैं सूं भाया...झोल्लू...... सांकळ खोल्लो...'

कुछ देर बाद सांकल खुली। एक आदमी आया और बोला-'के हुयो झोल्लू...इतणी रात...'

'ये बाहर गांव का सीं। सरकारी मास्टर। बरात म्हं जाणु थो आणनै। गाड़ी फंसगी तालियां आला रास्तै। रेत म्हं...ट्रैक्टर ले चाल्लो भाया...'

'मास्टर सीं ?'—गिरवर ने हैरानी से इस तरह पूछा जैसे मास्टर होना कोई गुनाह हो।

फिर उसने बोलना शुरू किया—'रोज उत कोई न कोई गाड़ी फंसी रह सै। सरपंच की इसी-तिसी हुई थी। मैं नाट्यो थो...सरपंच बणतां ई सब चौधरी बण ज्या सैं। नू नही कै गाम का कहं और आदमी सीं बी सलाह ले ल्यां।' कहता हुआ वह दरवाजा पूरा खोल भीतर गया और पांच-सात मिनट बाद ट्रैक्टर को स्टार्ट कर बाहर ले आया।

हम चारों ट्रैक्टर पर लद लिए और चांद की चांदनी में फंसी हुई गाड़ी की ओर चल पड़े।

पहली बार गांव की चुप्पी टूटती-सी लगी।

ट्रैक्टर अपनी गाढ़ी पीली रोशनी फेंकता चल रहा था और हम इत्मीनान से चांद और चांदनी को निहार रहे थे।

ट्रैक्टर की लाइटें और आवाज वहां रह रहे साथियों में भी आशा जगा रही थी। हमारे नजदीक पहुंचते ही इधर-उधर अलसाए साथी हरकत में आ गए। वे समझ गए थे कि ट्रैक्टर में हमीं लोग बैठे हैं।

ट्रैक्टर रुका। हम नीचे उतरे। गिरवर भी ट्रैक्टर से नीचे आ फंसी हुई गाड़ी का मुआइना करने लगा। गाड़ी रेत में फंसी थी। यह पांच-सात सौ फीट का टुकड़ा था जो खतरनाक था। उसके आगे रास्ता ठीक था जो दो किलोमीटर बाद एक पक्की सड़क में जाकर मिल जाना था। गिरवर ने गाड़ी को आगे निकालना उचित समझा। वह ट्रैक्टर पर चढ़ा और खेतों के बीच से उसे निकाल गाड़ी के आगे खड़ा किया।

गिरवर ट्रैक्टर से उतरा। गाड़ी को चारों ओर से देखा। बोनट काफी धंसा हुआ था। धक्का लगाने से बात नहीं बनती। वह आगे की ओर नीचे बैठ गया और रेत को बाहर निकालने लगा। आगे थोड़ी सी जगह हुई तो उसने साथ आए झोल्लू को कहा—'ट्रैक्टर म्हं सीं रस्सा दिइये।'

झोल्लू ने ट्रैक्टर के बॉक्स को खोल एक रस्सा निकाला और उसे गाड़ी व ट्रैक्टर के बीच कसकर बांध दिया। गिरवर ट्रैक्टर पर चढ़कर उसे आगे करने लगा। गाड़ी टस से मस नहीं हो रही थी। कोई बड़ी रुकावट थी जो समझ नहीं आ रही थी। गिरवर ने फिर प्रयास किया। रस्सा तन-तन कर रह जाता। लगता था थोड़ा और खिंचा तो टूट ही जाएगा और वही हुआ। इस बार गिरवर ने रेस थोड़ी और तेज दी तो रस्सा झटके से

टूट गया। ट्रैक्टर एकदम से आगे दौड़ा।

हम चिल्ला उठे—'रस्सा टूट गया...'

देख गिरवर ने भी लिया था कि रस्से के दो टुकड़े हो गए। उसने ट्रैक्टर को बैक किया और रस्से के टूटे हुए सिरे को उठाकर देखा...इस रस्से से कोई बात नहीं बननी थी।

तब गिरवर ने झोल्लू को कहा—'झोल्लू तू नू कर...सतवीरा का कुआ पै जाअ लाव लिया...नाट्टै तो मेरी बात करवा दिइये फोन पै...'

झोल्लू गिरवर के बताए कुएं की ओर चला गया। गिरवर ने तब तक गाड़ी के पिछले टायरों के नीचे से खूब सारा रेत निकाल दिया। कस्सी नहीं थी तो गिरवर ने अपने हाथों को ही कस्सी बना लिया।...तभी उसे मालूम हुआ कि एक टायर के नीचे बड़ा सा पत्थर फंसा था। पत्थर ही गाड़ी को आगे नहीं सरकने दे रहा था।

गिरवर ने पत्थर के चारों ओर से थोड़ी और मिट्टी निकाली और हमारे में से एक साथी के सहयोग से पत्थर को पांव के कांटे की तरह बाहर निकाल दिया। उसने चारों टायरों के आगे खालियां बना दी ताकि गाड़ी निकलने में कोई दिक्कत न हो।

गिरवर के चेहरे पर तसल्ली थी...कि गाड़ी निकल जाएगी।

...अब झोल्लू का इंतज़ार था।

कुछ देर बाद झोल्लू आता हुआ दिखा तो हमें चैन मिला। उसके सिर पर भारी भरकम लाव थी। हम सब झोल्लू की हिम्मत ही मान रहे थे जो अकेला लाव ले आया।

गिरवर ने झोल्लू के साथ मिलकर लाव ट्रैक्टर और गाड़ी के बीच कई लड़ कर बांध दिया।

तब झोल्लू ने कहा—'ईब राम को नाम ल्यो भाया गिरवर...'

गिरवर ट्रैक्टर पर चढ़ा। उसने स्टेरिंग और रेस-ब्रेक को चुचकारा। तीन-चार बार रेस दबाकर ट्रैक्टर को जैसे दौड़ जीतने के लिए तैयार किया...ट्रैक्टर बेताब था और गिरवर भी...

गिरवर ने तब क्लिच दबाकर पहला गियर डाला और थोड़ी रेस दे ट्रैक्टर को आगे किया। इस बार गाड़ी हिली ही नहीं, ट्रैक्टर के साथ दूर तक गई। हम देख रहे थे गाड़ी एक सयाने बच्चे की तरह ट्रैक्टर के पीछे-पीछे दौड़ रही है।

हमारे चेहरों पर मुस्कान थी। झोल्लू और गिरवर भी खुश थे कि उन्होंने अनजान राहगीरों की फंसी हुई गाड़ी बाहर निकाली।

गाड़ी को गिरवर ने सेफ रास्ते तक पहुंचा दिया। उसके आगे रास्ता खराब नहीं था। गिरवर और झोल्लू ने बंधी हुई लाव खोल उसका बड़ा सा घेरा बना ट्रैक्टर पर रख दी।

हम हैरान थे कि इस गलाकाटू समय में अभी भी गिरवर जैसे लोग हैं।

हम गिरवर के आगे नतमस्तक भी थे। हमें नहीं पता था कि गिरवर के गांव का नाम क्या है। हम सब तकनीक से लैस थे और असहाय। किसी के स्मार्ट फोन में ऐसा कोई फार्मूला नहीं था कि हम रेत में फंसी हुई गाड़ी को बाहर निकाल पाते।

हमने बूथ लेवल ऑफिसर कम मिड-डे-मील इंचार्ज सुधीर यादव जी के मार्फत हैडमास्टर साहब को कहलवाया-'कुछ दो भी इन्हें। इतनी दूर से आए हैं ये।'

सब साथियों ने इस बात का समर्थन किया। हैडमास्टर साहब थोड़ा कंजूस थे। सारा ध्यान उनका भैसों के खरीदने-बेचने में रहा है। भैसों के लिए वे कितना भी खर्च कर सकते हैं। एक खुद पर खर्च करने में देर नहीं लगाते। अच्छा और मोटा खाते हैं। इस वक्त भी वो यह सोच रहे थे कि बरात में पहुँचते ही बीस-तीस काजू की कतलियों की तो खैर नहीं होगी।

हैडमास्टर साहब ने बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव के कहने पर पांच सौ का एक नोट निकाल गिरवर को देना चाहा। गिरवर ने हाथ जोड़ लिए। बोला-'थम ठीक सीं पढ़ा लिया करो गुरुजी। सरकारी स्कूलां म्हं इब गरीबां का बालक ही पढ़ी सीं। म्हारो मेहनतानों ऊमें ही आ ज्यवैगो...थारी चाह्लै तो म्हारला मास्टरां नै बी कहकै जाइयो। 'कख' ना पढ़ा कै दीं। इतणा मास्टर सीं। सारा का सारा एक जिसा...'

गिरवर के बोलने से हम सन्न थे। उसने जैसे हमें आइना ही दिखा दिया हो।

हम डिजिटल इंडिया के भीतर एक पिछड़े गांव में खड़े थे जहा ंगिरवर और झोल्लू जैसों को गूगल, मेल, फेसबुक, ट्विटर जैसे नामों के बारे में कुछ नहीं पता था, बावजूद इसके जो अच्छे से अच्छे पढ़े-लिखों को पाठ पढ़ाना जानते थे।

चांद वैसे ही आसमान में टंगा था, पर इस बार वह हमारी आंखों में बुरी तरह चुभ रहा था।

सम्पर्क : 09992885959, 09416907290

इस कहानी का किसी भी जिंदा या मृत व्यक्ति से कोई संबंध नहीं है। यदि किसी को इसमें अपना चरित्र दिखायी देता है तो वह महज एक संयोग होगा।

हैडमास्टर साहब ने बूथ लेवल ऑफिसर सुधीर यादव के कहने पर पांचसौ का एक नोट निकाल गिरवर को देना चाहा। गिरवर ने हाथ जोड़ लिए। बोला-'थम ठीक सीं पढ़ा लिया करो गुरुजी। सरकारी स्कूलां म्हं इब गरीबां का बालक ही पढ़ी सीं। म्हारो मेहनतानों ऊमें ही आ ज्यवैगो...थारी चाह्लै तो म्हारला मास्टरां नै बी कहकै जाइयो। 'कख' ना पढ़ा कै दीं। इतणा मास्टर सीं। सारा का सारा एक जिसा...

गिरवर के बोलने से हम सन्न थे। उसने जैसे हमें आइना ही दिखा दिया हो।

हम डिजिटल इंडिया के भीतर एक पिछड़े गांव में खड़े थे जहा ंगिरवर और झोल्लूजैसों को गूगल, मेल, फेसबुक, ट्विटर जैसे नामों के बारे में कुछ नहीं पता था, बावजूद इसके जो अच्छे से अच्छे पढ़े-लिखों को पाठ पढ़ाना जानते थे।

चांद वैसे ही आसमान में टंगा था, पर इस बार वह हमारी आंखों में बुरी तरह चुभ रहा था।

कहानी

यह कहानी उन दयालु महानुभावों के श्री चरणों में समर्पित है जिनके लिए स्वार्थी इन्सान को छोड़कर सारे वफादार जीव दया और ममता के अधिकारी हैं।

दया धर्म का मूल है उर्फ़ कुत्ता कथा

❑हरभगवान चावला

यह उस समय की कथा है जब लाख या करोड़ का घोटाला, घोटाले का अपमान समझा जाता था, तब लाखों-करोड़ रुपयों के घोटालों का चलन था और इसे करोडों-करोड़ में बदलने के उपाय किए जा रहे थे। यह उस समय की कथा है जब राह चलते लोग सरेआम मार दिए जाते थे, मासूम बच्चियां हर रोज़ बलात्कार का शिकार होती थीं, जब जन नेता क़त्लेआम करवाते और बदले में सत्ता का सुख भोगते, जब अपने भाषणों में नफरत का वमन करने वाले आदमी की शवयात्रा निकलती तो आतंक के मारे शहर के शहर सन्नाटे में डूब जाते, जब महानगर के फुटपाथ पर सोये लोग बिला वजह लाठियों और सरियों से पीटे जाते और पीटने वाला नायकत्व के रथ पर सवार होकर गर्व से अपने गुंडा होने की घोषणा करता। इन हालात में निज़ाम चुप रहता। लोगों पर मुकद्दमे दर्ज होते और क्योंकि मुकद्दमा भुगतने वाले ख़ास आदमी होते, इसलिए बाइज़्ज़त बरी होते। ऐसे में देश के धर्म-प्रेमी दयालु लोग तीर्थयात्रा पर निकल जाते या चुपचाप भजन-कीर्तन करते, कविगण मदहोश कर देने वाली प्रेम कविताएं लिखते, युवा आई.पी.एल का भव्य आयोजन देखते और ट्वीट करते। इसी स्वर्ण युग में एक युवा राजकुमार अपने जीवन का पहला चुनाव लड़ने निकला। वह वाकई 'मर्द बच्चा' था। उसने जनसभाओं में विधर्मियों के सिर काट देने का ओजस्वी बयान दिया, चुनाव जीता, मुकद्दमा भोगा और बाईज्जत बरी हुआ। इस राजकुमार की पूज्य अम्मा जी बड़ी जीव प्रेमी महिला थीं (याद रहे, जीवों में इन्सान शामिल नहीं होता)। दयालु अम्मा जी ने जीवों के प्रति करुणा की नदी बहा दी थी। वैसे भी यह उस युग का चलन था कि चर्चा में रहना है तो इन्सानों की नहीं, जीवों की बात करो। लोग अक्सर उनकी दयालुता की चर्चा करते। असल में जीवों के प्रति दया की अवधारणा पश्चिम से आई थी। आप जानते ही हैं कि हर अच्छी चीज पश्चिम से ही आती है। इस अवधारणा में तो एक और अच्छी बात थी, इसके साथ पैसा भी आया था, स्वयंसेवी संस्था बनाओ और पैसा लो। सो, राष्ट्रीय स्तर पर, राज्यों के स्तर पर, शहरों के स्तर पर 'जीव प्रेमी संघ' बन गए थे (असल में यह नाम अंग्रेजी में था-एनीमल लवर्स एसोसिएशन, यहां हमने उसका हिन्दी अनुवाद दिया है, बाद में तो इसकी शाखाएं, प्रशाखाएं भी बनी, जैसे स्नेक लवर्स एसोसिएशन, डॉग लवर्स एसोसिएशन, मंकी लवर्स एसोसिएशन आदि)। सरकार भी अम्मा जी के सामने नतमस्तक हुई, उनकी बात मानी और जीवों को संरक्षण देने की ठानी। अब सवाल यह था कि किन जीवों को संरक्षण दिया जाए ? जब ऐसे सवाल निजाम के सामने आते हैं तो परम्परा का महत्व बढ़ जाता है, संस्कृति मूल्यवान हो जाती है। परम्परा और संस्कृति को खंगाला गया। निष्कर्ष निकला कि जो शक्तिशाली हो, उसे संरक्षण दिया जाना चाहिए। निज़ाम खुश हुआ कि उसने अब तक जो किया है, सही किया है। तमाम धर्मगुरुओं, राजनेताओं तथा गुंडों को संरक्षण दिया जा चुका है। अब इस आचार-संहिता के आलोक में जीवों का मूल्यांकन किया गया। 'महाजनो येन गतः' सिद्धांत के अनुसार गाय, साँड, शेर, बाघ आदि को बहुत पहले ही संरक्षण दिया जा चुका था। इस पर पुनर्विचार का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। जिन जीवों को संरक्षण के योग्य पाया गया, उनमें मुख्य रूप से सांप, बंदर और कुत्ता शामिल थे। सांप के पास जहर था, बंदर के पास पंजा, कुत्ते के पास दांत। विचार कुछ और जीवों पर भी किया गया पर भैंस के पास अक्ल नहीं थी, बकरी के पास सींग तो थे पर उसने कभी न तो सींगों की ताकत को समझा था, न कभी इनका इस्तेमाल ही किया था, सुअर के पास सिर्फ कीचड़ था, कीचड़ उछालना अब यहाँ की संस्कृति थी और कीचड़ से अब कोई नहीं डरता था, भेड़ तो भेड़ थी, मुर्गे के पास तो निरीहता के अलावा कुछ था ही नहीं। इसलिए इन जीवों को जीने के अधिकार के काबिल नहीं माना गया। बेचारे मक्खी-मच्छर की तो बिसात ही क्या? उनको मारने के लिए तो हर रोज नए तरीके इजाद किए जा रहे थे।

चुनिंदा जीवों को संरक्षण देने के कुछ सार्थक नतीजे सामने आए। सपेरे और मदारी बेरोजगार हो गए। इससे निजाम पर तो कोई फर्क नहीं ही पड़ा, क्योंकि ये कमजोर लोग थे और निजाम का कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे, सभ्य लोग तो बहुत खुश हुए, क्योंकि सांप और बंदर का तमाशा दिखाते ये मैले-कुचैले, घृणित लोग उन्हें कभी भी पसंद नहीं थे, कहीं भी मज़मा लगाकर ये लोग सभ्य नागरिकों के जीवन में खलल ही डालते थे। उधर, अमीर लोगों के लिए व्यवसाय के नए क्षितिज खुल गए। जगह-जगह अच्छी नस्ल के कुत्तों (जाहिर है, पश्चिम के कुत्ते ही श्रेष्ठ थे-हर चीज की तरह) के क्रय-विक्रय और उनके आहार-विहार, इलाज आदि की दुकानें खुल गईं। इससे लोगों का जीवन स्तर तो सुधरा ही, राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि हुई। बड़े लोग अब कुत्तों के साथ सैर करने निकलते, किसी के घर के सामने, सड़क के किनारे या पार्क में शान से उनको 'पॉटी' करवाते और इतराते हुए अपने कुत्तों के सयानेपन के किस्से सुनाते। कभी कुत्ते कार में अपनी मालकिन की गोद में अठखेलियां करते होते या किसी खास और आकर्षक पोज में कार के पिछले शीशे के पास बिठा दिए जाते ताकि लोग देखें और कहें- 'ओ! हाऊ स्वीट।'

अब शहरों के आवारा, देसी कुत्ते भी सड़कों पर मटरगश्ती करते फिरते थे क्योंकि म्यूनिसिपल कमेटी के लोग न तो उन्हें ज़हर देकर मार सकते थे, न गाड़ी में भरकर ले जा सकते थे। नतीजतन, अब वे सड़कों पर दनदनाने लगे थे। सांडों और गायों से तो पहले ही शहरों की सड़कें भरी रहती थीं, ऊपर से कुत्ते! अब सड़कों पर

लोग कम होते थे, जानवर ज्यादा। इन जानवरों से टकरा कर या इनकी लड़ाई और हमले की चपेट में आकर रोज वाहन सवार मरते या घायल होते पर इनमें निन्यानवे प्रतिशत सामान्य लोग होते थे और इनकी मौत या चोट से निज़ाम को कोई फर्क नही पड़ता था। कभी-कभी कोई बड़ा आदमी जब इनकी चपेट में आता तो अखबारों में ख़बरें छपतीं, हंगामा होता, फिर सब वैसा ही हो जाता।

देश के बहुत सारे शहरों की तरह इस छोटे से शहर में भी 'डॉग लवर्स एसोसिएशन' (कुत्ता प्रेमी संघ) की विधिवत् स्थापना हुई। एक मिल मालिक को इस संघ का अध्यक्ष बनाया गया। इस आदमी का शहर के बीच में एक गत्ता बनाने का कारख़ाना था। यह कारखानेदार मजदूरों के शोषण के लिए बदनाम था। इस कारख़ाने से बदबू उठती थी, जिससे आसपास के लोगों का जीना हराम हो गया था। वे बार-बार कारख़ाने को यहां से हटाने की मांग करते थे पर वे आम लोग थे। उनकी सुना जाना तो किसी भी तरह से जायज़ नहीं था। हाँ, अगर शिकायत कुत्तों की ओर से आई होती तो कुछ सोचा भी जाता। इस संस्था के सचिव बने शहर के एक मशहूर चिकित्सक। ये चिकित्सक महोदय अपने मरीज़ों की चमड़ी तक उतार लेने के लिए अच्छा-ख़ासा नाम कमा चुके थे। उनके घर में एक-से-एक उम्दा नस्ल के चार-पाँच कुत्ते थे और इस वजह से उन्हें संभ्रांत वर्ग में गर्व और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। अब उनसे बेहतर सचिव भला कौन होता ?

उस शहर में कई पार्क थे, पर उनमें से एक पार्क बड़ा और हरा-भरा था। इस पार्क में सुबह-शाम बच्चे, बूढ़े, जवान घूमने या बैठने आते। इसी पार्क में रहते हुए एक कुतिया ने चार पिल्लों को जन्म दिया। पिल्ले बड़े हो रहे थे और तेजी से कुत्ते होते जा रहे थे। जिन बच्चों के हाथ में कोई खाने का सामान होता, ये पिल्ले उनके पीछे पड़ जाते। पिछले एक महीने में इन पिल्लों द्वारा बच्चों को काट खाने की चार वारदातें हो चुकी थीं। कुछ बच्चों ने तो यहाँ आना छोड़ ही दिया था। पार्क में घूमने के लिए बनी पगडंडी अक्सर इन पिल्लों के मल से भरी रहती। इन पिल्लों की माँ वैसे तो इन्हें आत्मनिर्भर जान कर इन्हें छोड़ बाहर घूमती रहती थी, पर उसने अभी इस पार्क की मिल्कियत को छोड़ा नहीं था। वह कभी-कभी अपने किसी साथी कुत्ते के साथ आती और अपने बच्चों को संभाल जाती। एक बार तो उस कुतिया और उसके दोस्त कुत्ते ने पार्क में अंतरंग प्रेम का ऐसा प्रदर्शन किया कि घूमने आए लोग शर्म से पानी-पानी हो गए। इसी पार्क के ठीक सामने के मकान में एक औरत रहती थी-माया अग्रवाल। माया 'कुत्ता प्रेमी संघ' की माननीय सदस्या थी। वह हर रात पार्क में उन पिल्लों को संभालने आती-जिन्हें वह

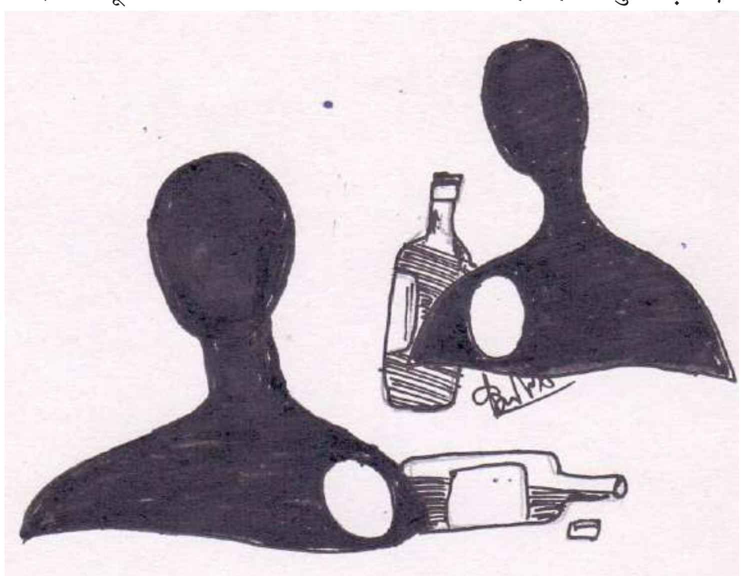

'पॅपीज़' कहती थी। यूँ तो ये पॅपीज़ देसी थे पर उसे उनमें 'लैब्रा' की झलक दिखाई पड़ती थी। उसे लगता ज़रूर इनमें लैब्रा का डीएनए है। उसके हाथ में कभी रोटी होती तो कभी बिस्कुट। वह पहले उन्हें अपने सीने से चिपकाती, साथ लाई हुई चीज़ खिलाती, थोड़ी देर उनके साथ खेलती रहती, फिर पार्क में मौजूद लोगों को इस नज़र से देखती कि पॅपीज़ को किसी ने तंग किया तो अंजाम अच्छा नहीं होगा। यह औरत हमेशा अकेली होती, उसके साथ कभी किसी मर्द को नहीं देखा गया था, न किसी औरत को। वह पार्क में भी किसी से कोई बात नहीं करती थी।

पार्क में नियमित रूप से आने वाले सब लोग उसे पहचानते थे। उनके हावभाव देखकर ऐसा लगता था कि वे उससे डरते भी थे। शायद यही कारण था कि बच्चों को काट खाने की वारदातों के बाद भी पिल्लों के ख़िलाफ कोई कार्रवाई नहीं हुई थी।

एक गांव के सरकारी स्कूल से सेवानिवृत्त शिक्षक बृजलाल पार्क के पास की कॉलानी में ही रहते थे और रोज़ अपने पांच वर्षीय पोते के साथ उसी पार्क में घूमने आते थे, पर उन्होंने कभी माया अग्रवाल को नहीं देखा था और न ही उसके बारे में कभी सुना था। कारण कि वे शाम को जल्दी आते और जल्दी ही वापस चले जाते। उनका बेटा शहर से दूर किसी और शहर में नौकरी करता था। इस समय वे घर में अकेले मर्द थे। पिछले कुछ महीनों से शहर में अपराध बहुत बढ़ गए थे, सो वे अँधेरा होने के बाद घर में ही रहना पसंद करते थे। एक दिन इत्तिफाक कुछ ऐसा हुआ कि वे पार्क में बेंच पर बैठे थे कि उन्हें अपने पोते की चीख सुनाई पड़ी। दरअसल पार्क के एक कोने में खेल रहे बच्चों पर पिल्ले झपट पड़े थे और दो बच्चों को काट खाया था। उनमें एक उनका पोता था। पोते के पैर से बहता खून देखकर उनका भी खून खौल उठा। उन्होंने तुरंत अपने बेटे के एक दोस्त को फोन मिलाकर उसे फौरन कार सहित पार्क में पहुंचने का आदेश दिया। वह पहुंचा तो उसकी मदद से उन्होंने चारों पिल्लों को कार की डिक्की में डाला और एक किलोमीटर दूर एक ऐसे पार्क में छोड़ दिया जो अभी विकसित होने की प्रक्रिया में था और जहाँ लागों की आमदरफ़्त कम थी।

रात के क़रीब आठ बजे...मास्टर जी अपने पोते को गोद में लिए घर के आँगन में बैठे थे। पोते के पैर पर पट्टी बँधी थी। वे पट्टी को देखते जाते और पोते के सर पर हाथ फिराते हुए उसे जल्दी ठीक होने का आश्वासन देते जाते...कि तभी...माया अग्रवाल ने उनके घर में प्रवेश किया। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। वह उनके ठीक सामने आकर खड़ी हुई और प्रश्न किया,''पार्क से पॅपीज़ आपने उठाए है ?''

''हाँ, मैंने ही उठाए हैं, पर आप कौन हैं और यह सवाल मुझसे क्यों कर रही हैं ?

''अभी पता चल जाएगा कि मैं कौन हूँ, पहले आप यह बताइए आपने पॅपीज़ को पार्क से उठाया क्यों ?''

''क्योंकि उन्होंने मेरे पोते को काट लिया था।''

''तो क्या इस कारण से आप उनकी जान ले लेंगे ? इन्सान से ज़्यादा वफादार होते हैं कुत्ते, जानते हैं आप ?'' अब माया अग्रवाल चिल्ला रही थी। इस उत्तेजनापूर्ण संवाद को सुन मास्टर जी की पत्नी और पुत्रवधू भी आँगन में आ गई थीं। माया अग्रवाल बोले जा रही थी,''एक माँ से उसके बेटों को जुदा किया है आपने, जानते हैं, कितना पाप लगेगा ?''

''ओ बहन जी, पुन्न आप कमाओ, हमें तो पापी ही रहने दो।'' अब मोर्चा मास्टर जी की बीवी ने संभाल लिया था, ''इतना ही प्यार है इन कुत्तों से तो इनको अपणे घर में क्यों नहीं रखती, सरकार ने पार्क लोगों के लिए बनाया है या कुत्तों के लिए ?''

यह सुनते ही माया अग्रवाल के तन-बदन में आग लग गई। वह चीखी,''हाऊ डेयर यू, बदतमीज़ औरत ! मैं प्यार से बोल रही हूँ और तू सर पर ही सवार हो गई है। वाह रे वाह ! चोरी और सीनाज़ोरी ! एक तो पॅपीज़ चुरा लिए, ऊपर से उपदेश दे रही है। मैं बताती हूँ तुम लोगों को तुम्हारी औक़ात, न दिन में तारे दिखाए तो मेरा भी नाम माया अग्रवाल नहीं !'' मोबाइल पर किसी का नम्बर मिलाती वह घर से निकल गई।

अगले दिन अभी नौ भी नहीं बजे थे कि मास्टर जी के दरवाज़े पर पुलिस की जीप आ खड़ी हुई। तुरत-फुरत मास्टर जी को जीप में लादा गया और थाने में ले जाकर एक बेंच पर बिठा दिया गया। एकाध मिनट के भीतर ही उनके बेटे का वह दोस्त जिन्हें उन्होंने कल पार्क में बुलाया था, भी थाने पहुंच गया। आते ही उसने सामने कुर्सी पर विराजमान थानेदार को परिचय दिया,''मैं दिनेश कुमार, यहाँ सरकारी स्कूल में मैथ मास्टर हूँ और ये मेरे अंकल हैं, मेरे दोस्त के पिता, अभी साल भर पहले सरकारी स्कूल से रिटायर हुए हैं। बड़े शरीफ आदमी हैं, बड़ा नाम कमाया है इन्होंने डिपार्टमेंट में।''

''इतना नाम कमाया है तो कुत्ते चुराने का पंगा क्यों ले लिया मास्टर जी ? थानेदार सीधे मास्टर जी से मुख़ातिब था।

''मैंने कोई कुत्ता नहीं चुराया, मैंने तो उन्हें एक पार्क से उठाकर दूसरे पार्क में छोड़ा है बस, उन कुत्तों में से एक ने मेरे पोते को काट लिया था, इसीलिए...''

''पर थाने में की गई शिकायत तो यही कहती है कि आपने कुत्ते चुराए हैं। अख़बार की रिपोर्ट भी इस बात को कन्फ़र्म करती है, थानेदार ने एक अंग्रेज़ी अख़बार उनके सामने रख दिया,''अंग्रेज़ी तो आपको आती ही होगी, पढ़िए क्या लिखा है ?''

मास्टर जी ने पढ़ा। ख़बर का शीर्षक था-'रिटायर्ड टीचर स्टील्ज़ सिक्स पॅपीज़।' उन्होंने ख़बर पढ़ी, जिसका हिंदी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है-'एक महिला ने कहा है कि एक सेवानिवृत्त शिक्षक ने उससे बदला लेने के लिए छः पिल्लों को चुरा लिया है। आदर्श कॉलोनी में रहने वाली माया अग्रवाल नामक इस महिला ने इस सम्बंध में स्थानीय पुलिस स्टेशन में शिकायत दर्ज कराई है। महिला का कहना है कि कुछ दिन पहले उनका किसी बात को लेकर शिक्षक के परिवार से झगड़ा हुआ था, इसीलिए इस परिवार के मुखिया ने उन पिल्लों को चुरा लिया जिन पर वह माँ की तरह ममता लुटाती थी। जब वह इन कुत्तों के बारे में पूछने के लिए उनके घर गई तो इस परिवार के सदस्यों ने उसके साथ बदतमीज़ी की।'

पूरी ख़बर को दो बार पढ़ने के बाद उनके मुंह से बोल फूटा,''थानेदार साहब, इस औरत को तो मैंने कल से पहले कभी देखा ही नहीं, फिर हमारा झगड़ा कब हुआ ? और फिर इसमें तो छः पिल्लों का ज़िक्र है जबकि पिल्ले चार थे, आप मुझसे मेरे पोते की कसम ले सकते हैं...'' बोलते-बोलते उन्हें लगा कि जैसे उनकी ज़बान तुतलाने लगी है। उनसे आगे बोला नहीं गया।

''चलो थोड़ी देर में वो लेडी और 'कुत्ता प्रेमी संघ' के सैक्रेटरी डॉ.नरवाल यहाँ आने वाले हैं, आप उनको बता देना यह बात।'' थानेदार ने कहा।

मास्टर जी बेंच पर घुटने मोड़े और उनमें सर दिए बैठे थे। उनके भीतर विचारों का बवंडर था। बरसात के दिन की हवाओं की तरह बार-बार उनके सोचने की दिशा बदल जाती थी। पहले तो उन्होंने इस बात पर ईश्वर को धन्यवाद दिया कि ख़बर सिर्फ अंग्रेज़ी अख़बार में छपी थी जिसे शहर में मुश्किल से दस-बीस लोग पढ़ते होंगे। किसी हिंदी अख़बार में यह ख़बर छपी होती तो कितनी बदनामी होती (लेखक का हस्तक्षेप-सीधे-सादे मास्टर जी यह नहीं जानते थे कि अंग्रेज़ी अख़बार हिंदी अख़बारों के मुक़ाबले श्रेष्ठ होते हैं-ठीक वैसे ही जैसे काले हिंदुस्तानियों के मुक़ाबले गोरे अंग्रेज़-इसीलिए वे इन्सानों की बजाय कुत्तों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। अंग्रेज़ी अख़बार में छपने से ख़बर की गरिमा बढ़ी थी। दूसरी वजह यह थी कि अंग्रेज़ी अख़बार में छपी ख़बर को शासन-प्रशासन अधिक गंभीरता से लेता है। तीसरी सबसे बड़ी वजह यह कि अंग्रेज़ी में छपी ख़बर से 'कुत्ता प्रेमी संघ' के राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पदाधिकारियों की नज़र में माया अग्रवाल का क़द बढ़ जाने की असीम संभावनाएँ थीं)। कभी उनका दिमाग़ अपने पढ़ाए बच्चों को याद कर रहा था। उन्होंने अपने 35 साल के शैक्षणिक जीवन में बच्चों को हमेशा नेक इन्सान बनने की प्रेरणा दी थी। उन्होंने तेज़ी से अपने उन शिष्यों को याद किया जो कोई मुकाम हासिल कर चुके थे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि उनमे से कोई न राजनेता था, न पुलिस अफसर। इस वक़्त उन्हें इनकी ही ज़रूरत थी। फिर उनका ध्यान प्रदेश में रोज़ हो रहे जघन्य अपराधों की तरफ मुड़ गया। क्या किसी इन्सान का क़त्ल हो जाने या किसी बच्चे का अपहरण होने पर भी पुलिस इतनी सक्रियता दिखाती है ?

''मामला किसी बच्चे के किडनैप का होता तो बहुत बड़ी बात नहीं थी पर यह तो कुत्तों के किडनैप का मामला है'', मास्टर जी बुरी तरह चौंके, क्या यह थानेदार मन की बात पढ़ लेता है यार बेध्यानी में मन में सोची बात ज़बान पर आ गई, थानेदार दिनेश से कह रहा था,''मैं समझ सकता हूँ कि इन्होंने ऐसा कोई कसूर नहीं किया पर हम क्या कर सकते हैं ? इस केस को निपटाने के लिए पुलिस पर ऊपर से बड़ा भारी दबाव है। इस केस की रिपोर्ट 'पशु प्रेमी संघ' की राष्ट्रीय अध्यक्ष अम्माजी, प्रांतीय अध्यक्ष जय सिंह चौहान तथा मुख्यमंत्री तक की जा चुकी है। एस.पी साहब के पास ऊपर से कितनी बार फोन आ चुके हैं।

डॉ. नरवाल की पहचान तो ऊपर तक है ही, फिर मुख्यमंत्री माने हुए पशु प्रेमी हैं। आपने कल का अख़बार नहीं पढ़ा

? अन्तर्राष्ट्रीय पशु प्रेमी संघ ने मुख्यमंत्री को पशु प्रेम के लिए अवॉर्ड दिया है।''

दिनेश ने वाक़ई यह ख़बर पढ़ी थी। अब मास्टर जी और दिनेश को मामले की गंभीरता समझ में आ रही थी। मास्टर जी के चेहरे का रंग उड़ गया था, फिर भी उन्होंने सोचा–काश जितनी दया मुख्यमंत्री के दिल में पशुओं के लिए है, उसका दस प्रतिशत इन्सानों के लिए भी होती। वे कुछ कहने को हुए पर एकदम सचेत हो गए कि कहीं थानेदार उनके मन की इस बात को भी न पढ़ ले कि तभी उनके भाग्य विधाताओं यानी माया अग्रवाल और डा. नरवाल ने थानेदार के कक्ष में प्रवेश किया। थानेदार ने उन्हें सामने की कुर्सियों पर बैठने का इशारा किया, डाक्टर से हाथ मिलाकर दोनों का हालचाल पूछा और फिर मास्टर जी की तरफ इशारा कर कहा,'' ये हैं आपके मुजरिम डॉक्टर साहब !'' तब तक एक सिपाही दौड़कर उनके लिए पानी ले आया था। पानी पीते–पीते डॉ. नरवाल ने भरपूर नज़र से उन्हें देखा, फिर कहा,''शक्ल से तो बहुत मासूम लगते हैं।''

''ये वास्तव में एक बहुत शरीफ आदमी हैं, आज से पहले कभी थाना–कचहरी का मुंह तक नहीं देखा।'' अचानक दिनेश बोल उठा।

''आपकी तारीफ ?'' डॉक्टर ने पूछा

''ये यहाँ के सरकारी स्कूल में मैथ मास्टर हैं, इनके बेटे के दोस्त हैं।'' थानेदार ने उसका परिचय दिया।

''देखिये मिस्टर दिनेश, अगर आप सचमुच में इनका भला चाहते हैं तो चुप रहिये।'' डॉक्टर के इतना कहते ही दिनेश की तो जैसे साँस सूख गई। वह अपने होंठ काटता चुपचाप बैठा रहा। अब डॉक्टर माया अग्रवाल की तरफ मुख़ातिब हुआ,''हाँ तो मैडम, आपका मुजरिम आपके सामने बैठा है, बोलिए, मार दिया जाए या छोड़ दिया जाए।'' आख़िरी पंक्ति उन्होंने मुस्कुराते और किंचित गुनगुनाते हुए कही। मैडम डॉक्टर साहब के अंदाज़ पर खुलकर मुस्कुराई और फिर अचानक गंभीर हो गई,''गुनाह तो इनका इतना बड़ा है कि माफ करने को जी नहीं चाहता पर मेरा दिल इन जैसा कठोर नहीं है। गोसाईं जी ने कहा है–दया धर्म का मूल है– (मास्टर जी गुस्से से लाल हो गए थे–वे इस दया–धर्म वाली बाई से दो प्रश्न पूछना चाहते थे–एक, जब पिल्ले चार थे तो तुमने छः क्यों लिखवाए, दो, कल से पहले हमारी मुलाक़ात कब हुई थी और कब लड़ाई हुई थी। वे चीखना चाहते थे–ए दया की ठेकेदारनी, तू अपनी दया अपने पास रख, पर डॉक्टर की पहुंच के ख़ौफ ने उनके होंठ सिल दिए), माया अग्रवाल कह रही थी,'' अगर ये लिख कर माफी माँगें और पिल्ले जहाँ से चुराए थे, वहीं वापस लाकर रख दें तो माफी पर सोचा जा सकता है।''

''तो मास्टर जी, इधर कुर्सी पर आ जाइए और माफीनामा लिखिए।'' थानेदार ने कहा। मास्टर जी बेंच पर ही ऐसे बैठे रहे कि जैसे कुछ सुना ही न हो। दिनेश

उठा और उनकी बाज़ू पकड़कर कुर्सी तक ले आया। थानेदार ने उनके सामने काग़ज़ और पेन रख दिया। उन्होंने पेन का ढक्कन खोला, काग़ज़ को अपने निकट सरकाया और थानेदार का मुंह देखने लगे। डॉक्टर ने बोलना शुरू किया,''लिखिए, मैं बृजलाल, रिटायर्ड मास्टर, निवासी आदर्श कॉलोनी स्वीकार करता हूँ कि मैंने कॉलोनी के पार्क से पिल्ले चुराए... ''

''पर मैंने पिल्ले चुराए नहीं हैं डाक्टर साहब...''

''जैसा मैं कहता हूं, वैसा लिखो, वरना अंजाम भुगतने के लिए तैयार रहो'', डॉक्टर की आवाज़ मास्टर जी को साँप की फुफ़कार जैसी सुनाई दी, ''लिखो, मुझसे भयानक ग़लती हुई है। मैं इस ग़लती के लिए 'कुत्ता प्रेमी संघ' से सच्चे दिल से क्षमा–याचना करता हूँ और आइंदा ऐसी ग़लती न करने की शपथ लेता हूँ। साथ ही यह वचन देता हूँ कि आज की तारीख़ में मैं पिल्लों को वापस वहीं छोड़ दूंगा, जहां से चुराए थे। नीचे अपने दस्तख़त कर दो।''

मास्टर जी का लिखा माफीनामा अपने हाथ में लेकर जब डॉक्टर ने पढ़ना शुरू किया तो उसके माथे पर बल पड़ गए। उसने वह माफीनामा उनकी तरफ बढ़ाते हुए कहा,''ऐसी ही हैंडराइटिंग है आपकी? क्या लिखा है, कुछ समझ में आता है ?'' मास्टर जी ने माफीनामा अपने हाथों में थामकर देखा। उसे पढ़ने में सचमुच मेहनत करनी पड़ रही थी। उनके हाथ काँप रहे थे, इसे लिखते हुए भी उनके हाथ लगातार काँपते रहे थे, तभी तो जिस लिखाई पर उन्हें गर्व था, आज वही लिखाई कीड़े–मकौड़ों जैसी नज़र आ रही थी। डॉक्टर ने उनके हाथों से काग़ज़ खींचते हुए थानेदार से कहा,''एक और काग़ज़ दीजिए, मैं ही लिख दूं, इनके साइन करवा लेंगे।''

डॉक्टर ने उस माफीनामे का अनुवाद अंग्रेज़ी में करके उसे दस्तख़त के लिए मास्टर जी के आगे बढ़ा दिया। उन्होंने दस्तख़त कर दिए पर एक बार फिर वे यह नहीं समझ पाए कि माफीनामा अंग्रेज़ी में क्यों लिखा गया है। उठने से पहले डॉक्टर ने फिर याद दिलाया कि आज पिल्ले वहीं पहुंच जाने चाहिएं, जहाँ से उठाए गए थे। चलते–चलते थानेदार ने पूछने के अंदाज़ में डॉक्टर से कह ही दिया,'' डॉक्टर साहब, पिल्ले तो चार ही थे न ! छः शायद ग़लती से लिखवाए गए।''

'पिल्ले चार हों या छह, क्या फ़र्क़ पड़ता है ? बात तो चोरी की है।' कहते हुए वे माया अग्रवाल के साथ थाने से बाहर हो गए। मास्टर जी अब भी कुर्सी पर पत्थर की तरह बैठे थे...सच कहती थी यह औरत...दिखा ही दिए दिन में तारे...। दिनेश ने उनसे कहा,''आइए अंकल, हम भी चलें।'' वे जैसे कुछ सुन ही नहीं रहे थे।

उनकी आँखें शून्य में ताके जा रही थीं, चेहरा जैसे सूज गया था...इतना अपमान उन्हें पहले कब सहना पड़ा था...वे मन ही मन धरती माँ से उन्हें अपनी गोद में जगह दे देने के लिए गुहार लगा रहे थे...पर वे सीता नहीं थे कि धरती उन पर दयालु हो जाती। थानेदार ने उनकी यह हालत देखी तो उसे सहज ही उन पर दया आ गई। उसने उनके पास जाकर उनके कंधे पर अपना हाथ रखते हुए कहा,''आपके साथ ज़्यादती हो रही है, मैं जानता हूँ पर पुलिस की नौकरी बड़ी बेलिहाज़ नौकरी है। आप समझदार आदमी हैं, मेरी मजबूरी समझ सकते हैं। उठिए और कृपा करके पिल्ले तलाश कर लीजिए। भगवान से दुआ करें कि वे मिल जाएँ ताकि आपको मुसीबत से छुटकारा मिल जाए। धीरज रखिए, चिंता करने से कुछ नहीं होगा। मुझसे जितनी मदद संभव होगी, मैं करूँगा पर अब सारे केस का दारोमदार पिल्लों के मिलने पर है। पिल्ले मिलें और माया अग्रवाल यह लिख कर दे कि वह संतुष्ट है तो जान छूटे। अगर ज़रूरत हुई तो कल मैं आपको कॉल करूंगा। अब उठिए।'' वे उठ खड़े हुए। थानेदार की बातों से उन्हें तसल्ली मिली थी। कम से कम जिस पुलिस अधिकारी के पास केस है, वह तो उन्हें निर्दोष मानता है। उनका हाथ अपने आप थानेदार के सर पर चला गया, उनके मुंह से निकला,''जीते रहो !'' और वे थाने से बाहर आ गए।

...अगली दोपहर...एक बार फिर वे थाने में थे...उसी बेंच पर। माया अग्रवाल और डा. नरवाल भी कल वाली कुर्सियों पर बैठे थे। डा. नरवाल ने बात शुरू की,''अब क्या किया जाए मास्टर जी ? तीन पिल्ले तो आपने पार्क में वापस छोड़ दिए, चौथे का क्या हुआ ?''

''मैं कल सारा दिन उसी पिल्ले को ढूँढ़ता रहा पर वो कहीं मिला ही नहीं। आज सुबह भी मैं इसी काम में लगा रहा। पता नहीं वो कहां चला गया।''

''आपकी इस बात से मैडम का दुख तो दूर नहीं हो सकता।''

''ये क्या जाने मां का दर्द। मुझे ही पता है, दो दिन मैंने कैसे काटे हैं, अन्न का एक दाना भी नहीं खाया गया। हाय मेरा पॅपी !'' माया अग्रवाल की आँखों में आँसू छलछला आए थे, उसने अपनी आँखों पर नज़ाकत से रूमाल रखा जैसे किसी नवजात शिशु को स्पर्श कर रही हो।

कितनी फरेबी है यह औरत, कितनी मक्कार–मास्टर जी के भीतर गुस्सा उबल उठा। उनका जी हुआ, उसे कुर्सी समेत उठाकर बाहर फेंक दें या दनादन उस पर डंडों की बरसात कर दें पर गुस्से और भय के द्वन्द्व में जैसे उनकी चेतना ही खोती जा रही थी। बड़ी मुश्किल से वह बोल पाए,'मैं उसे ढूंढने की पूरी कोशिश करूंगा।'

'कोशिश... ! क्या कोशिश करेगा ये आदमी ! इस आदमी ने मेरे पॅपी को मार डाला है और

अब ड्रामा कर रहा है। इस पर पॅपी के मर्डर का केस लगाइये इंस्पेक्टर साहब ! जेल की सलाखों के पीछे जब ये तड़पेगा, तभी मेरे दिल को चैन पड़ेगा।'' बोलते–बोलते माया अग्रवाल के मुंह से फेन निकलने लगा था। उसकी तर्जनी मास्टर जी की तरफ तलवार की तरह तनी थी...हाँ, वह तलवार ही थी जिसने मास्टर जी को ऊपर से नीचे तक चीर डाला था...उनकी आत्मा को लहूलुहान कर दिया था। बेंच पर बैठे मास्टर जी की गर्दन की नाड़ियाँ उभर आई थीं और तेज़ी से फुरफुरा रही थीं...उनकी साँसें तूफान की चपेट में आए समुद्र की लहरों की तरह पछाड़ खा रही थीं...उनके कण्ठ में अजीब सी गुरगुराने की ध्वनि जैसे फंस गई थी...वे बेंच से खड़े हुए, उनकी बाँहें सामने तनी थीं, गर्दन गोलाकार चक्कर खा रही थी...भौं...भौं...कुत्ते की भाँति भौंकते हुए वे तेज़ी से दौड़े और माया अग्रवाल की तनी हुई उंगली को दाँतों से चबा डाला। माया अग्रवाल बेतहाशा चीखने लगी। एकबारगी थानेदार और डॉ. नरवाल सन्न से खड़े रह गए, फिर डॉ. नरवाल ने मास्टर जी की छाती पर दोहत्थड़ से प्रहार करते हुए ज़ोर से धक्का दिया। मास्टर जी बेंच से टकराते हुए फर्श पर जा गिरे, उनका सर दीवार से टकराया और अब वे ज़मीन पर चित्त पड़े थे। उनको इस हालत में देखकर वहाँ मौजूद तीनों लोग बुरी तरह घबरा गए। माया अग्रवाल अपनी उंगली से बहते लहू का दर्द भूल गई थी। पसीने से तरबतर डॉ. नरवाल मास्टर जी को देखने के लिए आगे बढ़े कि तभी...मास्टर जी उठे, तेज़ी से अपने हाथों की उंगलियों को पैरों के पंजों की तरह ज़मीन पर टिकाया, चौपाये की तरह चलते हुए थोड़ा सा आगे बढ़े, मुंह को ऊपर उठाया और लगातार भौंकने लगे– भौं...भौं...भौं...

सम्पर्क - 9354545440

कविताएं

मुकेश अग्रवाल
सिर्फ एक इंसान हूं मैं

किसी दल से सरोकार नहीं,
राजनीति मेरा आधार नहीं।
सिर्फ एक मानव हूं मैं,
कोई धर्म मुझे स्वीकार नहीं।।

इतिहास गढ़ने की इच्छा नहीं,
प्रवर्तक बनने का शौक नहीं।
आम रहना चाहता हूं,
खास बनना स्वीकार नहीं।।

प्रकृति से विमुखता नहीं,
आत्म से व्याकुलता नहीं।
सच में जीना चाहता हूं,
झूठ मुझे स्वीकार नहीं।।

स्वर्ग से मुझको मोह नहीं,
नरक से भी चिढ़ नहीं।
कर्मोनुसार फल मिले,
पक्षपात मुझे स्वीकार नहीं।।

आलोचना करने से भय नहीं,
प्रशंसा से परहेज नहीं।
योग्य व्यक्ति की कद्र हो,
अयोग्य मुझे स्वीकार नहीं।।

मो : 9812057417

राकेश कैत 'राज'
सत्ता

सत्ता प्यारी हो गई है
ये बुरी बीमारी हो गई है

गिरगिटों की चौपाल
रंगों को प्यारी हो गई है

नीति एक काम है,
जनता बेचारी सो गई है

जोड़ता रिश्ता पांच साल का,
मिथ्या रिश्तेदारी हो गई है।

झण्डा उठाते भीड़ में सब,
गरीबी कुंवारी हो गई है।

झूठा कहूं या सच कहूं,
नेताओं की मक्कारी हो गई है।

मो : 98969-89899

बिरादरी को गोली मारो

❑रोहताश

सेठ त्रिलोकचंद बंसल टूथपेस्ट के झाग कम, थूक ज्यादा उगल रहा है।

अंधेरा आकाश से समाप्त हो चुका है। सूर्य लाल हो रहा है, शहर के गगन से टकराती इमारतों से होड़ ले चुका है।

टॉयलेट से बाहर निकलती बंसल की बेटी के पांवों में एकाएक 'दैनिक जागरण' समाचार आकर गिरा।

आधी उत्सुकता से पूर्ण जवान हो चुकी बेटी ने अखबार उठाया। स्वभावगत निगाह मुख्य पृष्ठ पर टिकनी ही थी।

अचानक समाचार एवं चित्र देख, उत्सुकता ने पंख ओर फैला दिया।

कदम रोक समाचार पढ़ना प्रारंभ किया, पूरा पढ़ने से पहले बाप की तरफ संबोधन बढ़ा दिया, जिसमें चहक, उत्साह, आग्रह समिश्रित प्रसन्नता के साथ एक रूपाकार हो गए।

'पापा! मेरा क्लासमेट एचसीएस सिलेक्ट हो गया। रैंक भी सैकिंड पाया है।'

बाप का ध्यान अपनी क्रिया में ज्यादा था, पर कानों में पड़ी ध्वनि ने उन्हें सब कुछ समझा दिया। मुख से कुरला बाहर फैंकते ही उसी रूप में जवाब भी फैंक दिया।

'तुम्हारे मेरे में से तो कोंइसा नहीं हुआ?' बेटी ने बाप के जवाब का अर्थ ग्रहण कर लिया था। अब चाल का अन्य रंग था। अखबार ड्राईंग रूम की मेज पर फैंक अंदर वापिस चली गई दोबारा सोने। एकमात्र भाई अभी मीठी निद्रा में सोया पड़ा है।

त्रिलोक चंद्र की पत्नी रसोई में ढेरों बर्तनों को दोबारा झूठे करने के लिए तैयार कर रही है।

बंसल साहब ड्राईंग रूम में आकर बैठ गए तथा अखबार पलटने लगे।

पत्नी का नाम माया देवी भारतीय तरीके से रखा गया था। बेशक भारतीय तरीके में भारतीय पुरुष जो पुराने हैं, या पुराने पड़ चुके हैं, पत्नी का नाम लेकर नहीं बोलते। परन्तु त्रिलोक के साथ यह समस्या न थी।

पत्नी को जैसे ही भान पड़ा, पूछ बैठी, 'चाय अभी बनाऊं या बर्तन धो लूं।'

सेठ ने अर्द्ध उत्तेजना में अपना अधिकार जताया। 'बिना कहे तो दिमाग में अपने-आप कोई बात आती ही नहीं। चाय तो अब तक बन जानी चाहिए थी।'

पत्नी माया देवी ने फौरन हुक्म की तामील शुरू कर दी। सेवा भावना कूट-कूट, पैदा होते ही अनेक तरीकों से मां, दादी ने माया देवी में ठूंस रखी थी।

पति के बाद कहने मात्र का अधिकार तो माया देवी के पास भी है। ऊंची आवाज में बेटी को पुकारा,

'मम्मू चाय बना दूं क्या?'

बेटी को ध्वनि सुन चुकी थी, 'अभी नहीं! सो रही हूं।' ममता नाम था एकमात्र बेटी का, एक ही बेटा है, मनोज जो बेटी से छोटा है, गहरी निद्रा में सोया पड़ा है। छुट्टी हो तो सोने में कोई कंजूसी नहीं, दिन के 11 भी बज जाते हैं। छुट्टी न हो तो, कालेज से एक घंटा पहले उठना, एक घंटे में ही फ्रेश, ब्रुश, स्नान, नाश्ता सब करना, आधी अधूरी तैयारी के साथ कालेज दौड़ना, यही दिनचर्या बेटी की है तथा यही दिनचर्या बेटे की भी।

बाप इसके लिए मां को ही दोषी ठहराता है।

'तुम्हारे कारण बच्चों की आदत खराब हुई है। अगर बचपन से ही समय पर उठाने की आदत डालती तो आज इनके साथ झीक-झीक न करनी पड़ती।'

पत्नी का जवाब भी कम तर्कपूर्ण न होता, 'सिर पर चढ़ाने वाला कौन है? ना तो कभी आपने धमकाया, न कभी मुझे धमकाने दिया। बिना काम-कितनी ही बक-बक! पहले तो सिर पे चढ़ा लिए..'

चाय निकल गई थी। अगली बातें छलनी में छलने लगी।

त्रिलोक चंद्र बंसल का यही कुल परिवार है, जिसमें 44 वर्षीय पत्नी माया देवी, 24 वर्षीय पुत्री ममता बंसल, एमए पास, 22 वर्षीय पुत्र मनोज बंसल एमकाम का छात्र। स्वयं 70 दिनों के बाद पूरे 50 का हो जाएगा त्रिलोक चंद्र बंसल।

सेठ बंसल सेल्फ स्टाइल, सेल्फ मेड इन्सान है। बाप के अनुसार चलने में अपने-आपको हमेशा ही असमर्थ पाया, जिसका खामियाजा शुरू में खूब भुगतना पड़ा। बाप ने छोटा सा साधन देकर साथ ही अलग कर दिया। पर पत्नी ने खूब साथ निभाया, साथ ही हौसला भी बनाए रखा। ससुर-सालों ने कुछ मदद की। आज अपने चाचा, ताऊ, भाइयों में सबसे अमीर है। तीन शोरूम, मुख्य बाजार में खूब चलती वस्त्रों की दुकान, अच्छा राजनीतिक रसूख, फलदायी बिचौलियागिरी है। अनेकों जगहों से पैसा बनाना आता है। बच्चे न भी कमाएं तो सात पुश्तें बैठी खाती रहें। परन्तु आधुनिक विचारों के स्वामी त्रिलोक बंसल को इस पीढ़ी की भी चिंता नहीं। इसलिए एक वाक्य सिद्धांत रूप में हमेशा प्रकट करते रहते हैं। 'जो करेगा सो अपने लिए, नहीं करेगा सो अपने लिए।'

बाप की तरह अपने बच्चों पर वैसा आधिपात्य नहीं रखता। अधिक आजादी ने बच्चों को आलसी भी बना दिया है। नौकर-चाकर भी रखे हुए हैं। बच्चों को पढ़ाई के लिए पाबंद कर रखा है।

त्रिलोक बंसल ने उसी खबर को एक बार फिर ध्यान से पढ़ा। जिसकी ओर बेटी ने ध्यानाकर्षण किया था।

लड़के का गांव ढाणी चौकस, जाति चमार, एमए अर्थशास्त्र में यूनिवर्सिटी पोजीशन।

व्यापारी का दिमाग था बंसल साहब का सौ दिशा में घूमा।

बेटी का कहीं इस लड़के के प्रति कोई आकर्षण तो नहीं। सीधा नहीं तो छुपा हुआ अवश्य है। लड़के की युनिवर्सिटी में पोजीशन है इसलिए टैलेंट में तो कोई चूक नहीं। अवश्य ही अपने दम पे सिलेक्ट हुआ होगा। मेहनती मन, कभी खराब मन नहीं होता। आचरण का खरा होगा। खैर छोड़ो।

माया देवी अपना काम निपटाती

रही। इसके अलावा शायद इस अग्रवाल पुत्री को कुछ सिखाया भी तो नहीं गया था। बेटी को भी आप जैसा बनाना चाहती है, पर बाप वैसा नहीं है। अगर बाप भी वैसा ही बनाता तो बाजार वैसा नहीं बनने देता। दोस्त अवश्य हैं पर शादी बाप की इच्छा के लड़के से करेगी। शायद कोई शिक्षा मां की भी असर में रखे हुए है। ढाणी चौकस का रोशन लाल निम्बड़िया भी उसी दोस्ती के बेड़े में शामिल है। तब ही तो उसके एचसीएस के चुनाव पर उसे भरपूर प्रसन्नता हई। गुपचुप मुबारकवाद भी दे चुकी है।

त्रिलोक बंसल नहाकर तैयार हो चुके हैं। बेटा, बेटी अभी सोये पड़े हैं। रविदास जयंती की छुट्टी है, पर सेठ जी को तो वस्त्र बेचने हैं।

नाश्ता मेज पर लग चुका है। अखबार का मुख्य पृष्ठ ही ऊपर है। नीचे मुंह कर सेठ जी ने जैसे ही कोर तोड़ा, निगाह एक बार फिर उसी चित्र पर गई जो पिछले ही वर्ष तक एकमात्र सुंदर कम स्वस्थ ज्यादा बेटी का क्लासमेट रह चुका है। दिमाग फिर दलालगिरी करने लगा।

'काश! यह बनिया पुत्र होता।'

दिमाग घूमा। 'बनिया पुत्र होता तो शायद मेरी बेटी के नसीब में कहां? करोड़ों रुपए का दहेज देना पड़ता।'

त्रिलोक चंद्र बंसल पूरी कोशिश करके ध्यान इधर से हटा लेना चाहता है, जैसे ध्यान हटाता, हल्का सा चिंता का आवरण चेहरे पर आ धमकता है। आज अजीब हरकतें नाश्ते के दौरान घट रही हैं। पत्नी ने ताड़ पूछा, वह ताजा परांठा देने आई। आज कुछ ज्यादा ही सोच में पड़े हो। पड़ने के दिनों में पड़े नहीं। आज किस चीज की कमी है, दूसरे हमसे ही आस रखते हैं।

परन्तु सेठ जी ने सेठानी को कोई भी जवाब नहीं दिया। घर में सफाई वाली है, वस्त्र धोने वाली है, कई-कई दिन बर्तन मांझने वाली भी लगी रहती है। परन्तु सेठानी का फिर भी मन नहीं टिकता। कमर दर्द, थकावट, चक्कर, जोड़ों का दर्द, दवाइयों की अनेकों संख्या का उपयोग। सफाई से कोई समझौता नहीं, इसलिए बर्तन धोने वाली को तो हटाना ही पड़ता है।

इधर संयोग भी देखिए। आज ही एक बहुत ही वफादार तथा पुराना ग्राहक, ढाणी चौकस का अपनी बेटी के साथ दुकान खुलते ही आ गया वस्त्र खरीदने।

दुआ सलाम के बाद काम-धाम की बात शुरू हुई। वस्त्र देखते बीच पारिवारिक चर्चा का चलाना, ग्राहक को रिझाना अजमाया हुआ नुडखा है।

बेटी ने पसंद किया सो लिया। ग्राहक के पास जो नकदी थी, सो दी। शेष खाते में लिखा। चलने ही वाला था कि चार ग्राहक आ गए।

सेठ त्रिलोक चंद्र बंसल अपने इस पुराने ग्राहक से कुछ पूछना चाहता था। उसी गांव का है तथा उसी जाति का। सेठ को जानने की इच्छा आज टिकने नहीं दे रही।

'एचसीएस दामाद' बहुत बार सेठ जी का साबका एसडीएम से जीवन में पड़ा। कितनी पावर है बंसल जी सोच कर रोमांचित हो उठते हैं।

परन्तु एक दलित व बनिये का सबंध। कैसे सड़क से गुजर पाएगा। पर बनियों ने मुझे दिया भी क्या है? उल्टा बिगाड़ा ही। संवारने वाले तो गैर बनिए हैं, खास कर दलित।

दलित अफसर से यारी गांठ कर तो सेठ जी ने यह धन महल खड़ा किया है। सो दलित कम पराए लगते हैं।

ग्राहक चला गया और सेठ ने जाने दिया। चारों ग्राहकों को यह दुकान महंगी लगी। सो दस मिनट में ही उठकर चल दिए। उनकी हाजिरी में तो त्रिलोक चंद्र बंसल ने फोन मिलाया। पक्के ग्राहक के पास जो अभी खरीददारी करके गया है। शायद आसपास ही होगा सोचा।

'हैलो! रणबीर कहां जा लिये?'

रणबीर नाम था ढाणी चौकस के इस स्थाई ग्राहक का, जाति चमार व व्यवसाय रेलवे में ट्रेक मैन की पक्की नौकरी। सेठ ने वापिस बुला लिया था।

रणबीर को कुछ संशय अवश्य हुआ पर निश्चिंत हो लौट चला। बेटी को अवश्य खला। उसे सूट सिलने की जल्दी सता रही थी।

सेठ जी ने अलग होकर रणबीर से पूछा तुम्हारे गांव से कोई हरिजनों का लड़का बड़ी नौकरी लगा है क्या?

त्रिलोक चंद्र को रणबीर सिंह की समझ पर संशय था।

रणबीर ने उछलते ही जवाब दिया।

'हमारे ही परिवार में है नजदीकी भतीजा लगता है। एचसीएस अपने दम पर कामयाब हुआ है। आईएएस के पेपर भी पास कर रखे हैं।'

सेठ त्रिलोक चंद्र बंसल का कलेजा रोमांच से फड़फड़ा उठा। साथ ही रणबीर के ज्ञान पर आश्चर्य। परन्तु सवर्ण हैसियत ने जबान थोड़ी देर चुप रखी। सेठ को चुप व सोच में डूबे देख रणबीर सिंह ने इंतजार कर पूछा।

'क्या बात है? आपको कैसे पता चला?'

सेठ ने इस बात का जवाब नहीं दिया। पर व्यापारिक प्रक्रिया प्रारंभ की।

'रणबीर तू मेरा खास आदमी है। सोच के देख ले, कभी किसी मदद के लिए मना किया? एक बात कहना चाहता हूं। जो तेरे और मेरे बीच रहेगी। तुम्हें मेरी दोस्ती की कसम।'

आज सेठ, ग्राहक का दोस्त बन गया। लेने-देने के बदले में जो लिया, उसे कुशल बुद्धि ने कमतर बना दिया।

पर सेठ बोला बिल्कुल एकाएक,

'रणबीर इस लड़के से क्या तुम मेरी मुलाकात करवा सकते हो?'

रणबीर ने उत्साह में भर कर हां कर दी।

भोला जीव था। सोच विचार तो बहुत किया, परन्तु सेठ की मंशा रणबीर सिंह रेलवे का खलासी अभी तक भांप नहीं सका।

रणबीर अनपढ़ था तो क्या? रेलवे की चतुर्थ श्रेणी की पक्की नौकरी थी, सो घर में रोटी थी। बेटे पढ़ चुके थे, सो व्यापार की भाषा पिछड़ेपन के साथ ही सही बेशक समझने लग गया था। सोचा कोई न कोई गरज जरूर होगी।

सक्रिय व्यक्ति था, ऊपर से ईमानदार, बात का धनी, ऊपर से सेठ ने यार जो कह दिया।

रोशन लाल निम्बड़िया आज से पहले तो दूर का भतीजा था, परन्तु आज रणबीर सिंह के नजदीक का भतीजा बन गया। घर पहुंचते ही लगा डोरे डालने। वैसे भी मिलनसार व्यक्ति था।

इधर रोशन लाल मेहनती व शरीफ समझा जाने वाला नौजवान था। कालेज में आया ही था, प्रशासनिक सेवा का लक्ष्य लेकर। वरना मैट्रिक में जिसकी नाममात्र नकल से मैरिट हो, उसके लिए इंजीनियरिंग, डाक्टरी कौन सी मुश्किल थी। ऊपर से जिसे रिजर्वेशन का सहारा प्राप्त हो। अभी

तक ज्वाइनिंग दूर थी, ट्रेनिंग बाकी, सो घमंड का चक्रव्यूह नजदीक नहीं फटका था।

अत: पहले दूर, अब नजदीक के चाचा की बात रख ली। दो दिन बाद मिलने का समय दे दिया। उधर रणबीर ने खुशी से उछलते सेठ को संदेश दे दिया।

सोच-विचार कर धैर्य के साथ यदि किसी बात पर विश्वास किया जाए और उसपे ठहरा जाए तो प्राय: निर्णय फलदायी ही होता है।

दुकान बढ़ा, शोरूमों की संभाल ले, सेठ त्रिलोक चंद्र बंसल रात्रि 9 बजे घर पहुंचे।

पत्नी ने गेट खोला, गाड़ी खड़ी कर सीधे ड्राईंग रूम में गए। और दिनों सीधे बैडरूम में जाते थे।

पत्नी पीछे-पीछे टेढी-मेढी चलती आई। थकावट भरी आवाज में पूछा।

'चाय लाऊं! या खाना लगा दूं।'

त्रिलोक बंसल में इस समय थकान का असर अवश्य था पर चिंता दबी हुई थी। आत्मविश्वास से बोले सेठानी पहले मेरी बात सुन। सोचते से बोले :

'मम्मू तथा मन्नू कहां हैं?'

'सो गए दोनों!' सुबह 11 बजे उठे थे। नहा खना खा मम्मू तो टीवी के आगे धरी गई। शाम को उठी। पढ़ाई से फ्री हो गई है। तुम्हारे कपड़े प्रेस करने के लिए कहा था। एक बार प्रेस की तरफ चली गई, उसके बाद कल का नाम लेकर फोन पर माथा मारने लगी। वो शेर नहा, खा मोटर साइकिल लेकर निकला था। अंधेरा होय घर में घुसा। थोड़ी देर वो कंप्यूटर के आगे बैठा रहा। फिर दोनों खाना खा, झगड़ कर अपनी-अपनी जगह जा पड़े।

सेठानी ने विस्तार से कथा कह दी। त्रिलोक बंसल जैसे सपने से जगा, एक दम चौंक सा बोला, 'सेठानी! एक जुआ खेलू सूं। तनैअ मेरा साथ देना होगा।'

सेठानी माया देवी के पांव नीचे की धरती घूमने लगी। आचरण में बदलाव वह बंसल साहब में सुबह ही देख रही थी। विस्मित होकर पूरा मुख खोल कर बोली।

'कै जुआ खेलो हो?' साफ-साफ कुछ क्यूं नहीं कहते? तड़के से ही रूह बदली हुई तुम्हारी।'

'पहले देख औलाद जागै अक सूती है।'

सेठानी ने तसल्ली दिलाई तो सेठ ने धीरे-धीरे धीमी मद्धम आवाज में किसी चतुर राजनेता की भांति अपनी योजना सेठानी के दामन में खोलनी शुरू कर दी।

'मम्मू का एक क्लासमेट एचसीएस सिलैक्ट हुआ, जो एसडीएम से डीसी तक पहुंचता है।'

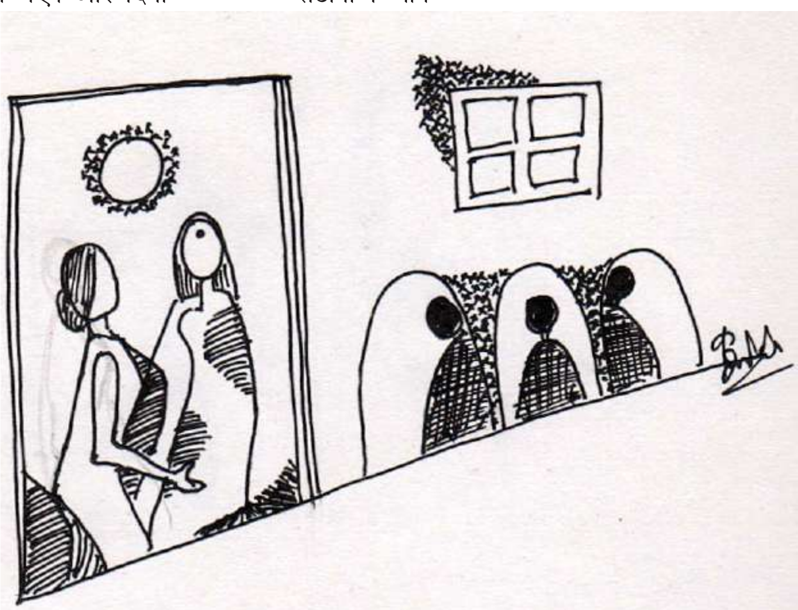

सेठानी ने ध्यान गहरा गाढ़ दिया। खुशी, चौकन्नी आंखों में आ उतरी।

'फेर'

'फेर कै, कोशिश करता हूं लड़का मिल जाए।'

सेठानी बीच में बोली 'दिक्कत क्या है?'

'दिक्कत-दाकत सारी है, लड़का हमारी जाति का नहीं है।' जाति नीची होने पर शायद यह बाजी मेरे हाथ लग जाए। बनिया किसी भी सूरत में हमारा दामाद नहीं बनेगा। या तो बराबर की अफसर ढूंढेगा या उद्योगपति मालदार आदमी या फिर बड़ा नेता। हम ठहरे साधारण व्यापारी। लड़के की जाति चमार है। सेठानी का सारा उत्साह राख की भट्ठी में जा गिरा। प्रसन्नता को आंखों से बाहर खदेड़ बोली। 'उम्र बढ़ने के साथ अक्ल बढ़ती है। पर तुम्हारी तो घट रही है। बिरादरी जीने देगी। '

सेठ आवेश में बोला,

'अरे! बिरादरी को मार गोली, सोच। सेठानी सोच। बाजार में टिकना है तो धर्म की दीवारें फोड़नी होंगी। सेठानी सोच। बाजार में टिकना है तो जातपात तोड़नी होगी। जात-धर्म को तोड़े-फोड़े बिना मायादेवी व्यवसाय के मैदान से आप माया नहीं बटोर सकते। सेठानी तू मेरा साथ दे, बाकी सब ठीक करने का गुर मेरे पास है। आज हर चीज पर व्यापार का कब्जा है।'

'पत्नी मुरझा गई। पिछड़ेपन ने अपनी चादर और मोटी कर दी हतप्रभ होकर बोली।'

'क्या साथ दूं? साथ देने वाली बात तो हो। हमेशा साथ दिया ही नहीं, पर...'

सेठ जी ने सेठानी की असली नब्ज पकड़ ली। अब ज्यों ज्यों सेठ बहस कर रहा है, त्यों-त्यों सेठानी की मति चित हुए जा रही है?

'सेठानी!' बाप ने मुझे एक कोठरी देकर अलग कर दिया। चार गठरी कपड़ों की जगह नहीं थी। घर के नाम पर एक चौबारा। आज जिस आलीशान कोठी में बैठी हो, पता है तुम्हें, किसी की मदद से मिला। एक दलित अफसर से मित्रता गांठी तो उसने तरकीब और तरीका दोनों बताया। यह प्लाट दो साल पहले तक एक वाल्मीकि के नाम पर था। बड़ी जाति का होता तो शायद ब्लैकमेल जरूर करता। पर बिचारे ने चुपचाप हमारे नाम करवा दिया। आज मुख्य बाजार में मौके की दुकान है, उसके लिए जो लोन लिया, उस बैंक का मैनेजर भी चमार था। कोई बनिया होता तो शायद मोटा कमीशन खाता। मेरे बाप ने जो छोटी सी दुकान दी थी, उसने हमारे ऊपर कर्जा ही रखा, अंतत: आधे दाम पर बेच कर कर्जा पाड़ा। उन दिनों जब हम आत्महत्या करते फिर रहे थे तो किस ने साथ निभाया। मेरे कालेज का हरिजन मित्र उसी ने बैंक मैनेजर से मिलाया था। चाचे, ताऊ, भाई सभी ने आंख फेर

ली थी। तेरे बाप को भी बोझ लग रहे थे। सेठानी बीच में टोक बैठी, 'वा बात तो ठीक है, पर लड़का जमा ए चमार है।'

सेठ जी अब काबू पा चुके थे। बहस को आगे बढ़ाया।

'तु कै सोचै है, यो लड़का आसानी से मिल जाएगा। यो तो एक जुआ है। एक तो यो हमसे नीची जात का है, शायद बनिए का दामाद बनने का लालच उसे मोह ले। दूसरा मम्मू इसकी क्लासमेट रही है, देखी भाली है, उसका दबाव पड़े। अभी कुछ ही वर्ष इन हरजिनों से फायदा लिया जा सकता है और फिर सोच मम्मू अपनी मर्जी से किसी दलित से कोर्ट में पकड़ शादी कर लेती, तू क्या करती तेरी बहन ने एक ही लड़की को वकील बनाया, उसने कर ली जात से बाहर शादी।'

सेठानी को हावी होने का जैसा मौका मिल गया हो।

'पर वो लड़का तो सैनी है।'

पर वह सेठ से तेज नहीं थी। जानकारी का भंडार था सेठ त्रिलोकचंद्र। तब ही तो प्रगतिशीलता का आचरण जेब में लिए घूमता है।

'अर वो मेरी बुआ वाली लड़की, दो साल पहले लैक्चरर लगी थी, उसने तो चमार के साथ ही कोर्ट मैरिज किया। मत पूछो बिरादरी! लड़का आज कालेज में प्राध्यापक है। लाख से ऊपर सेलरी आती है घर में हर महीने। पैसा बड़ा है, सेठानी पैसा।' आज पैसे का राज है। जिस दिन पैसे का राज समाप्त होगा। उस दिन दलितों का राज होगा। सोच सेठानी! उस दिन कौन पूछेगा तेरी सेठदारी को?'

माया देवी यह कहकर उठ गई।

'तुम्हारी जी में आए जो करो। मम्मू की क्या गारंटी जो मान जाएगी। इस टिंगर तै भी तो पूछना पड़ेगा। मैं तो खाना ल्या रही हूं। थारै और थारी औलाद कै जो जी म्हं आवै वो करो।'

सेठानी खाना लाई तथा चुपचाप बैठी।

सेठ का तरकश अब लखेसरी बाण चलाने लगा।

'सेठानी! आज तो पद और पैसे का राज है। मुझे दलितों का राज आता हुआ दिख रहा है और उन दलितों का जिन्हें आज तक कुछ हाथ नहीं लगा। जिस दिन इन दबे-कुचले लोगों के हाथ में बागडोर होगी। उस दिन न कोई सेठ होगा, न कोई हरिजन। सब, सब तरह से बराबर। वो राज मुझे दौड़ा चला नजर आ रहा है। तु मुझे यह जुआ खेलने दे। शायद मैं अपने बच्चों को तो इस पद तक न पहुंचा सकूं। कम से कम दामाद पा लूं।'

सेठानी अब बिल्कुल ढीली पड़ चुकी थी। सारे हथियार सेठ के कदमों में रख दिए।

'अच्छा बाबा। जी मैं आए जो करो। रोटी खा लो जल्दी से। पूरा शरीर हरकत से टूटा जा रहा है। इधर से निपटू तो आराम पाऊं।'

सेठानी बर्तन रसोई में रख एक तरफ निढाल हो सो गई। सेठ अब भी सोच रहा है और छत ताक रहा है।

पद में कितनी ताकत है। कितनी आसानी से पांच सौ गज का प्लाट अफसर ने दिला दिया। पिस्टल का लाईसैंस, रिश्वत दिए न मिले, पर इधर तो बिना कहे ही मिल गया। बैंक अधिकारी तुरंत पच्चास लाख का कर्ज पास न करता, तो आज शायद इस दुनिया में न होते। आज सब पद वालों की मेहर से है। बच्चों को इसलिए ही तो कारोबार से दूर रखा। शायद अच्छे अफसर बन जाएं। लड़की की तरफ ध्यान ही नहीं दिया। लड़का मर्जी का मालिक। आस टूटी जा रही है। कुछ दिन लोग बात बनाएंगे। मतलब पड़ेगा तो सरपट दौड़े आएंगे। परिवार वालों से तो बोलचाल बंद है ही, रिश्तेदारों से और सही। आगे-आगे सबके साथ यही बनने वाली है। मैं तो खुद अपने साथ बना रहा हूं। मुझे दुख किस बात का। दुख तो उनको होगा, जो टालने पर डटे हुए हैं। बनियों की तरक्की का राज अब और जात वाले जान रहे और सब बनिए हुए जा रहे हैं। लुटेरे का लुटेरा क्या लुटेगा। सेठानी मान गई। चोखा हुआ। सच्ची साथिन निकली। पर काम में पीस कर बेचारी को बीमार कर दिया। कितना चालाक है आदमी, हर तरीके से औरत को काबू में रखने की कला जानता है। अगर बात सिरे चढ़ गई, तो आगे जीवन में संभल कर चलूंगा। खूब प्यार से रखूंगा। शायद खुश रहेगी तो, बीमारी भी जाती रहे। औलाद का क्या भरोसा। थोड़ा मतलब हल न हुआ तो, आंख फेरी। पत्नी तो मेरी अपनी है, सच्ची जीवन संगिनी। एक बार जी में आया, बालों में हाथ फेरूं पर निंद्रा में विघ्न न पड़ जाए, सोच करवट बदल सोने की चेष्टा करने लगा सेठ। केवल यही बुड़बुड़ाया। 'सारा दिन बेचारी का पंजा नहीं टिकता। किस काम का इतना धन।'

रणबीर सिंह दो दिन बाद रोशन लाल को लेकर बंसल के पास आ गया।

सेठ जी ने, लड़के से खूब परिचय पाया। अपना ठाट-बाट दिखाया। अपनी इच्छा साफ-साफ शब्दों में रखी। लड़के ने दो दिन का समय मांगा। सेठ को बात बनती नजर आई तो आगे की तैयारी मन में पकानी शुरू कर दी।

एचसीएस रोशन लाल ने मित्रों से सलाह ली। मित्र सभी राजी हुए। मां-बाप मजदूर, बेटे की खुशी में अपनी खुशी समझी। जमाने को भी पहचान रहे थे। कुछ राजी, कुछ नाराज मतभेद की लीला तो रूकती नहीं। अंततः रोशन लाल ने शादी के लिए हां भर दी। पर शादी होगी ट्रेनिंग पूरी होने पर। हां वायदे से नहीं पलटूंगा। यह आश्वासन अवश्य दे दिया।

बेटी अचंभित हुई, पर तैयार है। बेटा खुद जाट लड़की से विवाह की योजना तैयार किए हुए है। विरोध कर अपने पांव क्यों काटे।

तीन महीने बाद सेठ ने अपनी बेटी एक दलित अफसर से ब्याह दी। मीडिया ने इसे क्रांतिकारी कदम बताकर सेठ त्रिलोक चंद्र बंसल को बहुत ऊंचे आसन पर बैठा दिया। समाज में विरोध था पर राजनीतिक हलके सेठ त्रिलोक चंद्र बंसल को पुकार रहे थे। इधर सेठ बंसल का नया संसार खुल रहा था। उधर, रोशन लाल अपनी ब्याहता को आगे पढ़ाने व बढ़ाने की तैयारी। सेठानी शांत व चुप, पर ममता अपने भाग्य पर इतरा रही थी।

रोशन लाल ने ठाट-बाट देखा तो देखता ही रह गया। विचारों में ऐसा खोया कि लाख ढूंढे भी न मिले।

रोशन लाल निम्बड़िया सोच रहा है, बनिया हाथ जोड़ कर अपनी बेटी दे रहा है। बेटी भी देखी भाली है। लड़की में कोई खास कमी नहीं। जमाने की हवा तो लगी, पर खराब कम ही लगी। लड़की तो जाति में भी अच्छी नौकरी वाली मिल सकती है, अच्छा घर भी। परन्तु सवर्ण जाति का दामाद बनना ज्यादा बेहतर है। हमेशा जिनके तलवे चाटे, आज बराबर बैठने का अवसर हाथ आ रहा है। यह पद न मिलता तो कौन पूछता। अपनी जाति वाले भी लड़की ब्याहते रोते।

मन पर पूरा प्रेशर डाल बार-बार सोचा, हर बार यही जवाब मिला, 'मौका नहीं चूकना चाहिए। लड़की तेरे से तो गुणों में अच्छी है। कभी कोई बनियों वाली चालाकी नजर नहीं आई। तेरे पास तो पद ही आया है। अंततः प्रथम परामर्श मित्रो, फिर माता-पिता। माता-पिता के पास तो आज पढ़े-लिखों ने कोई छोड़ी ही नहीं। मात्र औपचारिकता निभानी है सो गरीब मां-बाप समझ गए।'

सम्पर्क : 94162-17335

आजादी से पहले का हरियाणा

रघुवीर सिंह

हरियाणा हिन्दुस्तान के उन प्रदेशों में से है,जो राजनीतिक तथा सामाजिक तौर पर काफी पिछड़े हुए इलाके हैं और जिनमें राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन तथा दूसरे समाज-सुधार आंदोलनों का प्रभाव भी ज्यादा नहीं रहा। शिक्षा का प्रसार भी बहुत कम रहा और कारखाने न के बराबर ही लगे।

सारे ही प्रांत में खेती काफी पिछड़ी हुई थी। जमीन के नीचे लायक पानी बहुत कम है और कम इलाके में है, नहरी सिंचाई का कोई प्रबंध नहीं था, दिल्ली में अच्छी या बुरी सरकार, मजबूत या कमजोर सरकार के अनुसार यमुना नदी से नहर निकाल कर खेती के लिए सिंचाई का प्रबंध बनता-बिगड़ता रहा, परन्तु मुख्यत: पशुपालन लोगों का मुख्य-धंधा था और इसलिए अधिकतर भूमि या तो शामलात बंजर चरागाहें थी या व्यक्तिगत बंजर चरागाहें थी। काश्त के लिए काफी कम जमीन थी और उसमें भी अधिकतर चारे वाली फसलें ही बोई जाती थीं। परिणामस्वरूप इस इलाके में बहुत कम अतिरिक्त उपज होती थी और उसी को दिल्ली दखल कर लेती थी, क्योंकि सारे देश का शक्ति-केंद्र थी। यही कारण था कि हरियाणा में व्यवसायिक पूंजी का संचय बहुत निम्नस्तर का रहा और उसका भी मुख्य तौर-तरीका सूदखोरी ही रहा, माल का व्यापार नहीं। यही कारण है कि हरियाणा में मध्ययुग में तथा अंग्रेजी राज में भी कोई बड़ा व्यवसायिक केंद्र विकसित नहीं हुआ और न कोई साधन-सम्पन्न व्यापारी वर्ग पैदा हुआ जो पूंजीवाद के पदार्पण के समय व्यापार में इकट्ठे हुए रुपए को उद्योग में लगाकर पूंजीपति वर्ग में विकसित हो जाता और न ही कोई ऐसा सामन्त वर्ग यहां था, जिसके पास पीढ़ियों की लूट-खसोट से इकट्ठी की हुई फालतू दौलत हो और वह उसको लगा दे।

हरियाणा में सामन्तशाही कायम न होने के दो कारण रहे दिखते हैं। पहला दिल्ली। दिल्ली मध्ययुग में मुख्य शक्ति केंद्र थी। इसलिए अपने नजदीक किसी भी दूसरे सामंत को पैदा होने देने अपने लिए खतरनाक समझती थी। दूसरा कारण बहुत कम अतिरिक्त उपज होना था और जो इस बात से और भी साफ जाहिर होता है कि जो भी छोटी-बड़ी सामंतशाहियां, राजे-रजवाड़े तथा जागीरदारियां कायम हुईं, अंग्रेजी राज से पहले,चाहे बाद में उनकी हालत बहुत नाजुक रही। उनमें से अधिकतर की हालत जैसे पटौदी, दुजाना, लुहारू तो ऐसी थी कि उन्हें अपने बच्चों की शादियों के लिए भी कर्जे उठाने पड़ते थे। इसका एक परिणाम यह भी रहा कि सामंतशाही जो भाषा, साहित्य और कला का विकास करती है, हरियाणा उससे भी वंचित रह गया और आज हमारी कोई भाषा नहीं है तथा साहित्य नहीं है, कला की तो बात ही जाने दें। दिल्ली की उपस्थिति के कारण वह सामन्ती शोषण की सीढ़ी कायम नहीं हुई जो किसान को जमीन पर कमरतोड़ मेहनत करने पर मजबूर करती है तथा उसे अपनी सारी ताकत लगाकर अधिक उपजाने पर विवश करती है और इस प्रक्रिया में पैदावार के औजारों को भूमि को, सिंचाई को, सिंचाई साधनों को तथा बीज-खाद को विकसित करने पर मजबूर करती है। दूसरे शब्दों में पैदावार की ताकतों का विकास मध्ययुग में पिछड़ा हुआ रहा, जिससे व्यवसायिक पूंजी का संचय भी निम्न स्तर का रहा। कुछ साथियों ने यह कहने की कोशिश की है कि हरियाणा में खेती बहुत पहले से विकसित थी और यहां काफी बड़ी मात्रा में अतिरिक्त उत्पादन होता था। इस तर्क की हिमायत में वे अकबर के समय के कुछ सरकारी डाक्यूमैंट आंकड़ों सहित उद्धृत करते हैं। इन आंकड़ों से यह पता नहीं चलता कि ये कितने इलाके की पैदावार है और वहां की जनसंख्या कितनी है। बिना इसके अतिरिक्त उपज का निर्धारण कर लेना जल्दबाजी ही कही जाएगी। जब हम हरियाणा में अतिरिक्त उत्पादन कम होने की बात करते हैं तो यह बात एबसोल्यूट अर्थ में नहीं सापेक्षिक अर्थ में करते हैं। (क्योंकि बिना कतई अतिरिक्त उपज के तो कोई भी वर्ग समाज और राज्य टिक नहीं सकता)।

मुगलकाल में बादशाह सारी भूमि का मालिक था। जो काश्त भूमि से लगान वसूल करता था, जिसकी मात्रा अलाउद्दीन खिलजी के समय में आधा भाग और अकबर के समय में कुल पैदावार का 1/3 भाग था। देखना यह है कि बादशाह को लगान देने के बाद कोई भाग बचता है या नहीं और यदि बचता है तो क्या वह उस प्रांत या इलाके में व्यवसायिक संचय के लिए पर्याप्त है? कुछ लोगों ने यह भी दिखाने की कोशिश की है कि तुर्कों और मुगलों के जमाने में हरियाणा के बहुत बड़े भू-भाग में नहरों से सिंचाई होती थी और खेती बहुत अधिक विकसित थी। इन लोगों ने कहीं भी यह व्याख्या नहीं की कि हरियाणा में उनके मुताबिक खेती का इतने पुराने जमाने में विकास होकर अंग्रेजों के आने तक क्यों और कैसे पिछड़ गया? यह सर्वविदित है कि वर्तमान भाखड़ा नहर के आने से पहले टोहाना, सिरसा तथा हिसार के बड़े भू-भाग में धूल उड़ती थी और खेती पूरी तरह मानसून पर आधारित थी। यह कहना भी संदर्भ से बाहर न होगा कि हरियाणा का यह भू-भाग बहुत ही कम वर्षा वाला भू-भाग है और इसका 'वाटर टेबल' उत्तर पूर्वी हरियाणा के मुकाबले में बहुत नीचे है। मूल बात तो यही है कि अंग्रेजों के आने से पहले अतिरिक्त उत्पादन (लगान की लूट के बाद) क्या इस स्तर का था कि किसी बड़े व्यवसायिक केंद्र को जन्म दे सकता और सामंती स्तरीकरण की सीढ़ी तैयार कर पाता? क्या कारण था कि यहां की 'आर्गेनिक' सामन्तशाही विकसित नहीं हो पाई?

हिन्दुस्तान में अंग्रेजी शासन की कामयाबी के बाद हरियाणा को कई टुकड़ों में बांट दिया गया और संसार के प्रथम महायुद्ध तक यह सारे टुकड़े उपेक्षित ही रहे। पंजाब दिल्ली में प्रथम बार 1879 में जमीन की सैटिलमैंट हुई और प्रथम बार भूमि में व्यक्तिगत-सम्पति कायम हुई।

पश्चिमी यमुना नहर निकलने से सिंचाई के साधन कायम हुए, जिससे गेहूं-गन्ने की बिजाई बढ़ी तथा कपास की खेती भी बढ़ी। प्रथम महायुद्ध में हरियाणा के कुछ विशेष इलाकों से काफी बड़ी संख्या में लोग सेना में भर्ती हुए। इससे पहले हरियाणा से लोग किसी भी सरकारी इदारे में स्थान नहीं पाते थे।

हरियाणा में गंगा यमुना पर दोआब था। वही ऐसा इलाका था जो पर्याप्त अतिरिक्त उपज करता था। और इसी कारण मुजफ्फरनगर वगैरा के इलाके में कुछ जमींदारियां कायम हुईं और जब भी दिल्ली ने लगान बढ़ाया तो इन जमींदारियों ने लगान बढ़ौतरी के खिलाफ बड़े जन-विरोध गठित किए। इन जन-विरोधों का संगठनात्मक प्रारूप सर्वखाप पंचायतें थी। यह यों ही नहीं था कि जनविरोध संगठित करने वाली सर्वखाप पंचायतों की बैठकें अधिकतर मेरठ, मुजफ्फरनगर जनपदों में हुई और बाल्यान खाप के गांव (सोरों) में सर्वखाप पंचायत का स्थायी दफ्तर लंबे अरसे तक रहा।

सन् 1857 के स्वतंत्रता युद्ध में हरियाणा के लोगों ने बहुत बड़ी संख्या में हिस्सा लिया था और दिल्ली को स्वतंत्र कराने में तथा उसकी स्वतंत्रता को कायम रखने में हरियाणा के लोग मुगल बादशाह के साथ थे। जो भी छोटे-बड़े राजे-रजवाड़े हरियाणा में कायम हुए थे जैसे वल्लभगढ़, फरुखनगर, झज्जर, रिवाड़ी, बहादुरगढ़, फतेहाबाद और टोहाना इन सभी ठिकानों ने मुगल बादशाह का साथ दिया और अंग्रेजों को मार भगाने में अपना हिस्सा डाला। इसके अलावा दिल्ली-मेरठ जनपद, दिल्ली-हांसी, दिल्ली-करनाल, दिल्ली-गोहाना आदि जनपदों के लोगों ने पूरे उत्साह और बहादुरी से मुगल बादशाह का साथ दिया और गोरों को मार भगाने के लिए संघर्ष में शामिल हुए। इसलिए 'पांच फिरंगी दस गोरे, लड़ै जाट के दो छोरे', 'फिरंगी लुट गयो रे हाथरस के बाजार' आदि लोकगीत बने।

प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की शिकस्त के बाद अंग्रेजों ने हरियाणा प्रांत में बहुत पाशविक अत्याचार किए। सभ्य संसार के नेताओं की सभ्यता का काफी भोंडा और निम्नस्तर का प्रदर्शन था। इन्सानी शोषण पर आधारित कोई भी सभ्यता मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत नहीं हो सकती। शोषण पर चोटें पड़ते ही उसके मानवीय रूप का पर्दा फौरन उठ जाता है और शोषक का पाश्विक रूप खुल कर सामने आ जाता है।

यूरोप में नई पैदा हुई पूंजीवादी सभ्यता के नेता अंग्रेज स्वतंत्रता प्राप्ति की इच्छा रखने वाले साधारण से साधारण हिन्दुस्तानी पर किस प्रकार भेड़ियों की तरह टूट पड़े। यह इस बात से साफ जाहिर हो जाती है कि लिबासपुर के चौधरी उदमी राम को 37 दिन तक लटका-लटका कर मारा गया। उसके हाथ-पैरों को पेड़ के साथ बांध कर कीलें ठोक दी गई और 37 दिन तक उसी हालत में हिन्दुस्तान की आजादी का वह वीर सिपाही तड़प-तड़प कर अंग्रेजी पूंजीवादी सभ्यता की स्वतंत्रता, समानता तथा भाईचारे के ऊंचे सिद्धांतों की कहानी कहता रहा। ब्रिटेन में प्रजातंत्र तथा जनवादी अधिकारों के विकास के इहिास का प्रतिनिधि हिन्दुस्तान में कर्नल हडसन बना, जिसने हजारों निहत्थे लोगों को मामूली मामूली कसूरों पर बिना कोई मुकद्दमा चलाए मौत के घाट उतार दिया। इस काम में उसने बच्चे, बूढ़े या औरत का भी कोई ख्याल नहीं किया। बड़े-बड़े गांवों में मुख्य चौराहों पर उसने लोगों को पेड़ों पर फांसी लटका दिया और लाशें नहीं उतारने दी। गोहाना जनपद में शामड़ी गांव में तेरह मुखिया किसानों को एक कतार में खड़े करके गर्दनें काट दी गई। महम, हांसी, फतेहाबाद, टोहाना, बल्ला आदि कितने ही स्थानों पर लोगों के साथ अमानवीय ढंग से अत्याचार किए गए। इसके अलावा बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह को, नवाब झज्झर को, बहादुरगढ़ के नवाब को, दिल्ली की कोतवाली के सामने 1858 को फांसी दी गई।

मध्य युग में लंबे अरसे तक दिल्ली, हिन्दुस्तान की राजधानी रही और विशेषकर मुगल-काल में तो दिल्ली ही हिन्दुस्तान का शक्ति-बिन्दु रही। लेकिन हरियाणा के लोगों ने अपने सामाजिक, धार्मिक कार्यकलापों में दिल्ली के बादशाहों की दखलांदाजी बरदास्त नहीं की और जिस राजा ने भी इस दखलांदाजी का प्रयत्न किया, उसके खिलाफ लोगों ने सामूहिक रूप से विरोध-प्रदर्शन किया। दिल्ली की कमजोरी का लाभ उठाकर जब जब भी बाहर से हमलावर आए, हरियाणा के लोगों ने उसका विरोध किया। तैमूर लंग तथा अहमदशाह अब्दाली जैसों को दिल्ली में टिकने नहीं दिया। नसीरूद्दीन, अलाउद्दीन खिलजी, तुगलक तथा औरंगजेब आदि कितने ही दिल्ली के बादशाहों की सामाजिक व धार्मिक मामलों में दखलदांजी तथा मालगुजारी की वसूली तथा बढ़ौतरी का सफल विरोध किया। दिल्ली के बादशाहों की इन नीतियों के विरोधी संघर्ष में लोग गांव छोड़ कर अपने पशुओं को जंगलों में ले जाते थे। जमीनें बंजर पड़ी रहती, बादशाह को मालगुजारी नहीं मिलती। लोग छापामार संघर्ष चलाते और इसप्रकार तंग आकर बादशाह की लोगों से पंचायतों के जरिए समझौता ही करना पड़ता। अधिकतर राजाओं के रिकार्डों में यह दर्ज है कि हरियाणा के लोगों से मालगुजारी वसूली करना कठिन है। इसका कारण यह नहीं था कि हरियाणा के लोग मुगलों के खिलाफ बागी थे तथा जमीन का माल देने को तैयार नहीं थे। बल्कि सच्चाई यह है कि पैदावार इतनी कम थी कि देने को कुछ होता ही नहीं था। खेती मानसून पर ही आधारित थी तथा माल अदा करने लायक कई बार पैदावार नहीं होती थी। इसीलिए लोग लगान की अदायगी से बचने को गांव छोड़कर भाग जाते थे।

परन्तु अंग्रेज बहुत विकसित समाज के प्रतिनिधि थे। प्रशासन के तरीके अधिक विकसित थे। सेना, संगठन तथा हथियार अधिक उन्नत थे, भूगोल तथा इंजीनियरिंग का ज्ञान हिन्दुस्तानियों के मुकाबले बहुत ज्यादा विकसित था। इसलिए दिल्ली पर अधिकार जमाने के बाद गोरे शासकों ने मालगुजारी की बढ़ौतरी, उसकी वसूली तथा सरकारी तंत्र को गांव तक ले जाने और पूरे समाज की हर कार्यवाही पर नजर रखना तथा अंग्रेजी राज के हितों के अनुसार ही उसको चलने देना या रोकना शुरू किया। हरियाणा के लोगों ने ऐसा महसूस किया कि उनकी पहले वाली आजादी छिन गई है तथा सारा प्रांत ही कैदखाना बना दिया गया है तथा उन्हें अपने घरों में कैद कर लिया गया है। इस घुटन को तोड़ने का मौका लोगों को नहीं मिल रहा था। मुगल-युग में जो लोगों का तरीका था, पंचायत करके सामूहिक फैसलों के अनुसार केंद्रीय सत्ता का विरोध करना, विरोधों के वे तरीके नया शासक लागू नहीं होने दे रहा था। पंचायत व्यवस्था के बजाए अपना प्रशासन ले आया था। अपने छुटभैये अफसर गांव में नियुक्त कर रहा था और उनको सरकारी खजाने से वेतन या मजदूरी देता था। आने-जाने के साधन विकसित

कर लिए थे, रेल ले आया था। विरोध करने वाली जनता और शासक वर्ग के हथियार के स्तर में बहुत अन्तर था। इसलिए जहां कहीं प्रशासन का विरोध करने के प्रयत्न भी हुए, फौरन दबा दिए गए और गोरे प्रशासन का शिकंजा कसता गया।

सन् 1857 में अंग्रेजी सेना के हिन्दुस्तानी सिपाहियों द्वारा मेरठ में अंग्रेजी सरकार के खिलाफ विद्रोह हरियाणा की जनता की मनभाई खबर थी। फौरन बगावत सारे हरियाणा में फैल गई। अंग्रेजी प्रशासन के सभी ठिकानों पर हमले किए गए तथा उन ठिकानों को नष्ट कर दिया गया। मालगुजारी व वसूली के मुख्यालय लोगों के गुस्से का लक्ष्य थे। इसलिए संघर्ष के स्थान पर तहसील का दफ्तर तथा इसके कागजात जरूर जलाए गए। लेकिन कोई संगठन न होने के कारण लोगों का व्यवहार अराजक था। दिल्ली से या हिन्दुस्तान से अंग्रेजों को उखाड़ना है, इस बात से लोगों का ज्यादा वास्ता नजर नहीं आता। स्थानीय तौर पर प्रशासन समाप्त हो गया और उनके लिए स्वतंत्रता प्राप्त हो गई थी, लेकिन प्रशासन की इस पूर्ण गैरहाजिरी का नाजायज लाभ उठाकर आपस में लड़ना-झगड़ना तथा लूट-खसोट शुरू कर दी गई थी, जिसके कारण अंग्रेज खिलाफ संघर्ष के लिए लोगों में इतनी नफरत और गुस्सा होने के बावजूद, जनसमर्थन की वह शक्ति नहीं मिली जो उनकी जीत के लिए आवश्यक थी। केवल हरियाणा के राजे-रजवाड़े तथा अंग्रेज सेना के हिन्दुस्तानी सिपाही ही अंग्रेज के हमले से दिल्ली की रक्षा करने में लगे हुए थे। हिसार के इलाकों पर अंग्रेज की मदद के लिए बीकानेर के राजा का हमला तथा करनाल-कुरुक्षेत्र व पानीपत पर पटियाला और जींद के राजाओं का हमला, अंग्रेज की हिमायत में हुआ। हरियाणा की जनता द्वारा विरोध संगठित नहीं किया गया, जिसके कारण अंग्रेज को दोबारा दिल्ली जीतने में बहुत मदद मिली और हिन्दुस्तान का पहला आजादी युद्ध पराजित हो गया।

इस पराजय के हरियाणा के संदर्भ में दूरगामी परिणाम निकले। पराजय के बाद जो दमन चक्र चला उससे लोग प्रथम बार दिल्ली की सरकार से भयभीत हो गए। प्रशासन इतिहास में पहली बार गांव में पहुंच गया। मालगुजारी की वसूली बाकायदा और सख्ती से शुरू हुई। हर गांव में प्रशासन के अपने भाड़े और बिना भाड़े के एजेंट कामय हो गए थे। खेती बहुत पिछड़ी हुई थी। लोगों से एक-एक पैसा लूट लिया गया था। भयंकर अकाल पड़ रहे थे, जिनमें बहुत लोग भूखे-प्यासे मर गए। हरियाणा के लोगों ने इससे पहले कभी इसप्रकार की मुसीबत नहीं देखी थी। छोटी-छोटी बातों के लिए पूरे गांव के गांव को सजाएं मिलती। गांव छोड़कर लोग कहीं जाने की स्थिति में नहीं रहे थे। लोगों की पीड़ाएं असहनीय थी, लेकिन बरदाश्त करने के अलावा जनता के पास कोई रास्ता ही नहीं बचा था। इसलिए 1858-59 से लेकर 20वीं सदी के प्रारंभ तक हरियाणा के इतिहास का समय घोर अंधेरे का समय है। यही समय था जब चार गोरे घुड़सवारों के सामने गांव के गांव भाग लेते थे। गोरे लोगों के पास दिव्य शक्ति मान ली गई थी। 'साहबा' -एक पुलिस का कांस्टेबल सारे गांव को अकेला हांक कर ले जा सकता था, बगैर कोई कारण बताए। किसी की कारण पूछने की हिम्मत नहीं हो सकती थी। यहां तक कि अंग्रेज द्वारा गोली से मारे गए या फांसी लगाए गए लोगों का कनागत (श्राद्ध) भी नहीं मनाया जाता था।

अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने लोगों को इस हद तक भयभीत कर दिया कि उन्होंने अपने शहीदों को भी जानबूझ कर भुला दिया। जो भी अंग्रेज-विरोधी था वह अहितकर मान लिया गया और साम्राज्य के छोटे से छोटे एजेंट को भी समाज में दबदबा मिल गया। उनसे किसी भी रूप में संबंध कायम रखना आम आदमी अपना अहोभाग्य समझने लगा। यही कारण है कि अंग्रेजी सरकार द्वारा नियुक्त गांव के नए अफसर, नंबरदार, सफेदपोश और जैलदार फौरन हरियाणा के समाज में सम्माननीय मान लिए गए। इसी दौरान इन कहावतों का प्रचलन शुरू हुआ-'राज की अगाड़ी-घोड़े की पछाड़ी नहीं आना चाहिए।' 'थळ्स के पड़े का अर पुलिस के पीटे का कोई डर नहीं होता' आदि।

इन सब मुसीबतों के बावजूद समाज में कुछ ऐसे आधार तैयार होने लगे थे, जिनके ऊपर समाज में ऐसी ताकतों को जन्म लेना था जो इस सर्वशक्तिमान दिखाई देने वाले अंग्रेजी साम्राज्य को उखाड़ फैंक सकती थीं। हरियाणा में पशुपालन के साथ-साथ लोग खेती को भी गंभीरता से लेने पर मजबूर हुए। लोग सामूहिक तथा व्यक्तिगत प्रयत्नों से खेती में पैदावार के साधनों का विकास करने पर मजबूर हो गए, लेकिन धन के अभाव में विकास प्रक्रिया धीमी ही रही। लेकिन यूरोप के औद्योगिक विकास ने तथा संसार के बड़े भाग पर अंग्रेज के अधिकार ने इस सारे क्षेत्र को ही एक मंडी बना दिया, जिससे कपास, गन्ना आदि व्यापारिक फसलें बनीं और इनकी बाजार में मांग बढ़ी तो इनकी खेती बढ़ी। परिणामस्वरूप खेती केवल खुद के उपभोग तथा मालगुजारी देने के लिए नहीं, बल्कि कुछ कमाने के लिए भी की जाने लगी। लेकिन पूंजी का अभाव, खेती के विकास में मुख्य रुकावट थी। महाजनी पूंजी ही एकमात्र सहारा थी, लेकिन इसका बोझ इसप्रकार का था कि विकास की बजाए अवरोध पैदा करती थी। इसीलिए 20वीं सदी के प्रारंभ तक हरियाणा में नवजागरण के लिए कोई भौतिक आधार कायम नहीं हुआ।

बीसवीं सदी के शुरू में ही यूरोप में बड़े युद्ध की तैयारियां शुरू हो गई थीं। ब्रिटेन और फ्रांस के मुकाबले यूरोप के दूसरे देशों का पूंजीपति भी आ गया था और विशेषकर जर्मनी का। यूरोप में कारखाने का फैलाव बहुत तेजी से हुआ तथा औद्योगिक कच्चे माल की मांग संसार में तेजी से बढ़ी थी। अमेरिका और हिन्दुस्तान अंग्रेजी कारखाने के लिए कच्चे माल के मुख्य स्रोत थे। अमेरिका में भी दासप्रथा समाप्त होने के बाद खेती में खर्चा बढ़ गया था। इसलिए हिन्दुस्तान में भी अंग्रेज पूंजीपति के एकाधिकार के बावजूद खेती की पैदावार के दाम कुछ बढ़ गए थे। इसीलिए हरियाणा में भी गन्ने और कपास की खेती की काश्त बढ़नी शुरू हुई। प्रथम महायुद्ध के समय हरियाणा से बहुत बड़ी संख्या में लोग फौज में भर्ती हुए। भयंकर गरीबी और मंदी के दौर में महीने में सात या आठ रुपए का वेतन भी खेती में पूंजी बन गया। ये लोग सेना में भर्ती होकर दूसरे देशों में, यूरोप भी गए। विचारों की जड़ता टूटी। विकसित दुनिया को देखा। युद्ध समाप्ति के बाद जब ये लोग गांव वापिस आए तो इन लोगों ने खेती में पैसा लगाकर खेती शुरू की। यह इसलिए क्योंकि इन लोगों के पास पैसा था। दूसरे इन लोगों ने शिक्षा पर बढ़ा जोर दिया। जगह-जगह इन लोगों ने जन सहयोग से स्कूल खोले। हरियाणा में प्रथम बार एक छोटे से मध्यम वर्ग का जन्म हुआ। आर्य समाज के समाज-सुधार आंदोलन का प्रसार भी इसी दौरान हरियाणा में हुआ और सारे देश में चल रहे राष्ट्रीय-मुक्ति-आंदोलन का प्रभाव भी हरियाणा पर पड़ा। खेती में पूंजीवाद के

दखल ने देहात में एक नए वर्ग को जन्म दिया, जिसने शिक्षा-प्रसारण और समाज-सुधार आंदोलन तथा राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के प्रभाव को देहात में फैलाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

इसप्रकार हरियाणा में एक शिक्षित मध्यम वर्ग का जन्म हुआ। इस वर्ग ने हरियाणा में नवजागरण का डंका बजाया। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में भी इस वर्ग ने अपनी हिस्सेदारी डाली। पंडित श्रीराम शर्मा, लाला शाम लाल, चौ. मातू राम, डाक्टर रामजी लाल, पंडित नेकी राम, चौ. लाजपत, चौ. सुमेर सिंह आदि लोगों ने जो इस वर्ग से उपजे थे, हरियाणा में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का नेतृत्व प्रदान किया। झज्जर व अम्बाला से पहली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में एक-एक सदस्य रहा।

परन्तु इस नवोदित मध्य वर्ग की दो मुख्य कमजोरियां थीं, जिनके कारण उसका अपना विकास अधिक न हो सका और न ही उसका प्रभाव हरियाणवी समाज में गहराई तक जा सका। सर्वप्रथम यह वर्ग संख्या में बहुत छोटा था और इसका बौद्धिक और आर्थिक विकास इतना बौना था कि हरियाणवी समाज की अंधविश्वास और जाति-पाति पर आधारित मान्यताओं को अधिक चोट नहीं पहुंचा सका। असल में स्वयं भी यह वर्ग इन अंधविश्वासों और मान्यताओं से बाहर नहीं निकल पाया बल्कि इनका भाग रहकर इन अंधविश्वासों और मान्यताओं का औचित्य सिद्ध करने लगा। नई शिक्षा से तथा पैदावार से जो विवेकपूर्ण दृष्टिकोण इस वर्ग में पैदा होना चाहिए था तथा जिसका प्रभाव पूरे समाज की सोच पर पड़ना चाहिए था वह नहीं हुआ। इसलिए मध्यम वर्ग ने बंगाल, महाराष्ट्र, मद्रास, पंजाब तथा केरल आदि प्रांतों में जो भूमिका निभाई। जिसके परिणामस्वरूप नतीजा यह हुआ कि हरियाणा में जाति-बंधन की जकड़ विचार और सामाजिक संस्थाओं-संरचनाओं पर से नहीं टूटी। इसीलिए आर्यसमाज तथा राष्ट्रीय-मुक्ति-आंदोलन का असर सतही रहा। समाज को इसी प्रकार से झकझोरने वाली बात न आर्य समाज कर पाया और न ही राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन, बल्कि अंतत: समाज पर रिटायर्ड फौजियों के असर ने सरकार-भक्ति को जन्म दिया तथा मजबूत किया। इसके साथ ही पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी की सफलता ने भी इस इलाके के लोगों में राजभक्ति को बढ़ावा दिया और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के प्रभाव को फैलने से रोका।

सारे देश में पूरे देश के स्तर पर राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के बढ़ते हुए असर से सतर्क होकर अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने पंजाब में एक विशेष नीति अख्तियार की जिसकी इमदाद से उसने पंजाब के किसान को राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में शामिल होने से रोकने का प्रयास किया। साम्राज्यवाद की इस नीति के मुख्य हथियार जाति के आधार पर 'कृषक' और 'अकृषक' जातियां घोषित करना और अकृषक जातियों को कृषक जातियों के लोगों की जमीन न खरीदने देने का बिल पास करना, 'मार्शल' और 'नोन मार्शल' नस्लें घोषित करना और मार्शल घोषित की गई जातियों को सेना की भर्ती में विशेष रियायतें प्रदान करना था। इसी नीति का राजनीतिक पहलू अंग्रेजी साम्राज्यवाद की इमदाद से यूनियनिस्ट पार्टी की कामयाबी थी। यूनियनिस्ट पार्टी की राजनीति का मुख्य स्तम्भ जातिवाद रहा और कांग्रेस पार्टी, जो राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की मुखिया पार्टी थी, पर हमला यूनियनिस्ट पार्टी के लोग जाति-पाति के आधार पर ही करते रहे। ऐसा करने का मौका उन्हें इसलिए भी मिला कि इस क्षेत्र में कांग्रेस पार्टी का नेतृत्व प्राय: शहरी लोगों के पास था। इसके अलावा राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस के पास ऐसा कोई कृषि कार्यक्रम नहीं था जो व्यापक किसान जनता को अपनी और आकर्षित कर सकता। पंजाब विधान परिषद में यूनियनिस्ट पार्टी द्वारा पेश कुछ किसान हिमायती और सूदखोरी विरोधी बिलों को कांग्रेस द्वारा समर्थन न दिए जाने से यूनियनिस्ट पार्टी की किसानों में साख कांग्रेस के मुकाबले बढ़ गयी।

पंजाब तथा हरियाणा के देहात में किसान तथा सूदखोर-जमाखोर वर्ग में मुख्य अन्तर्विरोध था। सूदखोरी के बोझ में न केवल उसकी सारी पैदावार चली जाती थी बल्कि उसकी जमीनें भी उसके हाथ से खिसक कर सूदखोरों के कब्जे में जा रही थीं। 1920 के दशक के सस्तेवाडे ने किसान की हालत ज्यादा खराब कर दी थी। इन गहराते अन्तर्विरोधों का लाभ उठाकर यूनियनिस्ट पार्टी के नेता चौधरी छोटूराम ने किसान बनाम महाजन की राजनीति को किसानों में फैलाने की कोशिश की और इस प्रयत्न में वह काफी सफल रहे भी। जाति पर आधारित पिछड़ी सामाजिक संरचनाएं चौ. छोटूराम के इस किसान बनाम महाजन की राजनीति को फैलाने में काम आई और विशेषकर उन इलाकों में जहां महलवारी व्यवस्था के कारण किसानों पर सामन्ती जकड़ अपेक्षाकृत कम थी और किसानों की आजादी की लड़ाई में व्यापक शिरकत का खतरा था वहां इस प्रकार की साम्राज्यवादी चाल को इस पार्टी ने सफल करने में पूरी मदद की।

संसार के दूसरे महायुद्ध की समाप्ति पर जो दुनियां युद्ध की ज्वालाओं से निकल कर आई उसका रूप पहले की दुनियां से कई बातों में बहुत भिन्न था। युद्ध की समाप्ति के साथ-साथ ही सारा पूर्वी यूरोप समाजवादी हो गया और इस प्रकार प्रथम बार संसार में एक समाजवादी शिविर कायम हो गया, जिसको साम्राज्यवाद द्वारा डराना-धमकाना संभव नहीं था। दूसरे साम्राज्यवादी देशों को युद्ध ने इतना तोड़ दिया कि उनके लिए राष्ट्रीय आजादी के लिए लड़ रहे गुलाम देशों के आंदोलनों को ज्यादा देर तक कुचल पाना मुमकिन नहीं रहा। युद्ध की जरूरतों ने हिन्दुस्तान की देशी-अंग्रेजी सेनाओं की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ा दी थी और उनका काफी बड़ा भाग आधुनिक हथियारों से लैस तथा प्रशिक्षित था। इस सेवा में शामिल हिन्दुस्तानी सैनिकों ने विदेशों में लड़ाई के मोर्चे पर जाकर संसार के बारे में अपने ज्ञान में वृद्धि की तथा यूरोप के मुक्त जीवन का अहसास भी किया। हिन्दुस्तानी सेना के बढ़े भाग को पुल तोड़ कर सिंगापुर में जापान के हवाले करना, उन लोगों का सैनिक बंदी होते-होते नेता जी के कहने पर आईएनए में शामिल हो जाना तथा देश की आजादी के लिए अंग्रेज के खिलाफ हथियार उठाना और हार के बाद आईएनए के लोगों की गिरफ्तारी, उन पर मुकद्दमा और आईएनए के लोगों को अंग्रेज द्वारा मजबूरन रिहा किया जाना, ऐसी घटनाएं थी जिनका असर हरियाणा पर बहुत गहरा पड़ा। हरियाणा में पहली बार आईएनए के फौजियों के रूप में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को सक्रिय, मुखर तथा निडर कार्यकर्त्ता मिले। कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को इन लोगों से बहुत लाभदायक तथा हौसले वाला सहयोग मिला। समाज पर रिटायर्ड फौजियों के सरकारपरस्त प्रभाव को इन लोगों ने प्राय: समाप्त सा ही कर दिया। इसलिए 1946 का आम चुनाव पहुंचते-पहुंचते हरियाणा में कांग्रेस पार्टी का प्रभाव बहुत ज्यादा बढ़ चुका था और इस चुनाव में सारे हरियाणा में ही यूनियनिस्टों का सफाया हो गया, जबकि अभी तक बालिग मताधिकार लागू नहीं हुआ था।

साभार-प्रयास सितम्बर-दिसम्बर 83

सिमट रही है आज अंजरि में उनकी धरा-किसानी

❑राजकिशन नैन

हरियाणवी अंचल के गांवों में वैश्वीकरण के दानवी पंजे ने सदियों से चले आ रहे लोकजीवन के ताने-बाने को पूरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाले पुश्तैनी काम-धंधों का पूरा गणित एक बारगी ही बदल गया है। ग्राम्यांचलों में खान-पान और ओढने-पहनने के तौर-तरीके ही नहीं बदले, अपितु काम-धाम, रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, रहन-सहन और दिनचर्या आदि में आमूल-चूल परिवर्तन हो गया है। एड्डी-चोटी का पसीना एक करने वाले बुजुर्ग कभी के आए-गए हो गए हैं। 'काम प्यारा सै, चाम प्यारा नहीं' सरीखे वचन कहने वाले धीर और कमाऊ पुरुष अब हरियाणा के गांव-देहात में कहीं दिखाई नहीं पड़ते। अब अपनी नींद सोने और अपनी नींद जागने वाले निठल्ले लोगों का बोलबाला है। उल्टे-खूंट्टे गाड्डण आले (अनुचित कार्य करने वाले) और खड़ी बुहारी देण आले (बेगार टालने वाले) ऐसे गभरु अपनी माट्टी आप पीट रहे हैं। स्वावलंबन, सदाचार और कर्त्तव्यपरायणता का सर्वत्र लोप हो गया है। आदर्श गृहस्थाश्रम का ढांचा खंडित हो गया है। ओज एवं शक्ति पैदा करने वाले विशुद्ध संस्कार भी गांवों में कहीं नहीं रहे।

हरियाणा में स्वयं मरकर दूसरों को जिताने की परंपरा रही है, लेकिन अब इस प्रथा का लेशमात्र भी शेष नहीं है। गांवों के भले, बडेरे और सयाने लोगों ने अपने-अपने देश, काल, परिस्थिति, वर्ग, वातावरण और लोक मानस की दृष्टि से मानव समाज को उन्नत बनाने एवं मानव में मानवता भरने के लिए अतीव उच्च कोटि के कार्य किए हैं। ऐसे सुधी वाले बुजुर्गों की बदौलत ही हरियाणा के हर वर्ग में अतिथि-सत्कार, परोपकार, रक्षा, सेवा, दया, करुणा और दान आदि की रीत रही है। हरियाणा वासी गाय, साधु-संत, पक्षियों, पशुओं और प्राणीमात्र के प्रति अगाध स्नेह रखते हुए आए हैं। प्रदेश के सरल हृदय किसानों ने अशिक्षित होते हुए भी स्वस्थ मूल्यों एवं युग-युग से संचित आदर्शों को अपने लहू से सींच कर जीवित रखा है। हमारे बडेरूओं ने धन-धाम की अपेक्षा धर्म को बड़ा माना है। पुरखों की इस थाती का संरक्षण एवं संवर्द्धण करने की खातिर हमारे बड़ों ने भारी कष्ट उठाए हैं। देश के अन्य अंचलों की भांति हरियाणा अंचल की सांस्कृतिक परम्पराओं का अपना वैशिष्ट्य रहा है। हरियाणवी संस्कृति का फलक अत्यधिक विस्तीर्ण है। अत: यहां केवल अनुकरणीय परंपराओं को उजागर करने का यत्किंचित् प्रयास किया जा रहा है।

खेती हरियाणवी अंचल का मुख्य धंधा है। खेती को 'किसानी' भी कहते हैं। खेत-क्यार का काम कहने-सुनने और देखने में जितना सरल जान पड़ता है, करने में वह उतना ही जटिल है। लोकोक्तिकार ने कहा है-

पोह माह का पाळा सहै,
अर भादों का घाम।
पाणी डबड़ां का पीवै,
करै किसानी काम।।

अर्थात-जिसने में पौष और माघ की कड़कती ठंड एवं भादों की तिलमिला देने वाली धूप सहन करने का माद्दा हो तथा जो बरसाती पोखरों का पानी पीने की हिम्मत रखता हो वही खेती का काम करे।

और के बस की है भी कहां? यह किसान का ही श्रम हे, जिसके सहारे आज हम जीवित हैं। किसान की अस्थियां लोहे की और उसकी छाती वज्र की बनी है। किसान ने नाना कष्ट सहे, लेकिन अपनी आत्मा को कलुषित नहीं होने दिया। प्रत्येक जमाने के शासकों ने उसे मारा-कुचला, उसकी पूंजी को छीना, उसकी हस्ती को दबाया, लेकिन वाह रहे धरा के सपूत। तेरा तप साक्षात शिव के ही समान है। तूने उसी को गले लगाया, जिसने तुझे ठुकराया। तूने अपनी अंतड़ियां सुखायी, लेकिन तेरे द्वार से कोई भूखा नहीं लौटा। धन्य है तेरा साहस और धन्य है तेरी ठकुराई। तेरे तप से खेतों में एक सौ एक प्रकार की लक्ष्मी जन्मती है।

डेढ़ पीढ़ी पहले एक किसान की दिनचर्या तार्‌यां की छांह में (बहुत प्रात:) शुरू हो जाती थी। पुराने लोग सूर्य, चांद और तारों को देखकर समय का अनुमान लगाते थे तथा उसी के अनुसार कार्य की समय-सारणी तय करते थे। दिन के समय वे सूर्य के प्रकाश से बनी परछाई को देखकर समय का अंदाजा लगाते थे तथा रात को चांद-तारों की मदद से वक्त का अनुमान निर्धारित करते थे। रात को निकलने वाली हिरणी (सूर्यास्त के समय निकलने एवं सूर्योदय के समय अस्त होने वाले तीन विशेष तारे, जो जेठ मास के दौरान आकाश में दिखायी नहीं देते) एवं भूत्तां की राही (आकाश गंगा) देखकर वे तत्काल समय की गिनती कर लेते थे। हेड़ी तारा (पारधी नामक चमकीला तारा), भूरी तारी (सन्ध्या के समय दिखने वाला प्रथम तारा) और तारों का 'झुमका' (विशेष तारों का समूह) देखकर भी बुजुर्ग समय को जान लेते थे। उन्होंने सूर्य की गति के आधार पर दिन-रात को आठ पहर एवं चौसठ घड़ियों में बांट रखा था। कलेवे के समय को उन्होंने 'कल्लेबार' कहा, दिन के दो पहर बीतने पर 'दोफाहरा' पुकारा, सायं चार-पांच बजे खिचड़ी-दलिया रांधने के समय को 'हांडियां का बखत' नाम दिया तथा पहर घड़ी का तड़का (भोर-बेला) रहने पर उसे 'चाकियां का बखत' कहकर संबोधित किया। भोर के समय को यदि 'मुरगा बोलण का बखत' कहा तो आधी रात को 'गाद्दड़ा बोलण का बखत' कहकर पुकारा। 'पीली पाट्यां पाच्छै'

(पौ फटने के बाद) हरकती (सुस्त) आदमी सोकर उठते हैं, हमारे बडेरे सदैव मुर्गे की बांग से पहले जग जाते थे। स्त्री हो अथवा पुरुष आंख खुलते ही सर्वप्रथम धरती चुचकारते थे, तदुपरांत राम का नाम लेते थे और बिछोने समेटकर रखते थे। इसके बाद पशुओं का गोबर संगवाकर फारिग होने (शौचनिवृति) के लिए बस्ती/गांव से काफी दूर जाते थे। सूर्य उगने के बाद शौच जाने को पाप समझते थे। शौच के लिए जाते तो नीम अथवा कीकर की दातुन करना न भूलते। घर लौटकर पुरुष पशुओं को न्यार-फूस (सानी-पानी) खिलाते। फिर इतमीनान में बैठकर हुक्का पीते, लेकिन भरने से पूर्व उसे ताजा जरूर करते। इसके बाद गाय/भैंस की पीठ थपथपाकर धार-डोकी (पशुओं का दूध दूहना) का काम निबटाते। डोके चुवकते (दूध निकालते) वक्त कांधे गाभरुओं (उभरती उम्र के युवकों) को धार अवश्य देते। दूध पीतल की बाल्टी में दुहते और कपड़े से ढककर उसे तत्काल घर पहुंचाते। पुरुष घेर (पशु बांधने का स्थान) अथवा पो (घर के प्रवेश द्वार के साथ बना कमरा) में सोते थे, जबकि महिलाओं का शयन घर में होता था। बैठक से दूध ले जाने का काम बडेरी महिलाएं भी कर लिया करती। दूध दुहने के बाद बुजुर्ग सन-पटसन के पौधे से रेशा अलग करने के लिए पौड़ चेड़ते और रूई व बिनौलों को अलग-अलग करने के लिए चरखी की मदद से कपास लोढते। हलवाहे बैलगाड़ी में राछ भान (खेती के उपकरण) जचाकर खेतों की ओर निकलते। तब जाकर कहीं दिन निकलता।

महिलाएं भी पुरुषों की भांति ऊषा के उदय होने के पूर्व घर के कामों में जुट जाती थी। सर्वप्रथम वे दीया-बाती करती फिर चक्की पीसती। कमेरी महिलाएं प्रात: चार बजे के करीब उठकर चाक्की झो दिया करती और मुंह-अंधेरे ही चूल्ह (आटा पीसने की हाथ वाली चक्की का मिट्टी से बना वह गोल गहरा भाग, जिसमें अन्न आदि पिस कर इक्ट्ठा होता है) कुछ इलाके में इसे गरंड भी कहते हैं, भर दिया करती, जिसमें कम से कम धड़ी-छह सेर आटा आता है। चक्की के बाद बिलौणी पर चाखड़ा (बिलौने मुंह पर ढका जाने वाला काष्ठ का चक्राकार ढक्कन) रखकर वे दूध बिलोने बैठती तथा पांच-सात गाय-भैंसो के दूध को स्यात घड़ी (थोड़े से समय) में बिलो डालती। बिलौणी से घी निकालने के बाद कुंई अथवा कुंए से पांच-सात पैहंडे (बड़ा मटका) पानी के भरकर लाती। इसके बाद घर-आंगन बुहारकर गोबर-कूड़ा करती। गितवाड़ (उपले थापने एवं कुरड़ी डालने का स्थान) में गोबर की हेल (टोकरी) भरकर ले जाती और गोबर के उपले थापती। घर लौटकर ताजे गोबर और पीली मिट्टी से चूल्हा लीपती। तब कहीं पौ फटती। फिर भोजन बनाती।

उन दिनों संयुक्त परिवार प्रथा जीवित थी। एक-एक कुटुंब में साठ-साठ, सत्तर-सत्तर व्यक्ति होते थे। बाज्जी-बाज्जी बीरबान्नी को सुबह-शाम एक-एक झाल्ला रोटी पोणी पड़ती थी। रोटी पकाने के उपरांत महिलाएं हाळी का जवारा लेकर खेत में जाती और वहां पूरे दिन काले बैल की भांति कमाती। वह जमाना ही दूसरा था। न पुरुष काम से थकते थे न औरतें। पुरुष आदि जोरावर थे तो महिलाएं भी हट्टी-कट्टी थीं। उनकी कमेर के क्या कहने। घर-खेत पर काम करने के दौरान हाथों और पांवों में पड़ने वाले छालों और गांठों की वे रत्ती भर परवाह न करते थे। उनमें मानसिक और शारीरिक कष्टों को सहन करने की अपार क्षमता थी। दिनभर हाड़तोड़ मेहनत करने पर भी वे रोटी-राबड़ी और साग-सत्तू चाव से खाया करते।

उन दिनों संयुक्त परिवार प्रथा जीवित थी। एक-एक कुटुंब में साठ-साठ, सत्तर-सत्तर व्यक्ति होते थे। बाज्जी-बाज्जी (किसी-किसी) बीरबान्नी (औरत) को सुबह-शाम एक-एक झाल्ला (बड़ा टोकरा) रोटी पोणी पड़ती थी। रोटी पकाने के उपरांत महिलाएं हाळी (हल जोतने वाला) का जवारा (हाळी और बैलों के लिए दोपहर का आहार) लेकर खेत में जाती और वहां पूरे दिन काले बैल की भांति कमाती। वह जमाना ही दूसरा था। न पुरुष काम से थकते थे न औरतें। पुरुष आदि जोरावर थे तो महिलाएं भी हट्टी-कट्टी थीं। उनकी कमेर के क्या कहने। घर-खेत पर काम करने के दौरान हाथों और पांवों में पड़ने वाले छालों और गांठों की वे रत्ती भर परवाह न करते थे। उनमें मानसिक और शारीरिक कष्टों को सहन करने की अपार क्षमता थी। दिनभर हाड़तोड़ मेहनत करने पर भी वे रोटी-राबड़ी और साग-सत्तू चाव से खाया करते। उनकी करामात उन्हीं के पास थी। धन उन्हें बुरा नहीं लगता था, पर उनके धन की परिभाषा निराली थी। वे अन्न को ही सबसे बड़ा धन मानते थे। कहावत भी है-

अन्न धन सो अनेक धन, सोनों-चांदी आधो धन।

सोने-चांदी की जिस चमक के पीछे दुनिया भटक रही है। भोले किसानों की निगाह में वह आधा धन है। अन्न रूपी धन को पाने की खातिर बुजुर्ग दिन-रात मिट्टी में देह खपाते थे। परिश्रम किए बगैर धरती धन नहीं देती। कहा है-

टपकै एड़ी तलक पसीना, तब निपजै माटी में सोना।

किसान की समता कौन कर सकता है? वह सच्चा अन्नदाता है। समूचा संसार उसकी मेहनत पर टिका हुआ है। पशु-पखेरू, जीव-जंतु, कीट-पतंग, देव-दानव और नर-नारायण सब किसान के श्रम पर ही जीवित है। पकी हुई फसल को देखकर किसान की छात्ती गर्व से फूल उठती है। खेत में पक्षियों को मंडराते देखकर वह ऊंचे स्वर में उन्हें आमंत्रण देता है-

'राम जी की चिड़िया, रामजी का खेत
खा लो चिड़िया, भर-भर पेट'

किसान की नजर में धन, धरती और फसल का नियंता भगवान् है। इसवर की चाही बड्डी (जो भगवान करता है ठीक करता है), आत्मा सो परमात्मा (पिंड में ब्रह्मांड का वास), करणियां का राम हिमांती (भगवान परिश्रमी की सहायता करता है), राम के घर देर सै अंधेर नहीं (अंततोगत्वा न्याय मिलता ही है), भगतां का राम रुखाळा (भगवान ही भक्तों के सहायक हैं) और आंद्धयां की माक्खी राम उड़ावै (निर्बलों का सहारा भगवान है) सरीखी हरियाणवी कहावतों में इस अंचल के किसानों की आत्मा साफ झलकती है। भारत के अन्य अंचलों की भांति हरियाणवी किसान भी परमात्मा की दया-मया से अन्न उपजाता है और सबके घरों में

चक्की चलवाता है। पर स्वयं किसान की दशा सदैव दयनीय रही है। खेती करते हुए अकाल, बाढ़ और मौसम के बदले मिजाज के कारण कई बार किसान का घर-बार तक बिक जाता है, तब भी वह अपने धर्म पर अडिग रहता है। वह सदियों से धरती की धूल को माथे पर चढ़ाता आया है और न जाने कब तक चढ़ाता रहेगा। केंद्र और राज्य सरकारों ने किसान को झूठे आश्वासन के सिवाए कभी कुछ नहीं दिया। पर किसान रुखा-सूखा खाकर भी दिन-रात अपने-आपको मिट्टी में मिलाता है। इतना बूता और किसी में कहां?

किसान बारह महीनों पसीना बहाता है और वर्षा, घाम, शीत आदि की चिंता न करके धरती में सोना उगाता है। हमारे बाप-दादाओं का जीवन-सूत्र वही था कि हमने जो कुछ कमाया है, वह धरती माता से ही कमाया है। उनके जीवन में चैत से फागुन तक अनोखी गहमागहमी (उन्माद का वातावरण) रहती थीं। वे अपनी कमाई में सबका सांझा (हिस्सा) समझते थे। निरालस्यता उनका अभ्यास और कर्मठता उनका जीवन था। क्या बालक, क्या युवा और क्या वृद्ध, सबके सब दिन निकलने से पहले खेतों में पहुंच जाते थे। छोटे बालक भी स्कूल में जाने से पहले सुबह-सुबह पशुओं की खातिर घास के गाट्ठड़ लाया करते। किसान लोग गोस्टी (छोटा उपला), आग और होक्टी (छोटा हुक्का) लेकर खेत की राह पकड़ते थे। वे कंधे पर हल रखकर बैलों को आगे-आगे हांकते हुए चलते थे। आग और हुक्का खेत में लाजिमी तौर पर रखा करते और इनमें सबका सीर (हिस्सा) समझते थे। पाळी (पशुपालक) एक-दो पशु के पीछे कदापि न चलते थे, पशुओं के टोल (समूह) रखते थे। गोधन को सच्ची निधि समझते थे। गोवंश के गोबर की खाद खेतों में डालते थे। सांड को बिना कुछ खिलाए-पिलाए घर के द्वार से न जाने देते थे। सांड अथवा झोटा खेतों में खड़ी फसल को खा रहा होता, तो उसे खदेड़ते नहीं थे। बुजुर्ग, गरीब होते हुए भी संतोषी थे। फटे-पुराने और थेगली (फटे वस्त्र पर लगाया गया पैबंद) वाले कपड़ों में भी वे स्वर्गिक आनंद भोगते थे। ये बारहों महीने प्रकृति की गोद में सोते-जागते थे।

चैत (अप्रैल) में लामणी (पकी फसल की कटाई) करते। साढी (आषाढ़ी फसल) की लामणी पहले आधे चैत शुरू हो जाया करती। लोग बाग-फाग खेलने के बाद इस कार्य में जुट जाया करते। इन दिनों वे हरे छोलिए (हरा चना) खाते व चनों के होळ (आग में भूनी हुई हरे चने की टाट) बनाकर झाकरे (बड़ा मटका) में भर लेते। दो-तीन माह तक खाते। स्त्रियां तपती धूप में शल्या (फसल कटाई के बाद खेत में बिखरा रहने वाला अन्न) चुगकर नाज बटोरती।

वैशाख (मई) में साढ़ी फसल की कटाई, ढुलाई व कढ़ाई का काम निपटाते। कुएं चिणते, प्याऊ बिठाते, खाट-पलंग भरते। स्त्रियां भी हर कार्य में हाथ बटाती। पनघट वाले कुओं पर पनिहारियों की भीड़ लगनी शुरू हो जाती, जो सांझे तक चरम पर पहुंच जाती। पीपल की बरबंटी (पीपल का फल) एवं बड़ (वट) के बरबंटे (वट वृक्ष का फल) इन दिनों स्त्रियां चाव से खाती।

जेठ (जून) में किसान पछेती (विलंब से बोई गई) साढू (आषाढ़ी फसल) की लामणी करते उसे संगवाकर घर लाते। ज्वार-बाजरे की अगेत्ती (समय से पूर्व बोई गई) बुवाई की जाती। जोहड़ों में जूल (दस हाथ वर्गाकार तथा एक हाथ गहरे माप का घनफल) काढ़े जाते। स्त्रियां मंडेर (छत्त से ऊपर की दीवार) लीपती व हारे-चूल्हे घालती। खेत में नुला-पुता (नलाई) काम करती। गूलर पककर लाल सुर्ख हो जाती। झींज (जांट/जांट पर लगने वाली लंबी फली) भी इसी महीने पकती। ग्रामीण इन स्वादिष्ट फलों को चटखारे ले-लेकर खाते। पीचू (ज्येष्ठ में करील पर लगने वाला फल) का निराला स्वाद भी लोग इन्हीं दिनों चखते।

आषाढ़ (जुलाई) के महीने में किसान मींह (वर्षा) की बाट (प्रतीक्षा) जोहने लगते थे। उनकी मान्यता थी कि आधा आषाढ़ बीतने पर तो राम, बैरी (दुश्मन) के यहां भी बरसता है। बादलों को रिझाने के लिए मोर पिहू-पिहू करके आसमान सिर पर उठा लेते। बारिश आने से पूर्व बिटोड़ों (उपलों को क्रम से लगाकर चिना गया आयत या शंकू के आकार का ढेर) पर छान/छप्पर डाल दी जाती। बाजरे की बुवाई के समय सभी घरों में सीरा (बिना घी का हलुआ) जरूर बनाया जाता। लिसोड़ा (पीले-से रंग का लसलसा फल) भी इसी माह पकता।

साम्मण (अगस्त) की झड़ी (लगातार वर्षा) लगते ही धरती का नूर सवाया जो जाता था। इस महीने सामणू (सावनी फसल) की बुवाई करने के बाद ग्रामीण पुरुष नए वृक्ष लगाने का काम किया करते। सावन में हरियाणा के स्त्री-पुरुष गंगा-स्नान के लिए हरिद्वार जाना न भूलते थे। स्त्रियां शिवरात्रि का व्रत भी लाजिमी तौर पर रखती थीं। 'साम्मण-भादों के घाम में, जोग्गी बणज्या जाट' (सावन-भादों की खेती के समय किसान का रूप कुरुप हो जाता है) कहावत बुजुर्गां पर खरी उतरती थी। श्रावण शुक्ल तीज को त्यौहार बेहद निराले अंदाज में मनाया जाता था। एक कहावत से इसकी पुष्टि होती है-

साम्मण पहली पंचमी, जै चिमकैगी बीज।
तूं तो गावै डामचा, मैं खेल्हूंगी तीज।।

अर्थात-सावन मास की प्रथम पंचमी को यदि बिजली चमकती है तो शर्तियां अच्छी बारिश होती। ऐसे में स्त्री अपने पति को संबोधित करते हुए कहती है कि तुम तो फसल की रखवाली के लिए डामचा (मचान) डालोगे और मैं तीज मनाऊंगी। सावन में स्त्रियां डाभ (दुर्वा) की डालियां काटकर उनसे मांजण (बुहारी) तैयार किया करती। इस माह गांव-देहात में सरसों के तेल के पकवान बनाए-खाए जाते थे। वैसे सुहाळी (सख्त आटे की मीठ्ठी एवं चरचरी पूरी), वैसे गुलगुले (मीठे पकौड़े), पूड़े (पुए) एवं शक्करपारे (आटे को तलकर बनाए गए छोटे चोकोर टुकड़े) अब लाख प्रयत्न करने पर नहीं बन सकते। न अब वैसा आटा है, न वह गाढ़ा तेल।

भादों (सितम्बर) में बुजुर्ग पशुओं की सेवा किया करते। उनके चीचड़ (गाय-भैंस की ओहड़ी में लगने वाला रंगा का कई पैरों वाला खटमलनूमा जीव) तोड़ते, घी पिलाते और उनकी मालिश करते। पुरुष बाजरा रुखालते एवं स्त्रियां बाड़ी (कपास) चुगती। वृद्ध व्यक्ति बाण (रस्सी) बांटते। स्त्रियां, घर-आंगन की लिपाई करती। गांव-गांव कुश्तियों के दंगल होते। मल्ल जोर-आजमाइश करते।

आसौज (अक्तूबर) में हाळी (हल जोतने वाला) जौ-चणे की बिजाई करते। बाजरे की लामणी करते, उसके सूए (शंकू आकार में खड़ी की गई पूलियों का समूह) बनाकर सुखाते। सूखने के बाद उसको चूंटते। तिपाये (तीन पैरों की चौकी) की मदद से ईख बांधते। ये तमाम कार्य स्त्री-पुरुष मिलकर करते। इस महीने कपास

का जोर होता था। स्त्रियां सुबह-सुबह घर से निकलती और शाम को पांड (गट्ठड़) बांधकर लौटती। बाज्जी-बाज्जी (कोई-कोई) औरत पूरे दिन में दस धड़ी तक (एक धड़ी पांच सेर भार होता है) कपास चुग लेती है। अश्विन के प्रथम नवरात्र के दिन गोबर तथा मिट्टी के सितारों की सहायता से स्त्री के रूप में दीवार पर सांझी (संध्या की देवी) चीती जाती। इसे मिट्टी के रंगीन आभूषणों से सजाया जाता। रात के समय स्त्रियां सांझी के गीत गाती तथा भोग लगाकर इसकी पूजा करती। दशहरे की रात्रि को बंगाल की दुर्गा के समान इसे जल में विसर्जित कर दिया जाता। दशहरे पर सब शक्कर-चावल बनाते।

कार्तिक (नवंबर) में खेत की बहाई (जुताई) करके साढू की बुवाई (बिजाई) की जाती है। साढू की बुवाई से निपटकर स्त्री-पुरुष गंगा-स्नान के लिए गढ़ मुक्तेश्वर (उ.प्र.) जाया करते। इससे पूर्व बीमारियों को दूर किया करते। झड़बेरी के लाल बेर भी कार्तिक में पका करते। ग्रामीण स्त्रियां इन बेरों की झोळी (वस्त्र को मोड़ कर बनाई गई थैली) भर-भरकर लाया करती। बुजुर्ग लोग पौड़ चेड़ते एवं पशुओं की खातिर पाल्हा (झाड़ के सूखे पत्ते) झाड़कर लाते। इस चारे को पशु चाव से खाया करते।

मंगसिर (दिसंबर) में कोल्हू (गन्ने का रस निकालने का यंत्र) जुड़ जाते जो फागुन तक देहमार (निरंतर) चलते। किसानों की सहयोगी जातियों के पोह-बारा हो जाते। झोका कोल्हू में ईंधन झोंकता। जोटियां जोट भरता। गुठिया कोल्हू में गन्ने लगाता। पकावा गुड़ पकाता। चर्मकार मांजी बनाता। लुहार कोल्हू को सुचारू रखता। बढ़ई लकड़ी की पाट डालता। झीमर पानी ढोता। जोगी सारंगी पर किस्से सुनाते। और भी न जाने क्या-क्या होता। तात्ते (ताजा, गर्म) गुड़ की महक गांव के चारों ओर फैल जाती। कोल्हू चलाना सरल न था। उस काम में लाख जोखिम थे। परंतु बुजुर्ग न जाने किस मिट्टी के बने थे। वे संकट की घड़ी में और अधिक मुस्तैदी से काम करते थे। स्त्रियां मंगसिर में सुरातिया (8-10 औरतों के द्वारा पूरी रात चरखा कातने का संकल्प लिया जाना) और धूपिया (सारा दिन चरखा कातने की प्रतिज्ञा) लेती। कमेरी औरत रातभर में सेर सवा सेर मोटा सूत आसानी से कात लिया करती। कताई का यह काम दीये अथवा ढिबरी की रोशनी में किया जाता था। चरखा चलता करने के बाद उसे रोकने की मनाही थी। सौड़ भरवाने और उनमें धागे डालने का काम भी इसी माह निपटाया जाता। स्त्रियां बथुआ, मेथी और सरसों के हरे साग सुखा-सुखाकर झाकरों (बड़े मटकों) में भर लेती ताकि गर्मियों में साग की किल्लत न हो। बुजुर्ग रात-रात भर रहट और चड़स चलाकर खेतों को सींचते।

पोह (जनवरी) का पाळा (ठंड के कारण खुले में पानी जम जाना) पड़ता तो भी बुजुर्ग दिन-रात का भेद भूलकर खेतों में जुटे रहते। कहावत है कि 'पोह मैं सींह के बी कान हल्लै।' (पौष में शेर के भी कान हिलते हैं।) उन दिनों का जाड़ा बड़ा मारू होता था, लेकिन हमारे हलधरों ने उसकी रत्तीभर परवाह नहीं की। वे एक लंगोटी में जाड़ा गुजार देते थे। इस महीने किसान फसलों और पशुओं को पाळे से बचाने के जुगत करते। फूंस जलाकर आग तापते। छिकमां (जी चाहे उतना) दूध पीते। गुड़ के उबलते कड़ाहों में आलू एवं गाजर भूनकर खाते। स्त्रियां चरखा परंधती (चलाती)। संकरांत (मकर संक्रांति) के दिन तमाम ग्रामीण चंडाल बाल जरूर धोते (निश्चित रूप से स्नान जरूर करते)। नई बहुएं बडेरियों और बड़ों की मान-तान (आदर-सम्मान) करती। शुद्ध घी का हलवा बनता।

माह (फरवरी) में जाड़ा कम हो जाता। इससे जुड़ी एक कहावत गांवों में सदियों से चली आती है।

मंगसिर जाड्डा ढंगसिर।
पोह जाड्डे का छोह।
माह जाड्डै नै खा।

अर्थात-मंगसिर में जाड़ा शुरु होता है, पौष में यौवन पर और माघ में खत्म हो जाता है। माह में गुड़ पकाने पर जोर रहता है। किसान राब (औटाकर गाढ़ा किया हुआ गन्ने का रस) डालकर खांड (सफेद रंग का बूरा) निकालते। खेत-क्यार के बाकी धंधे साथ-साथ चलते रहते।

तीस-बत्तीस साल पहले तक हरियाणा के गांवों में 'घोडयां राज, बुलधां नाज' एवं 'जिसने दूध बेच दिया, समझो पूत बेच दिया' सरीखी कहावतें ज्यों की त्यों चरितार्थ हुआ करती थी। तब, घोड़े समृद्धि के और बैल अन्न आधिक्य के प्रतीक समझे जाते थे। बडेरी स्त्रियां 'दुद्धा नहाओ, पुत्तां फळो' कहकर नई बहुओं को आशीष दिया करती। घर आए मेहमानों की आवभगत दूध से की जाती थी। आगंतुक को दूध का बड़ा लोटा अथवा ईढ़ी वाला बखोरा भरकर दिया जाता था। घी-बूरा के खाळ बहा करते।

बाजरा निकालते व धान झाड़ते। नए शस्य से लक्ष्मी पूजन करते। हर्ष विभोर होकर दीवाली के लिए जलाते एवं इन शब्दों में ईश्वर का आभार प्रकट करते समय दीवाली कार्तिक धान, सुख राक्खै भगवान। अर्थात् अगली दीवाली तक परमात्म सुखी रखें। कुंवारी कन्याएं एवं गभरेटी छोहरी (युवती) इस माह सूर्यादय से पूर्व तालाबों में स्नान करना न भूलती। स्नानोपरांत पथवारी माता के भक्तिपूर्ण गीत गाने की परंपरा भी सर्वत्र थी। दे-ऊठणी ग्यास (देवोत्थामी एकादशी जो कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन, रात के समय मनाई जाती है) के बाद ब्याह-वाणे (शादी-विवाह) शुरू हो जाते। इस माह खेतों में कातकू (कार्तिक मास में पकने वाले) कचरों और कचरियों की निराली महक उठा करती। इस महक के वशीभूत दूर-दूर के गीदड़ कचरे खाने के लिए खेतों में एकत्र हो जाया करते। वे पीली कचरी और वे कातकू कचरे देह की अनेक

फागुन (मार्च) में फाग खेलकर चने की कटाई शुरू करते। सरसों भी इसी माह काटी और झाड़ी जाती। गाभरु छोहरे (जवान युवक) आळ (कुश्ती का अभ्यास) करते। बुजुर्ग उन्हें घी-दूध पिलाते। गांव-गांव बैलों की दौड़ होती। स्त्रियां बिटोड़ों की मंगरी (दो सिरों के बीच की जगह) भरतीं। पुरुष नेही (भूमि में गड़ी चारा काटने की लकड़ी) के गंडासे से सानी काटते। किसानों के साथ-साथ छत्तीस-जात के लोग बारहों महीने अपना-अपना धंधा पुगाया करते। सुनार, कुम्हार, शिल्पकार, वास्तुकार, मूर्तिकार, दस्तकार, रथकार, चर्मकार, कर्मा, बढ़ई, जुलाहा, ठठेरा, दर्जी, रंगरेज, लीलगर, धोबी, धुनिया, नाई, तेली, झीमर आदि सब ऋतुओं के अनुकूल अपने-अपने काम धंधों में व्यस्त रहा करते। बनिये बणज-बट्टे का

काम किया करते। कहावत भी है-'बणज करैगा बाणिया, ओर करैंधे रीस।' (व्यापार के लिए जन्मजात व्यापारिक गुण जरूरी है)।

तीस-बत्तीस साल पहले तक हरियाणा के गांवों में 'घोडयां राज, बुलधां नाज' एवं 'जिसने दूध बेच दिया, समझो पूत बेच दिया' सरीखी कहावतें ज्यों की त्यों चरितार्थ हुआ करती थी। तब, घोड़े समृद्धि के और बैल अन्न आधिक्य के प्रतीक समझे जाते थे। बडेरी स्त्रियां 'दुद्धा नहाओ, पुत्तां फळो' कहकर नई बहुओं को आशीष दिया करती। दूध बेचना पाप था। घर आए मेहमानों की आवभगत दूध से की जाती थी। आगंतुक को दूध का बड़ा लोटा अथवा ईढ़ी वाला बखोरा भरकर दिया जाता था। घी-बूरा के खाळ (पानी का नाला) बहा करते। विवाह-शादी के अवसर पर सर्वत्र देसी घी बरता जाता था। डालडा कोई जानता तक न था। जच्चा का गूंद (गोंद मिली पंजीरी जो जच्चा को खिलाते हैं) धड़ी (पांच सेर) घी से कम का न डाला जाता था। जिन दिनों कसाह्ले (कष्ट) का काम होता, उन दिनों एक-एक धड़ी घी लोग बैलों को पिला दिया करते। सामान्य घरों में भी घी के बारे (मिट्टी का बना घी डालने का बर्तन) भरे रहा करते। हाळी की रोटियां बेह्ले में रखकर इतना घी डाळा जाया करता कि वे डूब जाती थी। साथ में अधबिलोई दही होती थी। वे ठाठ (आनंद) अब कहां?

खान-पान की तरह पहनावा भी सादा था। पुरुष चमरोधा जूता, लट्ठे की धोती, चोसी का कुरता, सूती खिंडका (पगड़ी) एवं चादरा (बड़ी चद्दर) धारण करते थे। तमाम वस्त्र सफेद रंग के होते थे। स्त्रियां घाघरा, आंगी, ओढ़नी एवं जूती पहनती थी। इसके अलावा वे कुछेक आभूषण पहना करती। लाज रखना और उसे निभाना जानती थीं। पुरुष भी अड़बंध (धोती का लपेटा जो कमर पर बांधा जाता है।) की गांठ ढीली न होने देते थे। वे 'घोड़े का तंग अर आदमी अड़बंध' (घोड़े का तंग और आदमी का कटिवस्त्र कसकर बंधा होना चाहिए) नामक कहावत पर पूरा अमल करते थे। इसीलिए उनकी लाठी की मार बड़े-बड़े सांड-भैंसे भी नहीं सह सकते थे। वे बात के पक्के और जबान के धनी थे। दिन के समय आपस में कितना ही लड़ते-झगड़ते, लेकिन शाम को एक साथ बैठकर हुक्का पीते थे। वे कहा करते-

बैठणा तै भाइयां का चाहे बैर क्यूं ना हो,
चालणा तै राह का चाहे फेर क्यूं न हो,
पीवणा तै दूध का चाहे सेर क्यूं नां हो।।

भ्रातृ-प्रेम, रास्ते का गमन तथा दुग्ध-पान का अपना ही महत्व है। हरियाणा के बुजुर्गों ने चार प्रकार के अमृत गिनाये हैं, जो इस प्रकार है-

एक इमरत बुड्ढया की कही,
एक इमरत दूध अर दही।
एक इमरत भाइया का साथ,
एक इमरत माता का हाथ।।

बुजुर्गों का आदेश, दूध-दही का भोजन, भाइयों का संग और मां का हाथ अमृत तुल्य है। वे उकात (सामर्थ्य) देखकर काम करते थे और 'आप मरयां सुरग दीक्खै' (अनुभव के बिना ज्ञान अधूरा है) में यकीन रखते थे। 'अंतर गाज्जे तै मंजर बाज्जै' (आंतरिक उत्साह के बिना कार्य सिद्धि नहीं होती) उनका मूल मंत्र था। परंतु अब उन जैसे ठसके के व्यक्ति नहीं रहे। उनका-सा धैर्य भी कहीं दिखाई नहीं पड़ता।

भ्रातृ-प्रेम, रास्ते का गमन तथा दुग्ध-पान का अपना ही महत्व है। हरियाणा के बुजुर्गों ने चार प्रकार के अमृत गिनाये हैं, जो इस प्रकार है-

एक इमरत बुड्ढया की कही,
एक इमरत दूध अर दही।
एक इमरत भाइया का साथ,
एक इमरत माता का हाथ।।

आजकल सर्वत्र 'आज मेरी मंगणी काल्ह मेरा ब्याह' (उतावलेपन की स्थिति) वाली स्थिति है। मशीनी क्रांति ने ग्राम्यांचलों में भारी उलट-फेर कर दिया है। छत्तीस जाति के तमाम काम-धंधे नष्ट हो गए हैं। खेती-किसानी के पारंपरिक साधन भी अब कहीं नहीं रहे। अब बैलों की घंटियों की जगह ट्रैक्टरों की कर्कश घड़घड़ाहट कानों के परदे फाड़ती है। गोबर से लिपे पुते कच्चे घरों के स्थान पर कंकरीट के एक जैसे मकान खड़े हो गए हैं। पुरानी हवेलियां खंडहर में तबदील हो गई हैं। मंदिरों में शंख की जगह लाउड-स्पीकर बजता है। चौपालों में आल्हा की टेक की बजाए ताश खेलने वालों की गालियां सुनाई पड़ती हैं। गांवों में इंसान कम और जातियां ज्यादा हो गई हैं। पहले कण-कण में भगवान विराजते थे, अब सर्वत्र सियासत हावी है। मारधाड़, अपराध और खून-कत्ल दिन-दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ रहे हैं। बीड़ी-सिगरेट, अंडा, शराब व मीट गटकने की होड़-सी लग गई है। मोपेड, मोटर साइकिल, मोबाइल, सीडी प्लेयर, डेक, टेपरिकार्डर, टेलीविजन, फिल्मी गानों और डीजे (म्यूजिक सिस्टम) के बिना ग्रामीण युवा एक पल जीवित नहीं रह सकते। पारंपरिक दातुनों की जगह टूथपेस्ट और दूध पावडरों ने ले ली है। बीजणे का स्थान कूलर व ए.सी. ने ले लिया है। मटके की बजाए फ्रिज का ठंडा पानी लोगों को ज्यादा सुहाता है। बाजारू वस्तुओं ने ग्रामीण संरचना व संस्कृति को बुरी तरह बिगाड़ दिया है। संयुक्त परिवार प्रथा टूटने के कारण सामूहिक परिवारों का विघटन हो गया है।

शिक्षा, रोजगार और चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में गांववासी शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। 'उत्तम खेती मद्धम बान, निखद चाकरी भीख निदान'। वाली कहावत उलटी हो गई है। अब खेती की बजाए नौकरी उत्तम हो गई है। हरियाणवी अंचल के गांवों में खेती का तमाम काम प्रवासी मजदूरों के कंधों पर आन टिका है। पुराने हाळी-पाळियों की स्मृति मन में एक अजीब-सी कचोट पैदा करती है। गांवों की गलियां, सड़क, स्कूल सब विकास से कोसों दूर हैं। बड़ी-बड़ी गाड़ियों के काफिलों में घूमने वाले एवं भाषणों के जरिये विकास के झूठे दावे करने वाले नेताओं ने गांवों का सत्यानाश कर डाला है। मूल्यों से हीन नेताओं की कारस्तानी (चालबाजी) के चलते गांवों और शहरों की जिंदगी में जमीन-आसमान का अंतर हो गया है। इस फर्क को कभी नहीं पाटा जा सकता। वोट के वक्त खीसे निपोरने वाले नेता, काम के वक्त बगले झांकते रहते हैं। किसानों के पास ले-देकर खेती की जमीनें बची थी, अब नेताओं की दाढ़ उसी पर गड़ी है। गांववासियों से कौड़ियों के दाम जमीन खरीदकर राज्य सरकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारी मुनाफे पर बेच रही है। धन्य हैं हरियाणा के नेता और धन्य हैं प्रदेश के किसान जो खेती की जमीनों को बिकती देखकर भी तमाशबीन बने हुए हैं।

अपने अतीत को कुचलकर गांव

आधुनिकता की दौड़ में जितना आगे बढ़ रहे हैं, उतना ही अधिक महामारियों से ग्रस्त हो रहे हैं। ग्रामीण स्थापत्य के बिगड़ते स्वरूप और भुलाई जा रही धरोहर की किसी को रत्ती भर फिक्र नहीं है। यदि युवा पीढ़ी को यह नहीं बताया गया कि गांवों की विरासत क्या है और हमारी पहचान के लिए क्यों जरूरी है? तो हम किस तरह पुरखों की विरासत को संजोकर भावी पीढ़ियों को सौंपेंगे। नई पौध को कौन बताएगा कि भारतमाता कभी ग्रामवासिनी थी। आधुनिकता के पदार्पण से गांवों की तमाम निधियां धीरे-धीरे लुप्त हो रही हैं, जबकि जरूरत उन्हें सहेजने की है। मिसाल के तौर पर गांवों की पुरानी हवेलियां और चौपालों में प्राकृतिक वातानुकूलन की व्यवस्था है। किंतु आजकल के इंजीनियरों की देखरेख में बने भवनों में वह पारंपरिक तकनीक नहीं है।

जबसे उपभोक्ता क्रांति ने गांवों में दस्तक दी है तब से फ्रिज, वाशिंग मशीन, रसोई गैस, हीटर और मिक्सी हरियाणा के हर घर की जरूरत बन गई है। बिलौणी में दूध बिलौने वाली रई (कैर की जड़ से बनी चार फूल वाली मथानी) का नाम नव-वधुएं नहीं जानती। वे बिजली का स्विच दबाकर नए उपकरणों की मदद से मक्खन निकालती हैं। बिजली न हो तो दूध रखा रहता है और वह अक्सर नहीं होती। रोटी भी अब मिट्टी के चूल्हे की बजाए गैस के चूल्हे पर बनती है। मिट्टी की बरोळी (छोटी हंडिया) में हारा (मिट्टी से बनी अंगारधानी) लगाकर रांधा (पकाना) जाने वाला साग अब कुकर में बनता है जो दूध सदियों से कढ़ावणी (दूध उबालने के लिए बनी मिट्टी की हंडिया) के जरिये हारे में गर्म होता आया था, वह अब पतीले में गैस पर उबाला जाता है। गैस ने भोजन की गंध और गुणवत्ता दोनों छीन ली हैं। छ्योंक (छौंकने की क्रिया) के लिए चीघसा (मिट्टी का छोटा दीया) नहीं बरता जाता, अब फ्राईपेन में तड़का लगता है। छाछ भी झाब-झाबरोली (मिट्टी की छोटी मटकी) की बजाए स्टील के डोलू में डाला जाता है।

सब कुछ बदल गया। न वे खाऊ (अधिक खाने वाला) लोग हैं न वह देसी खाज्जा (भोजन) है। हाथी जितना मलीद्दा (अधिक घी का चूरमा) एक खड़ (बार) में खाने वाले लोग इन्हीं गांवों में देखे-सुने गए हैं। हाथी एक बार में सवा मण (पचास किलो) मलीद्दा खाता है। हमारे बाप-दादा एक बार में सेर घी पीकर उसे असानी से पचा लिया करते थे। समूचा भैंस का दूध एक बार में पीने वाले भी बहुत हुए हैं। इसीलिए बुजुर्गों का डील-डौल बड़ा होता था। मन डेढ़ मन आम एक-एक व्यक्ति चूस लेता था। उनका बल-पौरुष भी अप्रतिम था। अठारह-अठारह घड़ी की चकली और भारी-भरकम मुगदर (कसरत के समय उठाया जाने वाला भार) वे हंसी-हंसी खेल में उठा लिया करते।

उन दिनों सब गोबर की खाद बरतते थे। देसी बीज होता था, परन्तु अब रासायनिक उर्वरकों और जहरीले रसायनों के अत्यधिक एवं असंतुलित प्रयोग के कारण जमीन की उर्वरा शक्ति का विनाश हो गया है। अन्न, अन्न न रहकर जहर हो गया है। अन्न प्रदूषण से शरीर, जल प्रदूषण से प्राण, भू-प्रदूषण से धर्म, वायु प्रदूषण से धैर्य और पर्यावरण प्रदूषण से धारणा की शक्ति नष्ट हो गई है। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की वर्तमान नीति के कारण आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और प्रकृति भयंकर रूप से प्रदूषित हो गया है। रही-सही कमी प्राकृतिक आपदाओं और वैश्वीकरण की चुनौतियों ने पूरी कर दी है। बड़ी जोत वाले कुछेक धनी किसानों को छोड़कर ज्यादातर किसान फटेहाल और लाचार हैं। कभी सूखा, कभी ओळा, कभी आंधी, कभी कीड़ों का प्रकोप और कभी नकली खाद-बीज। तमाम कहर किसानों पर टूटता है। इन सब कारणों से किसान की रीढ़ टूट गई है। न यह तीन में रहा, न तेरह में। जो खेती डेढ़ पीढ़ी पूर्व तक किसानों की रग-रग में बसी हुई थी। उससे उनका पूरी तरह मोहभंग हो गया है। खेती सिकुड़ने से गांवों के तालाबों, जलाशयों, कुओं और बावड़ियों का भी बेड़ा गरक हो गया है। इनकी सुध किसान ही लेते थे।

आज भी हरियाणवी अंचल के असंख्य गांव अविद्या से ग्रस्त हैं, संस्कृति से वंचित हैं तथा परावलम्बन से परेशान हैं। चरित्र, नैतिकता, सादगी और सात्विकता का गांवों से लोप हो गया है। शहरों की अच्छाइयों को गांववासियों ने सूंघा तक नहीं, किंतु वहां की बुराइयों को कसकर गले लगा लिया है। कभी शहरी लोग गांववासियों की लल्लो-चप्पो करने को विवश थे, परन्तु आज गांववासी नगरजनों की जूतियां चाट रहे हैं। एक समय था जब गांवों में शस्य की देवी का वास था। शील, सबर, संतोष, सम्पन्नता और शिष्टाचार के साथ-साथ गांवों में सरलता, ईमान और आपसी आत्मीयता भी फूस की झोपड़ी में महलों का-सा सुख था। प्रत्येक दृष्टि से गांव आत्मनिर्भर थे। किसी भी चीज के लिए गांवों को बाहरी जगत का मुंह न ताकना पड़ता था। हल, हंसिया, कुदाल से लेकर बैलगाड़ी तक गांवों में बनती थी। तमाम शिल्पी और कारीगर गांवों में बसते थे। कपड़ा-लत्ता, कड़ी-शहतीर, गुड़-खांड, घी-दूध, खल-बिनौला सब गांवों में मौजूद था। कपास लोढने की चरखी, सूत कातने का चरखा, कपड़ा बुनने का राछ (जुलाहे का औजार), तेल निकालने का कोल्हू, रूई पीनने की तांत (बकरे की अंतड़ी से बनी धागे जैसी वस्तु जिससे तांतिया रूई पीनता है), लोहे के औजार बनाने का आरण, सोने-चांदी के गहने बनाने में काम आने वाला अंगीठा, लकड़ी चीरने का आरा, कपड़ा रंगने के ठप्पे, खांड निकालने की मशीन, कुओं से पानी निकालने का चड़स, खेतों में पानी लगाने का रहट आदि सभी गांवों में बनते थे। गांवों में सैंकड़ों तरह के हुनर थे, अरबों रुपया स्वाह करके जो जहरीली चीनी मिल से निकलती है, उससे लाख दर्जे स्वादिष्ट गुड़ कोल्हुओं में सर्वत्र देखने को मिलता था। खैंची की जो खांड तब बनती थी, वह लाख सिर पटकने पर नहीं बन सकती। कहां चली गई वे खंडसाळ?

शहरी लोगों ने हमारी ठेठ चीजों की नकल करके उनकी प्रतिकृति बाजार में सजाकर रख दी। ग्रामवासी बिना हाथ-पैर हिलाए बनी बनाई चीजें शहर से खरीदने लगे। गांवों के हुनर नष्ट हो गए। प्रतिभा पलायन कर गई। कोल्हू कबाड़ी के यहां चले गए। ऊखल-मूसल की जगह धान-गेहूं कूटने-पीसने के लिए राइस मिल खुल गए। अब कोई स्त्री ऊखल में गेहूं कूटकर लीली (छिलका) नहीं उतारती। न ही हाथ वाली चक्की से आटा पीसती है। मिल के आटे में वह गंध और सोंधी सुवास कहां? देखते-देखते गांवों के तमाम शिल्प व संसाधन नष्ट हो गए। पहले सारी चीजें गांवों से बाहर जाती थीं, अब उससे कई गुना चीजें शहरों से गांव आती हैं। अन्न, वस्त्र, घर तक के लिए गांव वासी पराश्रित हो गए। पारिवारिक सांझेदारी और सामूहिकता के बूते पर जो काम घड़ी-दो घड़ी में निपट जाता है। वह अब प्राय: लटका ही रहता है। बांटकर काम करने की प्रथा बुजुर्गों के

साथ ही रुखसत हो गई।

हमारे बड़े बुजुर्ग प्रकृति के साथ हिल-मिलकर रहते थे। उसका नुक्सान करने की बजाए उसका पोषण करते थे। छोटे से छोटे गांव में आठ-दस बाग एवं पांच-सात बगीचियां जरूर होती थीं। आड़ू, आम, अनार, अमरूद, जामुन, बेर और केला सरीखे फलों की बहुतायत होती थी। हमारे बाप-दादा वनों एवं वृक्षों से अत्यधिक स्नेह करते थे। तब, प्रदेश में कदम-कदम पर भारी भरकम वृक्ष थे। सर्वत्र नीम, बड़, पीपल, इमली, कदंब, कैम, रोहिंडा, केदू, गूलर, लेहसवा, महुआ, ढाक, कचनार, बकायन, जांट, खैर, कीकर, शीशम, शहतूत और जामन आदि के दरखतों की भरमार थीं। कोई घर ऐसा न था जिसके आंगन में कोई न कोई पेड़ न हो। परंतु आज इनमें से ज्यादातर पेड़ लुप्त हो गए हैं। आज की पीढ़ी को वृक्षों से कोई लेना-देना नहीं है। यदि इन उपयोगी वृक्षें को संरक्षण नहीं दिया गया तो वे धरती से सदा सर्वदा के लिए ओझल हो जाएंगे।

वनों और वृक्षों के अभाव में जंगली जानवरों और पक्षियों की शामत आ गई है। गीदड़, लोमड़ी, खरगोश, गोह, झाया, नेवला, सांप, गिलहरी और बिज्जू सरीखे जानवर खेतों में नित्य दिखाई पड़ते थे। किंतु अब वे भी गिनती के रह गए हैं। सैंकड़ों प्रकार के रंग-बिरंगे पक्षी वृक्षों पर चहका करते, परन्तु अब वे भी इक्का-दुक्का देखने में आते हैं, गिद्ध, चील, बाज, उल्लू और नीलकंठ आदि पूरी तरह लुप्त हो गए हैं। कछुआ तक दिखाई नहीं पड़ता। तीसेक वर्ष पूर्व तक एक-एक तालाब में सैंकड़ों कछुए रहते थे। मेंढक भी नदारद हो गया है। काला तीतर देखने को भी नहीं है। खेतों में एक-एक हजार की संख्या में हिरणों के झुंड कलाबाजियां खाते फिरा करते, किंतु आज एक भी मृग बाकी नहीं है।

ऋतु, मौसम, हवा, पानी एवं प्रकृति संबंधी अनगिनत लोकोक्तियां बूढ़ों को जबानी याद थी। एक से एक कथक्कड़ होते थे। दादी-नानियों की कहानियों और गीतों का कहीं अंत न था। हरियाणवी अंचल के किस्सागो यहां की सांस्कृतिक अस्मिता के सधे प्रहरी थे। उनकी किस्सागोई शुरू होने के बाद महीनों चलती थी। हरियाणा के जोगी सारंगी पर वीर रस के जो किस्से सुनाते थे, उन्हें सुनकर भीरू से भीरू व्यक्ति का खून भी नर्तन कर उठता था। अठारह सौ सतावन की जन क्रांति के अनेक गीत गांवों में आज भी गाए जाते हैं। इन गीतों में तत्कालीन समाज की उथल-पुथल एवं पीड़ा साफ सुनायी देती थी। लोकगीतों, किस्सों, कहानियों और किवदंतियों में अतीत की घटनाओं के असंख्य मार्मिक प्रसंग शामिल हैं, जो भुलाए नहीं जा सकते। बुजुर्गों को यह सारी सामग्री कंठस्थ थी। किंतु अब यह निधि विस्मृति के गर्भ में चली गई है। जनपदीय बोलियों के रूप में बहता हुआ यह जन इतिहास या तो नष्ट हो चुका है या नष्ट होने वाला है। इतिहासकारों की अनभिज्ञता और उपेक्षा के कारण लोक कंठ में विद्यमान एवं महामूल्यवान सम्पति का इस्तेमाल नहीं किया गया। अब न साका है, न वांड़ा, न आल्हा है, न बारहमासिया। चैती-कजरी और फगुआ को कोई नहीं गाता। भजनोपदेशकों और सांगियों के दिन भी लद गए हैं। नकलचियों, मखौलियों, मजाकियों और हंसी-ठट्ठा करने वालों की बीमारी को ताड़ लिया करते। कलाओं और विद्याओं का कहीं कोई ओर-छोर न रहा। परन्तु सबकी देखती आंखों से वह जखीरा लुट गया।

पंच परंपरा और पंच परमेश्वर के साथ पंचों का प्याला (हुक्का) भी गांवों से रुठ गया है। प्रदेश के गांवों में आज भी बड़े-बूढ़ों के मुंह से यह कहबत (कहावत) सुनी जा सकती है कि-'पंच जडै परमेश्वर'। अर्थात् जहां पंच है, वहां परमेश्वर है।

आज गांव पूरी तरह दलबंदी और गोलबंदी के शिकार हो गए हैं। गांववासी एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए घटिया से घटिया तरीके बरतते हैं। पंचायती, विधानसभाई और संसदीय चुनावों ने गांवों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक जिंदगी में जहर घोल दिया है। पूर्वजों की शालीन परंपराओं और मान्यताओं को धता बता दिया गया है। बहू-बेटियों की आबरू तक खतरे में पड़ गई है। अपनी कन्याओं को हम माता के गर्भ में मार रहे हैं और घर की खातिर बहू दूसरे राज्यों से खरीदकर ला रहे हैं। दुनिया में इससे बड़ा पाप दूसरा नहीं है।

औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की वर्तमान नीति के कारण आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और प्रकृति भयंकर रूप से प्रदूषित हो गया है। बड़ी जोत वाले कुछेक धनी किसानों को छोड़कर ज्यादातर किसान फटेहाल और लाचार हैं। कभी सूखा, कभी ओला, कभी आंधी, कभी कीड़ों का प्रकोप और कभी नकली खाद-बीज। तमाम कहर किसानों पर टूटता है। इन सब कारणों से किसान की रीढ़ टूट गई है। न यह तीन में रहा, न तेरह में। जो खेती डेढ़ पीढ़ी पूर्व तक किसानों की रग-रग में बसी हुई थी। उससे उनका पूरी तरह मोहभंग हो गया है। खेती सिकुड़ने से गांवों के तालाबों, जलाशयों, कुआं और बावड़ियों का भी बेड़ागरक हो गया है।

दुनिया भी सिमट गई है। बांसुरी, अलगोज्जा (एक तरह की बांसुरी), खड़ताल, दुतारी, झांझ (एक तरह का बाजा), डफ और मंजीरा (एक वाद्य यंत्र) बजाने वाले भी नहीं रहे। कितनी ही लोककलाएं और थीं, किंतु आज सबकी सब मृतप्राय हैं। पोत्थी-पतरा (धार्मिक पुस्तकें) बांचने वाले, टोक (बुरी दृष्टि से देखने का भाव) उतारने वाले, कनपेड (कानों के नीचे होने वाली सूजन) झाड़ने वाले, कान बींधने वाले और झाड़ा-झपटा (झाड़े के प्रभाव से रोग का निदान करना) वाले लोग भी कभी के आए-गए हो चुके हैं। ऐसे-ऐसे सूंघे (गंध परखने वाले) थे, जो व्यक्ति की पैड़ (पदचिन्ह) सूंघ कर उसका भेद निकाल लिया करते। जमीन सूंघ कर धरती के अंदर डेढ़ सौ फुट की गहराई तक स्थित मीठे जल की सोर (छेद) बता दिया करते। नाड़ी देखकर रोग का हाल बताने वाले वैद (वैद्य)

टीवी चैनलों ने ग्रामीण बच्चों को स्वस्थ दिनचर्या से दूर कर दिया है। गांव के बच्चे सुबह खेतों में आकर व्यायाम/वर्जिस के बाद कुंओं पर स्नान करते थे। पशुओं को पानी पिलाने ले जाते थे। छुट्टी वाले दिन पशुओं को खेतों में चराने ले जाते थे। भादों के महीने में सुबह चार बजे खाट छोड़ कर मोर के चंदे ढूंढने जाया करते। इस काम की खातिर बच्चे संध्या के समय खेतों में खड़े दरख्तों पर मोर बिठाकर आया करते और अगली सुबह आंख खुलते ही चंदे चुगने के लिए दौड़ा करते। जो बच्चा जितने ज्यादा चंदे लाता, वह उतना ही दक्ष कहलाता। सर्दियों में ग्रामीण बच्चे कुतिया

के पिल्लों (छोटे बच्चों) एवं कुतिया के लिए मलोट्टा (भोजन) एकत्र किया करते। वे बाल्टी लेकर घर-घर मलोट्टा मांगते और कहते-

घालियो मलोट्टा,
थारा भरै गीहवां का कोट्ठा।
कोट्ठे में छालणी,
थारे बहु आवै चालणी।

'कुतिया के लिए भोजन दो, तुम्हारा गेहूं का कोठार भरा रहेगा। कोठार में छालणी (छलनी) रखी है, सो तुम्हारे घर कमेरी बहुत आयेगी' साल के बारह महीने बच्चे घर व खेत के विविध कार्यों में मस्त रहा करते। कबड्डी के अलावा कां-डंडा, खुळिया, पिट्ठू, गुल्ली-डंडा, तीतर-पंखा, बिज्झो बांदरी, अंटा और कंकड़-कौड़ी आदि खेलते। उधम मचाते, नाचते-गाते और न जाने क्या-क्या करते। किंतु अब उनकी तमाम अठखेलियां बुद्धू-बक्से तक सिमट कर रह गई हैं। ग्राम्य बालिकाएं भी अब झुरणी-झुरणी, चुंगल-ज्यारी, टुग्गां-टुग्गां, सत्ते-सत्ते (सात कंकड़) और पेआं-पेआं सरीखे खेल भूल गई हैं, वे न गोबर बटोलती हैं, न बगड़ बुहारती हैं। टीवी पर जो देखती हैं, उसी का अनुसरण करती हैं।

अतीत के हरियाणा में इन तमाम समृद्ध परंपराओं के अलावा भी बहुत कुछ था। इसीलिए इसे 'देस्सां में देस हरियाणा, जित दूध-दही का खाणा' वाले देश का रुतबा मिला। दूध आज भी है, पर नई तांदी (युवा पीढ़ी) आग धूम्मा (भक्ष्य-अभक्ष्य) खाने में विश्वास रखती है व अहरा-पहरा (अंट-शंट) बोलने में बड़ाई समझती है। बुजुर्गों की स्थिति 'इंग्घै कूवा, ऊंग्घै झेरा' (दुविधापूर्ण स्थिति) वाली है। वे आंखों पर ठीकरी रखकर चुपचाप कोने में पड़े हैं। रेख में मेख लग गई है। अर्थात्-सौभाग्य दुर्भाग्य में बदल गया है। रेह-रेह माट्टी (मिट्टी पलीद होना) होने में कोई कसर बाकी नहीं है, बस ऊंट-मटील्ला (बस्ती उजड़ना) होना शेष है।

पुरुखों ने जिन श्रम भुजबल से,
ऐसी लिखी कहानी।
चप्पे-चप्पे पर स्वदेश के,
अंकित है लासानी।
किंतु दुख की बात,
जिनसे है जग का भोजन-पानी।
सिमट रही है। आज अंजरि में,
उनकी धरा-किसानी।

सम्पर्क : 98132-78899

दीपक बिढान की कविताएं........

किसान

पके अनाज की मंद-मंद गंध,
और पक्षियों का शोर
शादी के मंडप सा माहौल।

फसल का असल रंग
उसे वो बता रहे हैं,
जिन्होंने नही पकड़ी कभी हाथ दरांती
बेबसी में वो,
सिर झुकाए गर्दन हिला रहा।

नीम के नीचे,
हाथों में चेहरा पकडे
एक अधपके बालों वाला आदमी।

दूर तक फैले खेतों को देख
उसके मन में शमशान सी खामोशी
लहू की बूंद-बूंद को पसीने में तबदील कर,
जो पैदा किया,
उसके बदले आज आंसू मिल रहे हैं।

घर आया
घरवालों ने पूछा,
क्या लाया ?
हिस्से में आए
गुस्सा और झुंझलाहट।
छोटी गुडिया आके गर्दन से लिपट गयी
आंखों का रंग देख पीछे हट गयी
चूल्हे के सहारे लगे
भाई को रोता देख
बिन कहे सब कुछ समझ गयी।

मैली सी चुन्नी का सिरा,
दांतों में दबाए,
एक औरत जवानी को घसीटती,
कुछ बुडबुडाती,
बच्चों को,
भीतर ले गई ।

हवा ही उल्ट दिशा चल रही है,
कुछ सोने की थाली में खाने वालों ने
मिट्टी के चूल्हे तोडे हैं।
रही सही कसर इन मरजाणों ने नशे में पड़,
अपने भाग खुद फोड़े हैं ।

खेत में इक रोज
अचानक जमीं बोली,
अब क्या करेगा ?
वह मुस्कुराया

जिन औजारों से
अनाज पैदा किया
वो बनेंगें हथियार
फसलें पानी से नहीं,
खून से पका करेंगी।

एक लड़की

मैनें खिड़की से बाहर झांककर देखा।
लड़की
निवृत हो रही थी।
सैंकडों आंखें जम गई उस पर,
पर वो बैठी रही।

कोई चिल्ला के कुछ कह रहा था ,
तो कोई दुबकी नजरों से देख रहा था ।

संवेदनाएं खत्म हो चुकी थी उसकी ,
या संवेदनावश ही बैठी रही?
बेहया थी वो लड़की, या हया की मारे ही,
बैठी रही वो लड़की

सम्पर्क : 09467328865

तब और अब

□राजेंद्र सिंह 'सोमेश'

हरियाणा का वर्तमान स्वरूप एक नवम्बर सन् उन्नीस सौ छियासठ को मिला। तब से लेकर अनेक उतार-चढ़ावों को पार करते इस प्रांत ने कई पड़ाव पार किए हैं। सर्वाधिक प्रगति तो हरियाणा ने कृषि क्षेत्र में की है। पहले हरियाणा का अधिक क्षेत्र असिंचित क्षेत्र था और ज्यादा भू-भाग में पानी की अनुपलब्धता थी। इस कारण बाजरा, सरसों और चना मुख्य फसलें थी। कुरुक्षेत्र, करनाल, कैथल और अम्बाला में धान की खेती भी होती थी। हरियाणा बनने के बाद सिंचाई परियोजनाओं पर अधिक ध्यान दिया गया और गेहूं, धान, ईख की ओर ध्यान दिया गया। कई चीनी मिलों का बनना इसी ओर संकेत करता है। गेहूं की पुरानी किस्मों का स्थान नई किस्म की फसलों ने लिया और किसान खुशहाली की ओर बढ़ा है। कृषि क्षेत्र का एक बड़ा बदलाव औद्योगिकता के कारण बैलों का स्थान ट्रैक्टरों ने ले लिया और कृषि पर आधारित अन्य जातियों पर इसका कुप्रभाव पड़ा। जो लोग कृषि स्वयं न करके कृषि पर आधारित थे, उनको बेरोजगारी की ओर बढ़ना पड़ा। खाती लुहार, कुम्हार, मोची और जुलाहा आदि जातियों पर बेरोजगारी की टेढ़ी मार पड़ी। ये सभी जातियां कृषक की सहभागी जातियां थी।

परिवर्तन का दूसरा बड़ा क्षेत्र शिक्षा रहा है। पचास वर्ष पूर्व हरियणा की साक्षरता दर पचास प्रतिशत से कम थी। महिला साक्षरता दर तो और भी कम थी। दलित वर्ग में साक्षरता दर बहुत ही कम थी। दलित महिलाओं में यह सामान्य से बहुत ही कम थी। वास्तव में शिक्षा के साधन ही कम थे। कई-कई गांवों में तो प्राथमिक विद्यालय ही थे। अन्य विद्यालय के लिए शिक्षार्थियों को कई मील पैदल जाना पड़ता था। महाविद्यालय तो केवल जिला स्तर पर ही थे। हरियाणा के मेवात (नूंह) जैसे क्षेत्र तो शिक्षा वंचित ही थे। समय ने करवट बदली और प्रत्येक गांव में प्राथमिक विद्यालय हैं। हर एक किलोमीटर की दूरी पर माध्यमिक विद्यालय, तीन किलोमीटर की दूरी पर उच्च विद्यालय और पांच किलोमीटर की दूरी पर वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय है। अनेक गांवों में महिला महाविद्यालय भी बन गए हैं। हिसार, सिरसा, रोहतक, कुरुक्षेत्र और जींद में विश्वविद्यालय हैं।

एक बार तो राजकीय विद्यालयों का बहुत ही महत्व बढ़ गया था। छात्र संख्या निरंतर बढ़ रही थी। उन्हीं दिनों संस्थागत और निजी विद्यालयों की बाढ़ आई और प्रशासन की नासमझी अथवा समझ कर न समझने की नीति ने कमजोर वर्ग और दलित वर्ग के लिए स्वर्ग समान सरकारी विद्यालयों की ओर कम ध्यान दिया। अध्यापकों के हजारों पद कई साल से रिक्त हैं। अनेक छात्र पढ़ाई से दूर होते जा रहे हैं। इसका सबसे ज्यादा कुप्रभाव दलित वर्ग पर पड़ रहा है। शिक्षा की गुणवत्ता में कमी होने लगी है। पांचवीं का छात्र दूसरी कक्षा की हिन्दी नहीं पढ़ पाता है। दसवीं पास छात्र अच्छी तरह प्रार्थना पत्र नहीं लिख पाता है। पचास साल पहले के ढांचे और आज के ढांचे में जमीन आसमान का अंतर है। अनेक सुविधाओं के बाद भी कहीं न कहीं अभी शिक्षा की कसक कमजोर व दलित के वर्ग के मन को कचोटती है।

स्वास्थ्य सेवाओं का बहुत ही विकास हुआ है। पचास साल पहले स्वास्थ्य के हर मामले में नीम हकीम या झोलाछाप डाक्टर का मुंह ताकना पड़ता था, परन्तु अब प्रत्येक गांव में दाई जैसी सामान्य सेवाएं भी उपलब्ध हैं। पहले रोहतक में ही एक बड़ा चिकित्सा संस्थान था, परन्तु अब महिला महाविद्याय एवं चिकित्सा संस्थान खानपुर कलां, बाढसा एवं मेवात में हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रतीक हसन खां मेवाती के नाम पर चिकित्सा संस्थान का नाम भी रखा गया है। इस सबके बाद भी आबादी की बढ़ौतरी की रफ्तार को देखते हुए स्वास्थ्य सेवाओं में और भी अधिक सुधार की जरूरत है। केवल रोहतक के पीजीआईएमएस को लें तो यहां सिटी स्कैन और एमआरआई की जहां बीसियों मशीनें चाहिएं, वहां केवल तीन-चार मशीनें ही हैं। स्वास्थ्य नियमावली के अनुसार डाक्टरों की संख्या बहुत ही कम है। नर्सों की संख्या तो मरीजों की संख्या के अनुपात में लगभग आधी है। वैसे सरकारी कागजों में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा सीएचसी तो हैं, परन्तु डाक्टर और दवाएं नहीं हैं। इस क्षेत्र में निजी स्वास्थ्य केंद्रों की बाढ़ सी आ गई है। एक से एक महंगे अस्पताल खुल गए हैं, जहां एक से बढ़कर एक सुविधा उपलब्ध है, परन्तु आम आदमी की पहुंच से दूर हैं।

हरियाणा बनने के बाद विश्वविद्यालय बढ़े तो प्राध्यापकों की संख्या बढ़ी। एक से बढ़कर एक साहित्य उपलब्ध हुए हैं। अनेक नई-नई रचनाएं हमने पाई हैं। अनेक नए-नए लेखक पैदा हुए हैं। कई कहानीकार पैदा हुए हैं। रंगकर्मी भी बढ़े हैं। आकाशवाणी केंद्र रोहतक तथा कुरुक्षेत्र में हैं। दूरदर्शन केंद्र हिसार में है। टी.वी. आदि का प्रचार प्रसार बढ़ने से हमारे परम्परागत सांस्कृतिक कार्यक्रम सांग और भजन उपदेश लुप्त होते जा रहे हैं। शिक्षाप्रद सांग, आर्य समाज के उपदेश अब बहुत कम हो गए हैं। अनेक वैज्ञानिक गतिविधियां बढ़ी हैं।

खेलों में हरियाणा पहले भी पीछे नहीं था, परंतु वर्तमान में तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर के खेलों में हरियाणा छा गया है। कबड्डी और कुश्ती पर तो हरियाणा के पुरुष एवं महिलाओं का एकाधिकार सा हो गया लगता है। पिछले दिनों तो स्वर्ण पदक तक लाए गए हैं। इस वर्ष ओलम्पिक खेलों में देश के सम्मान की रक्षा करने वाली साक्षी मलिक हरियाणा की है।

हरियाणवी समाज में पिछले पचास वर्ष में काफी परिवर्तन हुए हैं। पंचायती राज विधेयक बनने पर दलित व कमजोर वर्ग के महिला एवं पुरुषों को तैंतीस प्रतिशत आरक्षण का कोटा मिलने पर दलित वर्ग को जो अवसर मिला, उसके चलते समाज में समानता का भाव बढ़ा है। हजारों वर्षों से उपेक्षित कमजोर व दलित वर्ग भी पंच-सरपंच बनकर गांव में निर्णायक वर्ग का अंग बनकर गर्व महसूस कर रहा है। शिक्षा का लाभ पाकर दलित वर्ग के पुरुष

एवं महिलाएं उच्च पदों पर आसीन हैं। इस सबके बाद भी समाज में दलित वर्ग और महिलाएं उपेक्षित हैं। बलात्कार की घटनाएं बढ़ रही हैं। दलित वर्ग को ज्यादा झेलना पड़ रहा है।

पिछले पचास वर्ष में जहां समाज में भौतिक सम्पदा बढ़ी, वहीं परस्पर का भाईचारा, स्नेह और प्यार के बंधन कमजोर हो रहे हैं। अपने माता-पिता, गुरुजनों और अन्य पारिवारिक जनों के प्रति प्यार में दरारें बढ़ने लगी हैं। समाज की पहली इकाई परिवार बिखर रहा है।

मशीनीकरण और बाजारीकरण समाज की आर्थिक अवस्था का नियन्ता बन गए हैं। कांवड़ों पर जोर हो रहा है। गणेश चतुर्थी तथा करवा चौथ अब सभी मनाने लगे हैं। पचास वर्ष पूर्व गांव में गरीब, मजदूर और दलित तो करवा चौथ को कोई महत्व देता ही नहीं था परन्तु अब इसका प्रचार-प्रसार गांव तक हो गया है। धार्मिक आडम्बर और आध्यात्मिक गुरुओं की बाढ़ का एक रेला सा आ गया है। मन्दिर दोबारा बनाए जाने लगे हैं।

हरियाणा की राजनीति ने भी करवट बदल ली है, राजनीति का स्तर भी बदल गया। सोच भी बदल गई है। सरकारी सेवाओं के बदले ठेकेदारी प्रथा युवाओं को अंधेर में धकेल रही है। शिक्षा की गुणवत्ता के अभाव में बेरोजगारों की एक फौज तैयार हो रही है। इस बेरोजगारी का ही परिणाम है कि अपराध प्रवृति दिनोंदिन बढ़ रही है। समाज में बढ़ रही असमानता और अमीर गरीब की खाई और चौड़ी हो गई है। राजनीति नित नए हथकंडे अपना रही है। दलितों पर तो अत्याचार बढ़े हैं, पहले ग्रामीण समाज में सभी की बहू-बेटी समान थी। मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है।

पिछले पचास वर्षों का यदि हम आकलन करें, तो यह स्पष्ट नजर आता है कि इन वर्षों में पूरा हरियाणवी समाज एक धार में नहीं है। समाज का एक हिस्सा काफी उन्नति कर गया है। उसकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति पहले से ज्यादा मजबूत हुई है, जबकि समाज का एक बड़ा हिस्सा आर्थिक विपन्नता और सामाजिक गैर बराबरी का दंश झेल रहा है। व्यावसायिकता की होड़ ने समाज को अर्थ प्रधानता दी है। जो उचित नहीं जान पड़ता। अत: सोच-विचार करने का समय भी आ गया है।

सम्पर्क : 97290--51188

डगमगाती लोकतांत्रिक व्यवस्था

डा. सतीश त्यागी

हरियाणा को राज्य के रूप में अस्तित्व में आये पचास साल हो चुके हैं। आधी सदी की यात्रा पूर्ण होने पर उत्सवी माहौल स्वाभाविक है और एक मौका भी है कि पीछे मुड़ कर देख लिया जाए कि कितना कुछ बदलाव आया है और इस बदलाव के क्या मायने हैं ? मैं मूलत: हरियाणवी नहीं हूँ लेकिन पिछले चालीस साल से इस राज्य में हूं और यही कारण है कि काफी हद तक वस्तुनिष्ठ तरीके से सोचने का दावा कर सकता हूं।

पहली बात तो यह है कि पिछले पचास वर्षों में जो बदलाव पूरी दुनिया और देश में आये हैं, उनसे हरियाणा भी प्रभावित हुआ है, हालांकि इन परिवर्तनों में उसकी अपनी कोई भूमिका नहीं है। विज्ञान और तकनीक ने समूची दुनिया को बदला है तो जाहिर है कि भारत और उसके लोगों को भी बदलना ही था। ये बदलाव मामूली नहीं बल्कि क्रांतिकारी रहे हैं ,जिन्होंने हरियाणवी समाज को भी बदला है लेकिन शेष भारत से तुलना की जाए तो हरियाणा के लोगों ने अपनी पुरानी परम्पराओं को न केवल सहेज कर रखने की कोशिशें की है बल्कि उन्हें बनाए रखने के लिए संघर्ष भी किया है,जो अभी भी जारी है। सोच के स्तर पर जो परिवर्तन अपेक्षित था, उसका अभाव साफ-साफ देखा जा सकता है।

बेशक भौतिक रूप से समाज समृद्ध दीखता है लेकिन उसे प्रगतिशील समाज कहने में हिचक होती है । ऐसा नहीं है कि हरियाणवी समाज में प्रगतिशील तत्व नहीं हैं, बिलकुल हैं लेकिन वे अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं करा पाए हैं। शिक्षा के क्षेत्र को ही लें। प्रदेश में स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों की भरमार है लेकिन समाज में उस अनुपात में बौद्धिकता का सर्वथा अभाव है। विगत चालीस वर्षों से मैं खुद रोहतक सरीखे शहर में देख रहा हूँ कि आज भी किताबों की दुकानों का स्तर वैसा ही है जैसा था। मुझे नहीं लगता कि इस दौरान एक भी स्तरीय बुक स्टोर शहर में खुला है। पाठ्यक्रम से इतर पुस्तकें शायद ही आपको किसी बुक स्टोर पर देखने को मिलें और जो मिलेंगी भी वे एक गंभीर पाठक को निराश ही करेंगी। यदि पिछले पचास वर्षों में हम हरियाणवी बौद्धिकता के क्षेत्र में बंगाल के बाजू में भी खड़े हो सकते तो,यह एक बड़ी उपलब्धि होती।

आज भी हमारे युवा नौकरी, विशेषत: सरकारी नौकरी के उन्मादी आकर्षण से ग्रस्त हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी हमारी प्रगति उल्लेखनीय स्तर की नहीं है। लिंगानुपात और कुपोषण की समस्याएं हमारे मस्तक पर चस्पां हैं। हां , लोगों के पास पैसा बढ़ा है और उसके फलस्वरूप साधन भी बढे हैं। जिंदगी में मौज -मस्ती बढ़ी है। ढांचागत विकास भी कुछ हिस्सों में देखा जा सकता है लेकिन गांव आज भी 'गांव' ही हैं। मेरे कहने का आशय यह है कि जो भौतिक विकास दीखता है,वह तो दुनिया भर में हुआ है लेकिन हमारे समाज की अंतर्निहित शक्ति का सकारात्मक व सार्थक विकास कहां है?

सूबे की नवजात अवस्था में ही हमारी राजनीति देश भर में 'कुख्यात' हो गयी थी। दल-बदल के कीर्तिमानों ने हमें 'आयाराम-गयाराम प्रदेश' के रूप में पहचान दे दी थी और आज आधी सदी बाद भी हमारे राज्य में राज्यसभा का चुनाव अनैतिक तरीकों से जीता जाता है। लोकतान्त्रिक संस्थाएं आखिरी सांसें ले रही हैं। इसी साल फरवरी के महीने में समूचे विश्व ने हमारे सामाजिक सद्भाव की धज्जियां उड़ती हुई देखी हैं। यह कोई साधारण हादसा नहीं था बल्कि 'केटास्ट्रोफ' था लेकिन उसके बाद हमारा राजनीतिक-सामाजिक नेतृत्व 'कोमा' में है , पूर्णत: दिशाहीन। उत्सवी माहौल में मैंने निश्चित ही निराशाजनक तस्वीर उकेरी है लेकिन असल तस्वीर तो यही है।

●

हरियाणा के सम्मुख सामाजिक चुनौती

❑कृष्ण स्वरूप गोरखपुरिया

एक नवम्बर 1966 से पहले हरियाणा कभी भी प्रशासनिक व राजनीतिक ईकाई (यूनिट) नहीं था। इसके बावजूद इस क्षेत्र (हरियाणा) की एक विशिष्ट सांस्कृतिक व सामाजिक पहचान रही है, जिसका मौलिक स्वरुप आज तक निरन्तर बना रहा है।

हरियाणा के सांस्कृतिक व सामाजिक विकास में भौगोलिक कारकों का बहुत योगदान रहा है। इस क्षेत्र में बहती घग्गर और यमुना जैसी नदियों, शिवालिक की श्रृंखलाओं तथा अरावली की पहाड़ियों ने इस क्षेत्र को अलग पहचान प्रदान की थी। इस क्षेत्र की जीवन-शैली, मूल्य प्रणाली तथा जीवन-दर्शन ने बाहर से आने वालों को भी प्रभावित किया और आगन्तुकों के जीवन दर्शन, मूल्य प्रणाली और जीवन शैली से खुद भी प्रभावित हुए थे।

हरियाणावासियों के लिए यह बड़े गर्व की बात है कि विगत 5 दशकों में प्रान्त ने एक ऐसा मुकाम हासिल किया है, जिसका उदाहरण आज दूसरे सूबों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। हरियाणा देश का वह प्रथम राज्य था, जब 43 वर्ष पूर्व हर गांव में बिजली पंहुच गयी थी और इस समय प्रदेश में शायद ही ऐसा कोई गांव या ढाणी होगी, जहां पक्की सड़कें या सरकारी स्कूल की व्यवस्था न हो। आर्थिक विकास की दिशा में अग्रसर प्रदेश में छोटे से प्रदेश गोवा को छोड़कर प्रति व्यक्ति आय में सबसे ज्यादा है। राष्ट्रीय स्तर पर खेलों में हरियाणा की झोली में सबसे ज्यादा मैडल पड़ते हैं। कृषि विकास और अन्न उत्पादन के क्षेत्र में विगत दौर में प्रदेश की सराहनीय भूमिका रही है।

उपरोक्त उपलब्धियों तथा प्रदेश की अभूत पूर्व प्रगति के बावजूद हरियाणा में लिंगानुपात में भयंकर गिरावट, भ्रूण हत्याएं, ऑनर किलिंग की घटनाएं, घोर जातिगत विभाजन व कड़वाहट, राजनैतिक मौकापरस्ती और परिवारवाद, दलबदल का शर्मनाक इतिहास, विकास व नौकरियों में क्षेत्रीय पक्षपात, प्रशासनिक भ्रष्टाचार एवं लूटखसोट, निर्वाचित संस्थाओं का सशक्तिकरण की जगह सत्ता का केन्द्रीकरण, जीवन के हर क्षेत्र में मुखियावादी संस्कृति तथा राजनीति व अपराध के गठजोड़ के कारण हरियाणा पूरे देश में बदनामी झेल रहा है।

हरियाणावासियों के सम्मुख आज एक गम्भीर चुनौती है कि किस प्रकार अपनी पूर्व उपलब्धियों की सुरक्षा करते हुए और आगे कदम बढाते हुए प्रदेश की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व प्रशासनिक जीवन की नकारात्मक प्रवृतियों को मिटाने में सफलता की तरफ प्रगति कर सकें। स्वर्ण-जयन्ती वर्ष हमारे लिए गम्भीर आकलन व मंथन का संदेश लेकर आया है।

हालांकि हरियाणा राज्य तुलनात्मक तौर पर एक विकसित और सम्पन्न राज्य समझा जाता है, परन्तु इसका सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन निहायत पिछड़ा, दकियानूसी और असहिष्णु बना हुआ है। जातिवादी सांमती, पितृसत्ता तथा वर्णवादी व्यवस्था के संस्कार अभी भी गहरी जड़ें जमाए हुए हैं। सामूहिक स्तर पर प्रदेश सकारात्मक परिवर्तन को स्वीकार करने में हर समय झिझकता रहा है और जड़ता को तोड़ने का बहुत कम प्रयास किया जाता है। हालांकि हरियाणा में सामाजिक कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों का एक हिस्सा विचारों की नयी जमीन तोड़ने में काफी सक्रिय है, लेकिन कोई प्रभावशाली समाज-सुधार का आन्दोलन खड़ा करने में असफल रहा है।

असल में अन्धविश्वास, मूर्ति-पूजा, कर्मकांड, आडम्बरवाद तथा रुढ़िवाद के खिलाफ प्रचार-प्रसार का वेग कमजोर दिखाई दे रहा है। जनता अपनी गरीबी, बदहाली और दूसरी समस्याओं का समाधान संगठित तौर-तरीकों की बजाए धार्मिक रास्तों से तलाशने में न केवल लगी हुई है। धार्मिक पदयात्रियों की संख्या लगातार बढ़ रही है।

ब्याह-शादियों और पार्टियों में शराब के खुले सेवन को मानो समाज ने मान्यता दे दी है और बड़े भोजों का विरोध पुरानी बात हो गयी है। मृत्यु भोज, शादियों में हजारों आदमियों का सार्वजनिक खाने की व्यवस्था और खुले रुप में दान-दहेज के प्रदर्शन का सार्वजनिक विरोध और बायकाट करने की क्षमता तो प्रगतिशील लोगों में भी घट गयी है।

आजादी के संघर्ष के दौरान राजनैतिक और सामाजिक प्रमुखों द्वारा विवाह शादियों पर खर्च कम करना तथा दहेज न लेना और न देने का बड़ा प्रचलन था। अब हरियाणा के राजनेताओं तथा समाज में ऊंची हैसियत वाले विवाह, रिश्ता, (सगाई) तथा दहेज के समय सादगी की बजाए बहुत बड़ा लेन-देन किया जाता है और विवाह-शादी के समय बहुत बड़े-बड़े भोज व मंहगी पार्टियों का आयोजन किया जाता है। प्रतियोगिता के युग में मध्यम वर्ग भी उच्च वर्ग की नकल करता है। प्रगतिशील राजनीति करने वाले राजनीतिक कार्यकर्ता भी इस बीमारी (प्रचलन) का विरोध करने की बजाए घुटने टेक रहे हैं।

भारतीय समाज और विशेषकर हरियाणा क्षेत्र में शिक्षा और आधुनिकता के विकास के बावजूद पुरुष-प्रधान मानसिकता के संस्कार बहुत गहरे हैं। सदियों से भारतीय धर्मग्रन्थों में लिंगभेद को धार्मिक व सामाजिक मान्यता मिलती रही है।

जमीनों की घटती जोत और बढते कृषि संकट के कारण हरियाणा में छोटा परिवार की अवधारणा को बहुत स्वीकृति मिली है, परन्तु बच्चों की संख्या घटाते समय यह कुल्हाड़ा लड़कियों पर खुल कर चला है। प्रदेश में सदियों से पितृसत्तात्मक मानसिकता के कारण परिवार वंश चलाने के लिए लड़के का जन्म लेना जरूरी समझा जाता है। 1954 में अस्तित्व में आए हिन्दू उत्तराधिकार कानून के तहत मां-बाप को जायदाद में लड़का-लडकी को बराबर का हिस्सेदार माना गया है। लड़कियों का पिता की सम्पति में अधिकार होने के बावजूद पिछले 62 वर्षों में 99 फीसदी से ज्यादा बहिनों ने अपनी जमीनों को सामाजिक परम्परा का पालन करते हुए अपने भाइयों

के नाम करवा दिया है। लड़कियों द्वारा अपने मां-बाप की सम्पतियों में हिस्सा मांगना सामाजिक अपराध माना जाता है। आज के युग में जमीनों के भाव बहुत ऊंचा होने के कारण पूंजीवादी मानसिकता के चलते लड़के ही पैदा करने का रूझान बढ़ गया है।

नये-नये आविष्कारों और सुविधाओं के कारण कृषि उत्पादन में पुरुषों का काम घट गया है। परन्तु महिलाओं का कृषि व घरेलू काम बहुत बढ़ गया है। हरियाणा की महिलाओं को दोपहर के समय खेतों से घासफूस व पानी लाते समय एक बैल वाली बुग्गी (गाड़ी) को हांकते हुए देखा जाता है, दूसरी तरफ पुरुषों की बड़ी संख्या गांवों के चौराहों पर ताश खेलते हुए देखी जा सकती है। इस स्थिति के प्रति समाज में संवेदनशीलता पैदा करने की जरूरत है।

हरियाणा में महिलाओं, छात्राओं व छोटी-छोटी बच्चियों के खिलाफ अपराधों में वृद्धि से भी आम आदमी काफी चिन्तित व विचलित है। आंकड़े बताते हैं कि ज्यादातर महिलाएं घर में ही शोषण और भेदभाव का शिकार हैं। महिला को न तो अपनी मर्जी से नौकरी करने की छूट है और न ही अपना जीवन साथी चुनने की इजाजत है। जब तक महिलाओं के प्रति पुरुषों की मानसिकता में बदलाव नहीं होता, तब तक समाज में सुधार नहीं हो सकता।

समाज में स्त्रियों को सबल बनाने के लिए जरूरी है कि बचपन से ही लड़के और लड़की का पालन-पोषण समानता से किया जाए और लड़कियां भी भाई के साथ स्नेह के साथ बराबरी की मांग करें।

समाज में एक शान्त परिवर्तन चल रहा है, जिसके तहत बहुत ज्यादा लड़कियों द्वारा उच्च शिक्षा के साथ-साथ तकनीकी शिक्षा के लिए सक्रिय प्रयास किये जा रहे हैं और बहुत सी बहुएं भी ससुराल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत कर रही हैं।

वास्तव में यह एक गर्व का विषय है कि हरियाणा की कन्याओं ने शिक्षा, खेल और जीवन के दूसरे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त करके प्रदेश, गांव मोहल्ला व परिवार के सम्मान में वृद्धि की है। आज के समाज में यह भी देखने में आया है कि लड़कियां शादी के बाद परिवार से दूर रहने के बावजूद मां-बाप को बुढ़ापा व बीमारी के समय उनको सम्भालती हैं, जिस समय बेटे और बहुएं दूरी बना लेते हैं।

अपनी मर्जी से शादी करने वाले लड़के लडकियों की हर रोज 'ऑनर किलिंग' के नाम पर की जा रही हत्याओं का सिलसिला रुकने का नाम नहीं ले रहा है। झूठी शान के नाम पर अपनी मर्जी से शादी करने वाले अनेंक युवकों व युवतियों को मौत के घाट उतार दिया जाता रहा है। गोत्र, गवांढ और गांव की प्राचीन परम्पराओं के उल्लंघन के नाम पर शादीशुदा जोड़ों के घरों को उजाड़ा गया है, बल्कि पति व पत्नी को बहन-भाई बनाने तक के आदेश उग्र व भीड़वादी तथाकथित पंचायतों द्वारा जारी किये गये हैं।

सामाजिक विरोध के चलते अपनी पंसद की शादियां (विशेषकर अन्तरजातीय शादियां) करने वाले जोड़े घरों से भाग शादियां तो कर लेते थे, परन्तु परिवारों और पुलिस के द्वारा पकड़ कर लाये जाते थे और शुरू में लड़का वाले परिवारों को लड़का व लड़की को लड़की वाले परिवारों को सौंप देते थे, जिनमें कई बार दोनों को या लड़की को मार दिया जाता है। मनोज-बबली हत्याकांड के दोषियों को सजा के फैसले के बाद ऑनर किलिंग की घटनाएं बन्द तो नहीं हुई, परन्तु ऑनर किलिंग करने वालों को सार्वजनिक सम्मान व समर्थन में जरूर कमी आनी शुरू हो गयी।

आजादी के बाद छुआछूत में काफी परिवर्तन आया है, परन्तु आज भी जाति विभेद तथा छुआछूत की घटनाएं लगातार प्रकाश में आ रही हैं। दलित-वर्ग के लोगों को तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। यह एक अच्छा लक्षण है कि इस समय दलितों में समानता के लिए संघर्ष व संगठन की चेतना बढ़ी है।

जाट आरक्षण के समर्थन और विरोध में चल रहे अभियानों के कारण प्रदेश के समाज में बहुत कटुता पैदा हो गयी है। विगत फरवरी माह में चले जाट आरक्षण आन्दोलन के समय हुई भयानक हिंसा व लूटपाट की घटनाओं के कारण व निवारण के लिए कोई विशेष कदम नहीं उठाए गये हैं।

गौरक्षा के नाम पर कुछ स्वयंभू गौरक्षकों और संगठनों ने प्रदेश में अल्पसंख्यकों, दलितों व पशुओं के व्यापारियों में भयानक खौफ पैदा कर दिया है। मांस के दुकानदारों (जिनमें दलितों की बड़ी संख्या है।) को पुलिस प्रशासन व गौरक्षकों द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा है। दूसरी तरफ लाखों लावारिस गायों को सड़कों पर फिरते हुए देखा जा सकता है, घास की कमी के कारण गायें भूखी मर रही हैं।

फतेहाबाद जिला में एक वर्ष में 47 से ज्यादा लोग गायों व सांडो द्वारा गाडियों की दुर्घटनाओं के कारण बेमौत मर गये हैं। आज गौशालाओं के पास गाय रखने के लिए जगह नहीं है और 2 लाख से ज्यादा गायें, सांड, बछड़े और बछड़ियां चारा के अभाव में पालीथीन खाकर बेमौत मर रही है।

हरियाणा के सामाजिक व आर्थिक जीवन तथा सामाजिक बनावट में तेजी से कुछ नये परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हरियाणा से भी जिन किसानों की जमीनें मंहगे भाव में चली गयी है, ऐसे किसानों ने राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तरप्रदेश, छत्तीसगढ़ व उतरांचल जैसे प्रान्तों में काफी जमीनें खरीद ली है। दूसरे प्रदेशों में जमीन खरीदने वाले लोगों में राजनैतिक नेताओं और सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों की भी काफी बड़ी संख्या है।

हरियाणा में लड़कियों की कमी के कारण प्रदेश में बहुएं खरीद कर भी ला जा रही हैं और कंवारों के लिए बहुओं की व्यवस्था का एक लम्बा-चौड़ा धन्धा पनप रहा है। उन प्रवासी लड़कियों को आमतौर पर नारकीय जीवन जीना पड़ रहा है।

समाज-सुधार का अभियान तीन स्तरों पर चलाना पड़ेगा, जिनमें सरकार, समाज और संघर्ष की महती भूमिका रहेगी। समाज का आधा हिस्सा महिलाओं की मुक्ति की आधी सफलता उसी समय सम्पन्न हो जायेगी, जब महिलाएं पर्दा प्रथा से मुक्ति प्राप्त कर लेंगी। पर्दा-प्रथा का खात्मा मामूली सा काम लगता है, परन्तु महिलाओं का पर्दा में रहना उनमें पराधीनता, हीनता व असमानता की भावना पैदा करता है।

हरियाणा में पंचायती राज संस्थाओं में करीब 35 प्रतिशत महिलाएं इस वर्ष निर्वाचित हुई हैं। महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों में आज भी 80 प्रतिशत से ज्यादा महिलाएं पर्दा में रहती है। पर्दा-प्रथा का त्याग करने वाली बहुओं को सम्मानित करना तथा अन्तरजातीय शादियां करने वाले जोड़ों को प्रोत्साहित किया जाना समाज-सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा।

सम्पर्क : 98131-64821

मदन भारती की कविताएं

अनुष्ठान

शहर में कर्फ्यू है
सब घरों में घुस जाएं
इक ऐलान
अचानक फैल जाता है।
घरों में रहने वाले
ओर भीतर हो जाते हैं।
शहर में कर्फ्यू है
सेना का बसेरा है
शहर जंगल में तबदील है
सबने जंगदार हथियार संभाल लिए हैं
उपद्रवियों के सामने
सशस्त्र सेना है
उपद्रवी चिढ़ा रहे हैं
अपनी छातियां दिखा रहे हैं।
इस तरह
एक सफल अनुष्ठान सम्पन्न हुआ।

जात

जात कैसी होती है
उसका रंग कैसा होता है
उसकी पहचान क्या होती
रूप कैसा होता है
कितनी बड़ी होती
दृश्य या अदृश्य
गुमान, गर्व या घमण्ड
या फिर
एक सिरफिरा अहंकार
जात एक जात होती है
जात मतलब जन्म
मतलब! जन्मजात
इसे रंग रूप
आकार से पहचानना
एक नकल की
परीक्षा का स्वांग है।
जात इतराने के खूब काम आती,
मन को बहुत भाती है,
इसके लिए न अक्ल,
और न शक्ल देखी जाती है
जात हिमायत की हिमाकत करती है
ये नाम चमकाने के काम आती है
तरक्की का पायदान भी है
और बुरे कर्म में मदद कर देती है।
भीड़ बनकर
जात कांड से पूर्व इठलाती है
इतराती है
और बाद में
गौरव गान करती है
अपने नशे में झूमती है
मतमस्त होकर।

राख

स्वाहा
सब कुछ स्वाहा,
धर्म ग्रंथों
मंत्रों,
पोथी पत्रों
हर कर्म
क्रिया संस्कार
और हर मंत्रोचारणोपरांत।
स्वाह से बनती है राख!
राख में क्या है
भीड़ द्वारा जलाए गए
मॉल में घड़ी
जिसकी टिक-टिक बंद है
राख अरमानों की
सपनों की,
जो निर्जीव है
और उदासी बनकर दूर तक उड़ रही है।

यकीन

बस अब शांत हो जाइए
आप भी
और आप भी और आप भी।
एक आश्वासन है
सबको मिलेगा
आपको भी और आपको भी
मुझे क्या मिलेगा?
मैं खो चुका हूं
17 साल का नितिन
सेना और पुलिस के
सशस्त्र पहरे में।
अभी बैठक होगी
मन्थन होगा,
और वैसे भी
तुम भीड़ के पास गए क्यूं।
और मुझे क्या मिलेगा?
तुम कौन?
देखो सत्ता को जूता मत दिखाओ
अपने माल की लिस्ट बनाओ
फिर बात होगी।
और मैं....मुझे.... ?
अब तुम कौन?
मैं रेहड़ी वाला
मैं आरक्षण वाला
मैं ठेले वाला
मैं दुकान वाला
मैं मॉल वाला
मैं इज्जत वाला
मैं मकान वाला
मैं वो जिसका टूटा हर ताला।
हां-हां, सबको मिलेगा
कुछ न कुछ जरूर मिलेगा।
और मुझे?
अबे अब तुम कौन
मैं इन्साफ का फरियादी
अमन का वारिस
रिश्तों की माला
भविष्य की चिंता
लहूलुहान यकीन।

नाक अभी बाकी है

बाहुबली हर बार दिखाते हैं
अपनी ताकत
बताते हैं अपने मंसूबे
बेकसूरों की गर्दनों पर
उछल कूद करके
हर बार कहते हैं

मर्यादाएं मिट रही हैं
संस्कृति सड़ रही है
नाक कट रही है
इज्जत पर बट्टा लग रहा है

हम शर्मशार हैं
हमारा सर्वोतम गोत्र
लड़की ब्राह्मण है
लड़का मनु व्यवस्था का अछूत

लाठियां संभाली गई
गंडासियां लगाई गई
फंदे बनाए गए
तिलक लगाया,
नयी धोती, नया पग्गड़ पहना

हम खेल जाएंगे
उनकी जान पर
मूंछें फड़फडाई
भोंहें तन गई
हम बरदास्त नही करेंगें

हमारी संस्कृति सर्वोतम है
परम्पराएं अद्वितीय हैं

बस्तियां कांपी, रूहें सहमी,
सन्नाटा काबिज हुआ
पलायन हुआ, पशु छूटे
बच्चे गुम हुए

इस तरह
हत्या का भव्य
आयोजन हुआ
कटी नाक फिर से बच गई

नाक नहीं कटती

बस्तियां जलातें हैं
घर में कुकृत्य कर लेते हैं
देवर का हक चलता है,
जेठ तकता है, ससुर रौंदता है,

बस्ती से लड़कियां उठा लेते हैं
रेप करते हैं, रेत में दबा देते हैं
आग लगा देते हैं जिन्दा भी जला देते हैं

ऐसा करने से मर्यादाएं सकुशल रहती हैं
गांव की शान बनी रहती हैं
नाक नहीं कटती,
संस्कृति भी टस से मस नही होती

न्याय का रूप

बस!
मजूरी मांगने की हिमाकत की थी
उसने।
एक एक कर सामान फैंका गया बाहर!
नन्हें हाथों के खिलौने,
टूटा हुआ चुल्हा, तवा-परात,
लोहे का चिमटा, तांसला
मैले कुचैले वस्त्र
सब बिखरा था गली में।

कुछ डूबा था नाली में
वही नाली,
जिसमें बहता था
पूरे गांव का मल मूत्र
उल्टी पड़ी थी
आम्बेडकर की तस्वीर,
उसके दायें-बांयें
रैदास और कबीर

उनकी भाषा में से उत्तम न्याय था,
सदियों से तयशुदा

चुप्पी और सन्नाटा

हम आगे जा रहे हैं
या पीछे
या फिर जंगल आज भी
हमारा पीछा कर रहा हैं

आधुनिकता के सब संसाधन इस्तेमाल कर रहे हैं
21वीं सदी के सभ्य सुसंस्कृत समाज में
रहते भी हैं
पर हम कर क्या रहे हैं

कुटुम्ब के सदस्य को
मार देतें हैं
या बस्तियां बहिष्कृत कर देते हैं
उनकी अर्थियां भी नहीं उठाते
बस घसीट कर ले जाते हैं
लाशें शमशान तक

चुप्पी और सन्नाटा
कोई रूदन नहीं होता
संस्कार भी नहीं होता
पण्डित क्रिया नहीं करता
पौ फटने से पहले ही निपट जाता है
सब कुछ

दो मांएं

ये लाशें जो जमीन पर अस्त व्यस्त पडी हैं
कुछ क्षण पहले ये
हंस खेल रहे थे
मारने से पहले इन्हें, घर से बुलाया गया था

ये मां जो बदहवाश है
जो फफककर रो रही है
कह रही है
मेरा इकलौता बी ए पास बेटा था
वर्षों झूठन धोकर,
पेट काटकर पाला था इसे मैंने
कर्ज उठाकर पढ़ाया था
क्या कसूर था मेरे बेटे का

दूसरी मां को रोने भी नहीं दिया
वो सिसकती रही
दोनों माओं ने कहा
हमारे बच्चों ने आत्महत्याएं नहीं की
उन्हें मिटाया गया
रात के घुप्प अंधेरे में

इनका कारोबार
इज्जत के नाम पर चलता है

हमारा हरियाणा

हमारा हरियाणा बडा प्यारा है
जगत जहां से न्यारा है
यहां के लोग
बड़े कमाऊ हैं
सीधे हैं, सच्चे हैं
बहादुरी तो बस,
एकदम कमाल की है
संस्कृति निराली है
अलग थलग भेष है
यहां तो जोश ही जोश है
सांस्कृतिक आयोजन का सरकारी भोंपू
बेअटक बोल रहा था

तभी आया
कंधे पर लाठी-झाड़ू लिए
मंच की तरफ देखा
बस इतना ही कहा

हुं !! बेशर्म

सम्पर्क : 9466290729

●

हरियाणा कृषि परिदृश्य : समस्याएं एवं सुझाव

❑डा. अर्जुन सिंह

भारतीय गणतन्त्र में, एक अलग राज्य के रूप में हरियाणा 1 नवम्बर 1966 को अस्तित्व में आया जो पंजाब प्रांत का भाग हुआ करता था। चाहे हरियाणा क्षेत्र समेत पूरे पंजाब को पंजाब प्रांत ही माना जाता था फिर भी हरियाणा क्षेत्र एवं इस धरती की सदियों से अलग पहचान थी। यह राज्य आरम्भ से ही भारतीय संस्कृति और सभ्यता की विशिष्ट पहचान रहा है।

भूगोल की दृष्टि से हरियाणा उत्तर में शिवालिक और दक्षिण में अरावली पहाड़ियों से घिरा हुआ, पूर्व में यमुना नदी और पश्चिम में मरूस्थल है। वर्तमान हरियाणा का कुल क्षेत्रफल 44212 वर्ग किलोमीटर है। कुल बोए गये क्षेत्र का सिंचिंत क्षेत्र 88.3 प्रतिशत है। हरियाणा में कुल जोत 16.17 लाख हैं। कुल साक्षरता की दर 76.6 प्रतिशत है।

हरियाणा कृषि के 50 साल

1966 में हरियाणा बनने के समय खेती और पशुपालन ही प्रदेश का मुख्य धन्धा था तो हरियाणा का विकास भी मुख्य रूप से इन्हीं पर निर्भर करता था। लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती थी। 1966-67 में करीब 60 प्रतिशत आय का हिस्सा कृषि ही था, जबकि भारत में कृषि का हिस्सा 41.81 प्रतिशत था। आजादी के बाद इस क्षेत्र में फसलें और पैदावार देखें तो आज के संदर्भ में काफी पिछड़ापन था। (देखें तालिका-1)

हरियाणा के खेती के पचास साल से थोड़ा और पीछे जाने की आवश्यकता है तभी आधार का पता चलेगा। जैसा कि तालिका से स्पष्ट है पिछड़ी कृषि के चलते 1950-51 में गेहूं का क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता 362 हजार हैक्टेर 294 हजार मिट्रिक टन और 812 कि.ग्रा. प्रति हैक्टयर रही। इसी प्रकार चावल में यह संख्याएं 75, 43, और 573 रही। कुल चना (886,398,449), बाजरा (927,330,356) कुल दालें 995, 420 और कुल खाद्यान 2751 हजार हैक्टयर और 1247 मिट्रिक टन रहा। यहीं संख्याएं सन 1960-61 में गेहूं (628, 814, 1296), चावल (155, 175, 1729), चना (1543, 1274, 826), बाजरा (802, 235, 203), कुल दालें (1606,1303) और कुल खाद्यान (3721, 2761) रहीं। 1950-51 में कपास अमरीकन (2, 0.36, 180) देसी (52, 9.50, 183) गन्ना (56, 184, 3286 गुड़), सरसों (108, 33.7, 312) 1960-61 में कपास अमरीकन (48, 12.34, 257), देसी (39, 8.5, 2271) गन्ना (130, 519, 3992), गुड़ और सरसों (153, 80.7, 527) रही। 10 साल में कुछ पैदावार बढ़ी। विभाजन के समय 1965-66 में सूखे की वजह से कुल खाद्यान का क्षेत्रफल 3021 हजार हैक्टयर था और उत्पादन 1985 हजार मीट्रिक टन रहे।

1950-51 में कुल सिंचित क्षेत्र 19 प्रतिशत ही था जो 1960-61 में बढ़कर 32 प्रतिशत और 1965-66 में 35.5 प्रतिशत हो गया। सिंचाई का मुख्य स्रोत नहरें ही थी। अच्छे बीज, खाद, पानी, कीटनाशक मशीनरी इत्यादि की कमी और पिछड़ी कृषि तकनीकों की वजह से काफी पिछड़ापन बना रहा।

1966 में हरियाणा बनने के बाद कृषि क्षेत्र में भारत व हरियाणा में हरित क्रान्ति के चलते कृषि में आशातीत उन्नति की है।

तालिका-1

क्षेत्रफल (हजार हैक्टयर), उत्पादन (हजार मिट्रिक टन) उत्पादकता कि.ग्रा. प्रति हैक्टयर

	1950-51			1960-61			1965-66		
	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता
गेहूं	362	294	812	628	814	1296	678	869	1282
मक्का	32	12	375	106	91	858	88	92	1205
चना	886	398	449	1543	1274	826	868	385	444
बाजरा	927	330	356	802	235	203	780	208	267
चावल	75	43	573	155	175	1129	193	205	1063
कुल दालें	995	420	-	1606	1303	-	-	-	-
कुल खाद्यान	2751	1247	-	3721	2761	-	3021	1985	-
कपास अमरिकन	2	0.36	180	48	12.34	257	113	30.59	215रूई कि.ग्रा.
देशी	52	9.50	183	39	8.85	227	83	21.98	213
गन्ना	56	184	3286 (कि.ग्रा. गुड़)	130	519	3992 (कि.ग्रा.गुड़)	181	717	3961 (गुड़)
सरसों	108	33.7	312	153	80.7	527	153	74.4	486

उन्नत पैदावार वाले बीज, विकसित कृषि तकनीक, सिंचाई, खाद, कीटनाशक, ऋण की व्यवस्था, मशीनीकरण, बिजली, ट्रैक्टर, ट्यूबवैल आदि के प्रयोग से कृषि उत्पादन व उत्पादकता में काफी उन्नति हुई है और खाद्यान में आत्मनिर्भरता हो गई है।

हरियाणा में खेती के बदलाव में शिक्षा अनुसंधान व विस्तार सेवाओं के जरिए हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय की विशेष भूमिका रही है। कृषि विभाग के तालमेल के जरिये विश्वविद्यालय ने किसानों को आधुनिक कृषि तकनीकों की जानकारी देने के साथ प्रदेश में पैदावार को काफी हद तक बढ़ाया है। बीज, खाद, पानी, कीटनाशक मशीनरी आदि का प्रयोग और खेती के चौतरफा जानकारी बढ़ी है।

जहां 1970-71 में हरियाणा में उच्च पैदावार वाली किस्मों गेहूं, चावल, मक्का, बाजरा का क्षेत्रफल 55.8, 11.1,12.2,27.3 प्रतिशत ही था तो 2013-14 में इन्हीं का 95.1, 43.5,70, 93.8 प्रतिशत है। बोए गए निविल क्षेत्र का सिंचाई का क्षेत्रफल जो 1966-67 में 37.8, 70-71 में 43 प्रतिशत था तो 2013-14 में 88.3 प्रतिशत से कुछ उपर ही है। कीटनाशक व दवाईयों का प्रयोग जो 1970-71 में जो 412 टन था 2013-14 में करीब 15 गुणा बढ़कर 4080 टन हो गया है। खाद का प्रयोग 1970 में 70060 टन से बढ़कर 2013-14 में 1164671 टन करीब 17 गुणा हो गया और 1970 में 15.23 कि. ग्राम प्रति हैक्टयर से बढ़कर 212 कि. ग्रा. प्रति हैक्टयर हो गया। ट्रैक्टरों की संख्या 1970 में 12312 से बढ़कर 2013-14 में करीब 271729 हो गई जो कि 57 गुणा बढ़ोतरी है। हरियाणा में माल बेचने के लिए 107 नियमित मंडियां और 174 छोटे उप-स्थल हैं।

कृषि उत्पादन

हरियाणा बनने के बाद कृषि उत्पादन में खासी प्रगति हुई है। 1970-71 में जहां कुल खाद्यान 47.71 लाख टन था बढ़कर 2000-2001 में 81.70 लाख टन हो गया। जो 2013-14 में बढ़कर 169.73 लाख टन हो गया है। इसी प्रकार से गन्ने, कपास और तिलहन, सरसों इत्यादि का उत्पादन 1970-71 में 70.70, 3.73, 0.99 लाख टन से बढ़कर 2013-14 में 71.69, 19.43, 7.43 लाख टन हो गया है। गेहूं और चाल जो प्रदेश की मुख्य फसलें हैं उत्पादकता प्रति हैक्टयर जो 1970-71 में 2074 कि.ग्रा. और 1697 कि.ग्रा. थी 2000-2001 में 4106 और 2557 कि. ग्रा. और 2013-14 में 4722 और 3248 कि.ग्रा. हो गई जो भारत की गेहूं और चावल के औसत उत्पादन 3075 और 2424 कि.ग्रा. से काफी अधिक है। जहां गेहूं, चावल, सरसों कपास का क्षेत्र बढ़ा है। वहीं चना, बाजरा, ज्वार दालें, मक्का आदि का क्षेत्रफल काफी घटा है।

इसके साथ-साथ वर्तमान में करीब 6.5 प्रतिशत क्षेत्रफल फल व सब्जियों आदि के अंतर्गत है। 1966-67 में फलों का कुल क्षेत्रफल (7.86 हजार हैक्टयर), उत्पादन (27.53 हजार टन) उत्पादकता (3.5 टन प्रति हैक्टयर) थी जो 2010-11 में बढ़कर 46.25 हजार हैक्टयर उत्पादन 356.6 हजार टन और उत्पादकता 13.04 टन प्रति हैक्टयर रही। 2014-15 में फलों का क्षेत्रफल 60.450 हजार हैक्टयर और उत्पादन 703.675 हजार टन रहा। सब्जियों का कुल क्षेत्रफल 1966-67 में 11.30 हजार हैक्टयर और कुल उत्पादन 135.36 हजार टन रहा जो 2014-15 में बढ़कर 3.60 लाख हैक्टयर और उत्पादन बढ़कर 52.86 लाख टन हो गया। मसालों की खेती का क्षेत्रफल 12610 हैक्टयर हो गया और उत्पादन 81.190 हज़ार टन जो 1966-67 में नगन्य था।

फूलों की खेती 2014-15 में 6110 हैक्टर क्षेत्रफल के साथ कुल उत्पादन 62,865 टन रहा। औषधीय उत्पादन अलोविरा, अरण्डी, स्टिविया आदि का क्षेत्रफल 618 टन पैदावार के साथ 1040 हैक्टयर तक पहुंच गया है। मशरूम 2014-15 में 10,390 टन तक हो गया।

पशुधन, मछली व कुकुट पालन

हरियाणा में पशुधन का विशेष महत्व है। प्रदेश में कृषि जी.डी.पी. (सकल घरेलू उत्पाद) का 35 प्रतिशत पशुधन और डेरी उद्योग से ही आता है। हरियाणा में एक कहावत सदियों से मशहूर है 'देसां म्हं देस हरयाणा जित दूध दही का खाणा' यह काफी सही है। आज बढ़ी हुई आबादी के बावजूद दूध, घी की पैदावार संतोषजनक है। 1966-67 में दूध का उत्पादन 10.89 लाख टन था। जो चौतरफा सरकारी व गैरसरकारी प्रयासों के चलते 2000-2001 में 48.49 लाख टन 2010-11 में 62.67 लाख टन और 2013-14 और 2014-2015 में 74.42 लाख टन और 79.01 लाख टन हो गया है। प्रति व्यक्ति, प्रतिदिन दूध की उपलब्धता जो 1966-67 में 352 ग्राम थी। 2000-2001, 2010-2011, 2013-2014 और 2014.15 में क्रमश: 640, 680, 773 और 805 ग्राम तक जा पहुंची है। प्रदेश में 6 मिल्क प्लांट हैं। करीब 18 दूध द्रूतशीलन केन्द्र हैं। इनमें 2013-14 में 1472.31 लाख लीटर तक दूध की खरीद हुई। वर्ष 2012 में पशुगणना के अनुसार प्रदेश में कुल 89.98 लाख पशु हैं। जिनमें 18.08 लाख गाय और 60.85 लाख भैंस हैं। हरियाणा की मुर्रा नस्ल की भैंस व साहीवाल गाय विख्यात है।

आज हरियाणा में हरित क्रांति, सफेद क्रांति के बाद नीली क्रांति भी चल रही है। हरियाणा में जो मछली उत्पादन 1966-67 में सिर्फ़ 600 टन था। 2014-15 में बढ़कर 1,11,203 टन मछली उत्पादन हो गया है। पैदावार 6,800 किलो प्रति हैक्टयर प्रति वर्ष है। 2014-15 तक अण्डों का उत्पादन 45,790 लाख और ऊन का उत्पादन 14.28 लाख किलोग्राम तक जा पहुंचा है।

हरित क्रांति एवं विकास के चलते हरियाणा की अर्थव्यवस्था में बड़े भारी बदलाव हुए हैं। 2004-05 की कीमतों के आधार पर प्रति व्यक्ति आय 1966-67 (608 रुपये) की तुलना में 2014-15 में 117.6 गुणा 71493 रुपए बढ़ चुकी है।

विभिन्न क्षेत्रों का योगदान का अनुपात कि कृषि, उद्योग और सेवाओं का 1966-67 में 60.1, 17.6 और 21.7 प्रतिशत था, जो बदलकर 2000-2001 में 32.6, 27.9, 39.5 प्रतिशत हो गया। 2010-11 में 16.8, 28.7, 54.5 प्रतिशत और 2014-15 में करीब 14.1, 27.0, 58.9 प्रतिशत हो गया। यानी सेवा क्षेत्र की आमदनी कृषि क्षेत्र से 4 गुणा से अधिक हो गई है, जो करीब एक तिहाई के करीब हुआ करती थी। लेकिन खेती पर निर्भर रहने वालों की संख्या इस अनुपात से कम नहीं हुई। राज्य की करीब आधी आबादी खेती पर ही निर्भर करती है। खेती के विकास के बलबूते पर बड़े-बड़े उद्योग धन्धों का भी हरियाणा में काफी विस्तार हो चुका है।

कृषि पर गहराता संकट

जैसा कि ऊपर बताया गया कि हरियाणा बनने के बाद कृषि एवं संबंधित क्षेत्रों में काफी तीव्र गति से विकास हुआ। परिश्रमी किसानों व कृषक मजदूरों ने प्रदेश की आय बढ़ाने में भरपूर मदद की। अन्न भण्डारण में प्रदेश का विशेष योगदान है। केन्द्र द्वारा प्रदेश में गेहूं और चावल की खरीद 2015-16 में 67.78 और 26.61 लाख टन रही, जो केन्द्र द्वारा कुल खरीद का 24.13 और 8.37 प्रतिशत है।

आज खेती पर संकट के गहरे बादल मंडरा रहे हैं। अधिकांश किसानों में खुशहाली नहीं बल्कि गहरा असंतोष है और लगातार आक्रोश बढ़ता जा रहा है। सैंकड़ों किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हुए हैं। इन कारणों की खोजबीन जरूरी है। वैसे तो किसान प्रकृति की गोद में रहता है। प्राकृतिक कारण खूब असर डालते हैं, जैसे सूखा, अकाल, बाढ़, कीट आदि। लेकिन अन्य कारण भी हैं।

घटती जोत

किसानों के पास जोत लगातार घटती जा रही है। प्रदेश में कुल 16.17 लाख जोत हैं, जिसमें 48.1 प्रतिशत एक हैक्टेयर से कम के सीमांत किसान हैं, एक से दो हैक्टेयर के 19.5 प्रतिशत छोटे किसान हैं। 2 हैक्टेयर से ऊपर 32.4 प्रतिशत हैं। औसत जोत 2.25 हैक्टेयर हैं। करीब 67.6 प्रतिशत तो 2 हैक्टेयर से कम के किसान हैं। आज के युग में परिवार चलाने के लिए काफी छोटी जोत है। अपनी जमीन को बेहतर ढंग से प्रयोग करने पर भी थोड़ी राहत जरूर मिलेगी पर ईलाज नहीं है।

लागत

उत्पादन की लागतों में लगातार वृद्धि हो रही है। बीज, खाद, डीज़ल, कीटनाशक, मशीनरी, पानी इत्यादि मंहगी हो गए हैं। अब काफी खर्चे के साथ ही खेती सम्भव है। वर्ष 1975-76 और 2015-16 की खरीफ और रबी कुल लागत की तुलना करें तो आश्चर्यजनक परिणाम सामने आएंगे। चावल की कुल लागत 2,794 रुपए प्रति हैक्टयर, बाजरा की 1,527 रुपए, ग्वार की 816 रुपए कपास अमरीकन की 2,093 रुपए प्रति हैक्टयर रही। 2015-16 में यही लागतें चावल 1,09,073 रुपए प्रति हैक्टयर, बाजरा 38,495 रुपए, ग्वार 39,700 रुपए और कपास बी. टी. 77,685 रुपए प्रति हैक्टयर रही। चावल, बाजरा, ग्वार और कपास में यह लागतें 39.02 गुणा, 25.21 गुणा, 48.65 और 37.13 गुणा बढ़ी।

इसी प्रकार से यह कुल लागत प्रति हैक्टेयर गेहूं, चना, सरसों, गन्ना में जो 1975-76 में 2,556 रुपए, 924 रुपए, 924 रुपए, 1,285 रुपए, 3,833 रुपए प्रति हैक्टयर से 2015-16 में बढ़कर 74,228 रुपए, 45,995 रुपए, 51,088 रुपए और 2,36,058 रुपए प्रति हैक्टेयर हो गई। इस प्रकार क्रमशः 29, 49.79, 39.75, 61.68 गुणा बढ़ी।

अब कीमतों की बढ़ौतरी प्रति क्विंटल विश्लेषण से पता चलता है तो लागत के मुकाबले कम बढ़ी है।

1975-76 में औसतन गेहूं 104.19 रुपये, चना 99.59 रूपये, सरसों 175-29 रुपये, गन्ना 12.61 रुपये, चावल बौनी किस्म 76.10 रुपये, बाजरा संकर 114.44 रुपये, ग्वार 131 रुपये, कपास अमरीकन 255.91 रुपए प्रति क्विंटल बिके। इस प्रकार 2015-16 में रबी में गेहूं 14.63 गुणा, चना 52.34 गुणा, सरसों 20.64 गुणा, गन्ना 24.25 गुणा, चावल 19.05 गुणा, बाजरा 10.30 गुणा, ग्वार 26.67 गुणा, कपास बी.टी. 1975-76 के मुकाबले 16.63 गुणा बिकी, जबकि लागतों में बढ़ोतरी काफी ज़्यादा है। फसलों की कीमतों में वृद्धि 1975-76 से 2015-16 तक प्रति क्विंटल 13 से 25 गुणा तक सभी फसलों में है, जबकि चना और ग्वार में जिसका क्षेत्रफल काफी घटा हुआ है 26 से 53 गुणा तक है।

2015-16 में चावल बौनी किस्म 1450 रुपये, बाजरा 1224 रुपये, ग्वार 3494 रुपये, कपास बी.टी. 4256 रुपए प्रति क्विंटल बिके गेहूं, चना, सरसों क्रमशः 1525 रुपये, 5214 रुपये, 3618 रुपए और गन्ना 305 रुपए प्रति क्विंटल बिके।

यदि हम चालू लागत (जिसमें भूमि का लगान व कुछ अन्य मद शामिल नहीं होते हैं पर कुल आय 1975-76 के मुकाबले में गेहूं 37.42 गुणा, सरसों 57.68 गुणा, गन्ना 60 गुणा और चना 63.27 गुणा एवं चावल 33.2 गुणा कपास 22.25 गुणा, बाजरा 29.1 गुणा, ग्वार 20.57 गुणा बढ़े।

यदि कुल लागत जिसमें भूमि का लगान आदि शामिल हैं उस पर कुल आय देखें तो 1975-76 के मुकाबले 2015 खरीफ़ में चावल, बाजरा व कपास पर घटी है और गेहूं 13.17 गुणा, चना 46.15 गुणा, सरसों 43.53 गुणा और गन्ना की आय 2015-16 में 8.39 गुणा ही बढ़ी है।

उसके मुकाबले सेवा क्षेत्र में नौकरी पेशा लोगों को 150, 200, 250 गुणा तक और कारपरेट जगत में 300 से 600 गुणा तक इन वर्षों में आय बढ़ी है। कारपोरेट जगत में धन्ना सेठों की तो बात ही छोड़िये जिनकी हज़ारों गुणा तक आय और मुनाफे बढ़े हैं। यह किसानों के साथ घोर अन्याय और धोखा नहीं है तो क्या है ?

कृषि ऋण

आज खेती में बड़ा भारी खर्चा है। खतरे और अनिश्चितताएं बेशुमार हैं। पैदावार, कीमतों और आय की अनिश्चितताएं हैं। एक पुरानी कहावत है 'किसान कर्ज में पैदा होता है और कर्ज में ही मर जाता है।' पैदावार हो आमदनी बढ़े तो कर्ज का फायदा ही फायदा है। आमदनी नहीं हुई तो कर्ज के नीचे किसान दबता ही चला जाता है। सितम्बर 2015 तक कृषि क्षेत्र में वाणिज्य बैंकों, ग्रामीण बैंकों, सहकारी बैंकों और हरियाणा प्रदेश सहकारी कृषि एवं बैंक ग्रामीण विकास का क्रमशः कुल कर्ज 19719.06 करोड़, 5893.07 करोड़ और 82.66 करोड़ रुपए हैं एवं कुल ऋण 25964.79 करोड़ रुपए है।

मेरे खुद के सर्वेक्षण के अनुसार यदि 60 प्रतिशत कर्ज सरकारी बैंको का है तो 40 प्रतिशत आढ़तियों, महाजनों, मित्रों, रिश्तेदारों आदि का है। आप हैरान होंगे कि अकबर के जमाने से महाजनी ब्याज कम से कम डेढ़, दो और तीन रुपए सैंकड़ा तक है। पांच रुपए सैंकड़ा के भी कुछ उदाहरण हैं, जो 18, 24, 36 और 60 प्रतिशत हैं। जितना गरीब उतनी ही ब्याज की दर अधिक का सिद्धान्त है। अतः आज आढ़तियों, साहुकारों और महाजनी ऋण 17309.86 करोड़ रुपए के आस-पास है। इस ऋण में 26.42 प्रतिशत कर्ज, 24 प्रतिशत ब्याज पर 5.12 प्रतिशत ऋण 36 प्रतिशत ब्याज पर है। किसानों पर कुल ऋण 43274.65 करोड़ के आस-पास है। करीब 83 प्रतिशत किसान तो इस स्थिति में हैं कि कर्जा चुका ही नहीं सकते। कुल जोतों के क्षेत्रफल 3645805 हैक्टयर पर लगाएं, तो प्रति 2.5 एकड़ पर बैंकों का 71222 रुपए कर्ज है। कुछ लोगों ने कर्ज नहीं ले रखा है तो ऋणी लोगों पर प्रति एकड़ और ऋण बढ़ जाएगा। यदि

कुल ऋण को देखें तो 118704 रुपए प्रति हैक्टयर पड़ता है।

पानी की समस्या

हरियाणा में जमीन के नीचे का 35 प्रतिशत पानी फसलों के लिए उचित है। 8 प्रतिशत काम चलाऊ है और 45 प्रतिशत खारा पानी है। महेन्द्रगढ़, रेवाड़ी, नारनौल में तो जमीन के नीचे का पानी 300-400 फुट से भी नीचे चला गया है और एक कुएं की लागत भी 3-4 लाख आती है। ऐसे में किसान क्या करे ? भारी खर्च वहन करना ही पड़ेगा अगर फसलें लेनी है तो। जहां नहरी पानी है उसका भी उचित वितरण नहीं है जो गांव टेल पर पड़ते है वहां बहुत कम पानी ही पहुंच पाता है। अनेक बार फसलों को जरूरत के समय पानी नहीं मिल पाता। पिछले तीस-चालीस साल से बराबर समस्या बनी हुई है।

सेम, क्षारिय और लवणता

हरित क्रांति के लिए खाद, कीटनाशकों और पानी के कारण हरियाणा में सेम (वाटर लागिंग) की काफी समस्या है। करीब 50 हजार हैक्टेयर में सेम की विकराल समस्या है। 380 हजार हैक्टेयर में नीचे का पानी का स्तर डेढ़ से तीन मीटर है जो सेम के आस-पास है और नाजुक स्थिति में है। रोहतक, झज्जर, भिवानी, हिसार, सोनीपत, जींद, फतेहाबाद, सिरसा और पलवल प्रभावित जिले हैं। 526000 हैक्टेयर भूमि में लवणता व क्षारिय है। इस सब के चलते फसल उत्पादन में काफी कमी आ रही है।

कीमतों में उतार-चढ़ाव

बाजार में किसान के उत्पाद के बड़े भारी उतार-चढ़ाव हैं। किसान को उसकी कई बार लागत भी नहीं मिल पाती। उसे औने-पौने दामों में माल फेंकना ही पड़ता है। प्याज, टमाटर आदि के उदाहरण हमारे सामने हैं। सब्जियों और फलों के बिजनसमैन की भूमिका बड़ी भारी है। मान लीजिए कि टमाटर, घिया, प्याज आदि की खरीद 5 रुपए प्रति किलो ग्राम है तो वही सब्जी खुदरा व्यापारी रेहड़ी मार्किट में 15 और 20 रुपए तक बिकती है। आमतौर पर बीचोलिए 60 रुपए 75 प्रतिशत तक हिस्सा गटक जाते है।

अब ग्वार का उदाहरण हमारे सामने है। ग्वार किसान ने कुछ अर्सा पहले 3 और 4 हज़ार रुपए प्रति किंवटल बेचा और बड़े-बड़े व्यापारियों ने 35-40 हजार रुपए प्रति किंवटल तक बेचा और अरबों-खरबों रुपए कमा गए और माल किसान का, मेहनत किसान की। किसानों को बेचने के तौर तरीके ढूंढ़ने ही होंगे।

कपास, चना, सरसों आदि में किसान बड़े झटके खाते हैं, जो कपास की फसल 4-5 साल पहले बेची थी अब उसे डेढ और दो हज़ार प्रति किंवटल तक सस्ती बेचनी पड़ी।

एक तो सफेद मक्खी से फसल मारी गई, दूसरा कीमत गिर गई। यह घाटा किसान कैसे सहन करे। जिस किसान ने खासकर भूमि लगान पर ली और फसल मारी गई या बहुत घाटा हो गया उसे भरपाई करने का कोई जरिया नहीं।

अनाज का भण्डारण

हरियाणा में सरकारों के प्रयास के बावजूद सरकारी भण्डारण क्षमता 2013-14 में 71.76 लाख टन तक थी। कुछ निजी क्षेत्रों में भी गोदाम बने हैं। 1967-68 में तो कुल 38000 टन ही थी। हर साल करोड़ों का अनाज खास तौर पर गेहूं भीग जाता है। इसी प्रकार सस्ते दामों पर कोल्ड स्टोरेज की सुविधा न होने से सैंकड़ों करोड़ रुपए के हर साल फल, सब्जियां, दूध, अण्डे, मीट इत्यादि ख़राब हो जाते हैं। हरियाणा और भारत में एग्रोप्रोसेसिंग दूसरे देशों के मुकाबले बहुत ही कम है। इस समय भारत में फल व सब्जियों की प्रोसेसिंग (प्रसंस्करण) 2.2 प्रतिशत, दूध की 37 प्रतिशत, मीट की 21 प्रतिशत और पोलट्री उत्पाद की 6 प्रतिशत है। जबकि हरियाणा में फल व सब्जियों की 1 प्रतिशत , दूध की 28 प्रतिशत, मीट व मछली 1 प्रतिशत, पोल्ट्री 2 प्रतिशत। इस समय हरियाणा में 250 कोल्ड स्टोरेज हैं जिनकी क्षमता 4 लाख टन है। भारत का प्रसंस्करण सिर्फ 12 प्रतिशत है। जबकि चीन (40 प्रतिशत), थाईलैंड (35 प्रतिशत) अमरीका (80 प्रतिशत) फिलिपाईन (78 प्रतिशत), मलेशिया (80 प्रतिशत) है। भारत सिर्फ 7 प्रतिशत तक कुल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में वैल्यू एडिसन (मूल्य संवृद्धि) है जबकि चीन में 22 प्रतिशत तक, फिलीपीन में 45 प्रतिशत और ब्रिटेन में 88 प्रतिशत है। यही सब अरबों रुपए के खाद्य पदार्थों के नुकसान के लिए जिम्मेवार हैं जिसका खामियाजा किसान समाज को भुगताना पड़ता है।

आवारा पशु

आज करीब 1.5 लाख आवारा गाय और सांड सड़कों पर, खेतों में घूमते हैं नील गाय का प्रकोप अलग से। यह सिर्फ किसानों की फसलों को बड़ा भारी नुकसान पहुंचाते हैं। यह समस्या सालों में लगातार बढ़ रही है। मेरे खुद के सर्वेक्षण में आवारा पशु औसत रूप से किसान को 5 प्रतिशत तक उत्पादन का नुकसान फसलों को पहुंचाते हैं।

अन्य कारण

अनेक और भी कारण हैं जैसे समय पर गुणवता वाला बीज नहीं मिलना, पूरी मात्रा में नहीं मिलना, नकली बीज, खाद, दवाई मिलना। ऋण पास करते समय कुछ कर्मचारियों द्वारा रिश्वत डकार जाना, दवा विक्रेताओं द्वारा किसानों को गलत दवा और कई दवाईयों का सम्मिश्रण छिड़कने के लिए प्रेरित करना, समय पर मुआवजा नहीं मिलना, त्रुटिपूर्ण बीमा पालिसी जबरदस्ती लागू करना। किसानों को सही जानकारी देने में काफी कमी होना। मशीनरी का काफी महंगा होना और सरकारी सब्सिडी समय पर घोषित नहीं करना।

कुछ सुझाव

हरियाणा के किसान प्रायः सांस्कृतिक तौर से मेहनती एवं कर्मठ हैं। जैसा अवसर और ज्ञान मिलता है सब करते हैं। ऐसे में समस्याओं का समाधान करने के लिए सरकारों की जिम्मेवारी व लोगों के कार्य व फर्ज भी बढ़ जाते हैं।

भारत सरकार को कृषि विकास एवं संबंधित क्षेत्रों के विकास के माडल को बदलना होगा तभी प्रदेश की सरकारें अपने माडल में बदलाव कर सकती हैं। देश और प्रदेशों की आवश्यकता अनुसार अपना माडल विकसित करना होगा।

1. हरियाणा में किसानों की गिरती आमदनी और बढ़ते खर्चों को ध्यान में रखकर ही अपनी नितियां बनानी होंगी। उदाहरण के तौर पर कृषि क्षेत्र में बड़े भारी निवेश की जरूरत है तो आमदनी बढ़ेगी।

किसानों को भारी भरकम

सब्सिडी देकर उत्पादन की लागत को कम करना तथा प्रति किंवटल उत्पादन की लागत का दो गुणा रेट तय करना। स्वामीनाथन रिपोर्ट में डेढ़ गुणा है 50 प्रतिशत मुनाफा। 4 से 6 महीने में एक बार फसल आती है तो मुनाफा उसी हिसाब से होना चाहिए। यह सभी फसलों, दूध, मीट, मछली सब पर लागू हो। किसानों को पूरी सामाजिक सुरक्षा की ज़रूरत है।

2. उपरोक्त समस्याएं निवारण के साथ-साथ सरकारी नौकरियों का सर्जन करें। यह अपनाए गए विकास माडल का दिवालियापन ही है कि जनसंख्या लगातार बढ़ती जा रही है और सरकारी नौकरियां घटती जा रही है। हर गांव में कृषि सरकारी कर्मचारी, पशु चिकित्सक डाक्टर व अन्य सहायक स्टाफ हो, सारे गांव का लेखा-जोखा रखने के लिए, गांव स्तर पर ही कार्य निपटाने के लिए गांव में रजिस्ट्रार की नियुक्ति हो आदि-आदि।

3. भौगोलिक दृष्टि से दिल्ली हरियाणा के नजदीक और तीन ओर से घिरी हुई है और बहुत बड़ी खपत वाला बाज़ार है, उसका फायदा तभी हो सकता है, मांग के मुताबिक कृषि उत्पादों की पूर्ति हो। यह तब तक सम्भव नहीं है जब तक खाद प्रसंस्करण, कृषि उत्पाद प्रसंस्करण जोर से न हो यह कृषि उत्पादों का अगले दस सालों में कम से कम 30-40 प्रतिशत तक तो हो। इसीलिए ही भण्डारण और कोल्ड-स्टोरेज की सुविधाएं कमी पूरा करने तक बढ़ाने की जरूरत है।

5. कुल सरकारी बैंकों का 25964.74 करोड़ का कम से कम आधा 12982.37 करोड़ तो योजनाबद्ध करके अगले तीन सालों तक माफ करना चाहिए।

6. कृषि सफल घरेलू उत्पाद में पशुधन का 35 प्रतिशत तक योगदान है। यहां भारत में और हरियाणा में किताब प्रदर्शनी, कार प्रदर्शनी, हथकरघा उद्योग प्रदर्शनी एवं मेले उद्योग धन्धों सम्बन्धित वस्तुओं की प्रदर्शनी और मेले लगते हैं, तो पशु मेलों पर रोक क्यों? किसान के पशुधन की इज्जत करते हुए तुरन्त किसान मेले आरम्भ करने चाहिए। आवारा पशुओं पर तुरन्त रोक लगाने की जरूरत है।

7. ज्ञान-विज्ञान देश-दुनिया में तीव्रता से आगे बढ़ रहा है। हर क्षेत्र में नई-नई तकनीक सामने आ रही है। सभी फसलों की कृषि सम्बन्धी पूरी और सही जानकारी किसानों तक पहुंचे। किसान सही और पूरी वैज्ञानिक जानकारी के बाद ही फसल लें। हालांकि रेडियो, टी. वी. पत्रिकाओं, कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विभाग काफी प्रयासरत है।

5. आज पंजाब नशाखोरी का पर्यायवाची बन चुका है तो हरियाणा भी कम नहीं। कोई भी समाज जहां पर नशा हो असल रूप में कभी तरक्की नहीं कर सकता। मेरे करीब 250 गांवों के सर्वेक्षण के आधार पर हरियाणा में पिछले पंचायत, ब्लाक समिति एवं जिला परिषद के चुनाव में अकेली शराब पर करीब 650 करोड़ रुपए खर्च हुआ।

6. किसान जाति-धर्म से ऊपर उठकर अपने ऐसे संगठनों में शामिल हों व बनायें जहां सामाजिक न्याय की गुहार हो, आर्थिक पीड़ा से उभरने के लिए संघर्ष हों और कोई वैज्ञानिक, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक, विवेकपूर्ण एवं विद्वतापूर्ण सोच हो। भारत का भविष्य किसान और मजदूरों के आपसी ताल-मेल के साथ आर्थिक संकट से उबरने के लिए सामाजिक बदलाव के लिए जन आंदोलनों से तय होगा।

(यहां पर आंकड़े कृषि अर्थशास्त्र विभाग हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार आर्थिक सर्वेक्षण 2014-15, 2015-16 हरियाणा, सांख्यिकी सारांश हरियाणा 1965-66, 66-67, 2013-14 व खुद के सर्वेक्षण से लिए गये हैं। ईंटरनैट से भी विभिन्न लेखों द्वारा मदद ली गई है)।

सम्पर्क : 9416343196

कुलदीप सिंह ढींढसा

खेती को लाभकारी पेशा नहीं बना पाए

1966 में हमारे सामने अनेक चुनौतियां थी। मुझे याद है उस समय पंजाब के एक नेता ने कहा था कि इनके पास खाने को तो अन्न है नहीं, ये हरियाणा बनाकर क्या करेंगे। हमारे कृषि वैज्ञानिकों और किसानों ने मिलकर फसलों की नयी किस्में तैयार की, खाद्य उत्पादन को बढ़ाया तथा हरित क्रांति के सफल प्रयोग किए। वक्त गवाह है कि आज हमारे खेतों में इतना अन्न पैदा होता है कि अपनी पब्लिक के भरण पोषण के अलावा चीनी, चावल और गेहूं का निर्यात करते हैं। इस क्षेत्र में हमने अपने राज्य का ही नहीं, देश का भी नाम ऊंचा किया है।

लेकिन बड़े दुख की बात है कि पचास साल बीत जाने पर भी हम खेती को लाभकारी पेशा नहीं बना पाए। आज इस पेशे को हेय दृष्टि से देखा जाता है। औद्योगिक सभ्यता से पहले खेती करना एक सम्मान और इज्जत की बात थी। समाज में अन्न पैदा करने वाले लोगों को ऊंची नजरों से देखा जाता था।

उत्तम खेती, मध्यम व्यापार
नीच चाकरी, भीख गंवार

लेकिन आज इन पंक्तियों के मायने बदल गए हैं। इस पेशे से जुड़े हुए लोग आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े रहे हैं। अब किसान के लिए जमीन इज्जत-आबरू, मां-बेटी के रूप में नहीं, बल्कि आर्थिक गतिविधियों को सम्पन्न करने वाली एक उत्पाद की हैसियत में तबदील होती जा रही है। लोग धड़ाधड़ अपनी जमीन बेच रहे हैं।

हमारी अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर है। हमारे राजनेताओं के भाषणों/वक्तव्यों में किसानों की दीन-हीन दशा का वर्णन जरूर होता है, लेकिन नीतियों में प्रमुखता उद्योगों की होती है। टैक्स-माफी, सब्सिडी, कम दर पर पैसा मुहैया उद्योगों को करवाया जाता है और किसान को भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता है।

अधिकांश किसान कर्ज में हैं और आने वाली पीढ़ियों का बड़े पैमाने पर मोहभंग हो रहा है। आने वाले दस सालों में यदि हम लोगों को जमीन से जोड़ना चाहते हैं तो यह सुनिश्चित करना होगा कि छोटे से छोटे किसान की आय सरकारी क्लर्क के बराबर हो और कृषि मजदूर की आय सरकारी चौकीदार की तनख्वाह के समान हो।

खेती और इससे जुड़ी गतिविधियों को ज्ञान-विज्ञान के अनुशासनों से जोड़ा जाए। हरियाणवी संस्कृति में इसका ग्लैमिकरण किया जाए तथा यह पेशा भारतीय की पहचान के साथ जुड़े। साहित्यकार-फिल्मकार, रंगकर्मी-समाजशास्त्री इस दिशा में महत्वपूर्ण काम कर सकते हैं।

सम्पर्क-9992100013

खेती में आए बदलाव

❒राजकुमार शेखुपुरिया

सिरसा जिला के उत्तर में पंजाब और पश्चिम और दक्षिण में राजस्थान है। यहां बोलचाल में पंजाबी, हिन्दी और बागड़ी भाषा का प्रयोग आमजन करते हैं। सिरसा के चारों ओर बड़े-बड़े धार्मिक डेरे हैं। यहां की जनसंख्या वर्तमान में 88.90 प्रतिशत हिन्दू, 9.01 सिक्ख और 1.26 प्रतिशत मुस्लिम हैं। पुरुष 54 प्रतिशत और महिलाएं 46 प्रतिशत हैं।

हरियाणा गठन के समय से ही कृषि आधारित रहा है। यहां खेती सिंचाई का मुख्य स्रोत भाखड़ा का पानी और मध्य भाग में घग्घर का पानी है। हरियाणा गठन के समय यहां मुख्य फसल गेहूं, चना, नरमा, कपास, ग्वार और बाजरा है। यहां पैदावार बहुत कम होती थी। गेहूं की औसत पैदावार 20 से 30 मन प्रति एकड़, नरमा 4 से 5 क्विंटल प्रति एकड़ में होता था। किसान इसे अच्छी पैदावार मानते थे।

हरियाणा गठन के समय सिरसा में अधिकांश भू-भाग पर बड़े-बड़े रेत के टिल्ले हुआ करते थे। ज्यादातर खेती वर्षा पर आधारित थी। समय बीतने के साथ-साथ किसानों ने मेहनत करके टिल्लों को समतल करने का काम शुरू किया, जिसमें राज्य सरकार के विभाग 'भूमि-सुधार निगम' ने भी विशेष योगदान किया। जिसके चलते खेती का बड़ा हिस्सा भाखड़ा के सिंचाई क्षेत्र में शामिल हो गया। भाखड़ा का पानी हर खेत को मिले, इसका प्रयास सरकार ने भी किया। देशी बीज-खाद के चलते उत्पादन 20-25 मन से बढ़ना शुरू हुआ तो ठीक-ठाक पानी मिलने पर पैदावार बढ़ती रही। जैसे-जैसे भाखड़ा पानी की व्यवस्था दुरूस्त हुई किसानों का रूझान नकदी फसलों की तरफ बढ़ा। 1978-79 के बाद से खेती में ट्यूबवैलों का चलन शुरू हो गया, जिससे उत्पादन में एक नई क्रांति आई, किसान खुश होने लगे, ग्रामीण क्षेत्र में नई ऊर्जा का संचार हुआ। फसलों का उत्पादन बढ़ने लगा, गेहूं 40 मन से बढ़कर 60 मन प्रति एकड़ तक पहुंच गई। नरमा 4 से 8 क्विंटल तक प्रति एकड़ तक होने लगा, जिससे किसानों के रहन-सहन, शिक्षा व स्वास्थ्य की स्थिति में बदलाव आने लगे।

1980 के बाद खेती में बदलाव आए और खेती में ट्रैक्टर और अन्य मशीनों का चलन बढ़ा। जिससे खेती के साथ सहायक धंधे भी होने लगे। 1990 में अमेरिकन सुंडी के हमले से देशी नरमा-कपास की फसल को बहुत नुक्सान पहुंचा। यह क्रम तीन साल तक चलता रहा, जिसकी वजह से किसानों का एक हिस्सा भारी कर्जे के जाल में फंस गया। इसके उपरांत नरमा-कपास के हाईब्रिड बीज आए, जिससे किसानों को कुछ राहत मिली और जो किसान खेती से मुंह फेरने लगे लगे थे, वो पुन: खेती की ओर अग्रसर होने लगे।

1995-96 के बाद खेती में एक नई शुरूआत हुई। यहां बागवानी का क्षेत्र बढ़ने लगा, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्र में दुग्ध डेरियां स्थापित होने लगी। पशुपालन का काम भी बढ़ने लगा। सन् 2000 के बाद से जिला भर में खेती उतार-चढ़ाव के दौर से गुजर रही है। उत्पादन लागत बढ़ रही है और उत्पादन में खड़ौत की स्थिति है। पानी का संकट पुन: गहराने लगा है। भूमिगत जल का स्तर नीचे गिरने से ट्यूबवैल फेल हो रहे हैं, जो किसानों के लिए कर्ज का कारण बन रहे हैं, क्योंकि एक ट्यूबवैल की लागत 5 से 7 लाख तक बैठती है। अब कुछ इलाकों में तो किसान 800 से 1200 फुट तक ट्यूबवैल का पानी लेने के लिए लाखों रुपए खर्च कर रहे हैं। जहां पानी की कमी हो रही है। वहां उत्पादन गिर रहा है।

1990 में जिन उदारीकरण की नीतियों को लागू किया है, उसका खेती पर बुरा असर पड़ा है। सरकार की ओर से खेती में मिलने वाली राहत में कटौती प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बी.टी. बीज आने के उपरांत खेती लाभप्रद होगी। यह उम्मीद जागी, किसान खुशहाल होगा। लेकिन स्थिति उम्मीद के विपरीत हुई। पिछले दो सालों में काफी उतार-चढ़ाव रहे हैं, जिसके कारण यहां भी आत्महत्या की घटनाएं बढ़ रही हैं। गत वर्ष 6 किसानों ने आत्महत्या की है। खेती आज भी संभावनाओं से भरपूर है। बशर्ते फसलों के पूरे दाम मिलें। उत्पादन लागत बढ़ने और फसलों के पूरे दाम न मिलने से युवा वर्ग लगभग खेती से विमुख हो रहा है। वैकल्पिक काम की तलाश में है, जिससे महीने की निश्चित आय प्राप्त हो सके। आज के दौर में खेती प्राईवेट कम्पनियों के अधीन हो रही है। आज देशी बीज पूरी तरह से समाप्त हो गए हैं। निजी कम्पनियों की इच्छा के अनुरूप बीज और स्प्रे बाजार में आ गए हैं। जिसे खरीदना किसानों की मजबूरी हो गई है। खेती-किसानी पूरी तरह से आने वाले समय में इन निजी कम्पनियों की गुलाम बन जाएगी। खेती में सरकारी निवेश के घटने की वजह से आने वाले सालों में संकट बढ़ने की संभावना है। हो सकता है कि छोटे किसानों का बड़ा हिस्सा भूमिहीन मजदूरों की श्रेणी में शामिल हो जाए।

सम्पर्क: 9416490656

●

लघु कथा

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

गधा और मेंढक

एक गधा लकड़ी का भारी बोझ लिए जा रहा था। वह एक दलदल में गिर गया। वहां मेंढकों के बीच जा लगा। रेंगता और चिल्लाता हुआ वह उस तरह सांसें भरने लगा, जैसे दूसरे ही क्षण मर जाएगा।

आखिर को एक मेंढक ने कहा, 'दोस्त, जब से तुम इस दलदल में गिरे, ऐसा ढोंग क्यों रच रहे हो? मैं हैरत में हूं, जब से हम यहां हैं, अगर तब से तुम होते तो न जाने क्या करते?'

हर बात को जहां तक हो, संवारना चाहिए। हमसे भी बुरी हालत वाले दुनिया में हैं।

संशोधित जीन वाली सरसों क्यों नहीं?

❑राजेन्द्र चौधरी

आप को याद होगा कि किस तरह 2010 में हम सब नागरिकों ने मिल कर गैर ज़रूरी, अनचाही और असुरक्षित संशोधित जीन वाले (जीएम) बीटी बैगन को अपनी भोजन की थाली और अपने खेतों में आने से रोका था। तब भारत सरकार ने संशोधित जीन वाले बीटी बैगन की व्यावसायिक खेती पर अनिश्चितकाल के लिए रोक लगा दी थी। देश भर में उस समय हुई चर्चा में खाद्य पदार्थों में संशोधित जीन वाली फसलों पर रोक लगाने के लिए बहुत से ठोस कारण सामने आए थे। अब फिर से एक संशोधित जीन वाले खाद्य पदार्थ की खेती को अनुमति देने के प्रयास हो रहे हैं। यह फसल है सरसों। ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए इस के पक्ष में कुछ महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित हैं।

1. जीन संशोधित करने की तकनीक असुरक्षित : जीन संशोधित करने की तकनीक जीवित प्राणियों को पैदा करने का एक अप्राकृतिक तरीका है जो सटीक भी नहीं है। इसके चलते हमारे भोजन और खेती में अस्थिर एवं अनिश्चित परन्तु बेलगाम और वापिस ना की जा सकने वाली फसलों का प्रवेश हो जाता है।

इसका हमारे स्वास्थ्य और पर्यावरण पर गहरा और दूरगामी असर होता है। पर्यावरण में संशोधित जीन वाली फसलों का प्रवेश होने से खेती का जोखिम बढ़ता है, किसानों और उपभोक्ताओं के लिए संशोधित जीन रहित फसलों के विकल्प नहीं रहते, ऐसी फसलों के लिए बाजार सीमित होने का खतरा भी खड़ा हो जाता है।

2. संशोधित जीन वाली सरसों को क्षेत्र विशेष तक सीमित रखना असंभव-सम्मिश्रण अवश्यंभावी : दुनिया भर के कई उदाहरणों के साथ-साथ संशोधित जीन वाली सरसों बनाने वाले वैज्ञानिक खुद भी यह मानते हैं कि संशोधित जीन वाली सरसों का अवांछित क्षेत्रों में फैलाव रोकना असंभव है और सम्मिश्रण/प्रदूषण अवश्यंभावी है। हमारे खेतों में संशोधित जीन वाली सरसों की इजाज़त देने का परिणाम होगा सरसों की अन्य क़िस्मों का इस संशोधित जीन वाली सरसों से भौतिक एवं जैविक, दोनों तरह का प्रदूषण और वर्तमान क़िस्मों की शुद्धता का खात्मा। खरपतवार की समस्या बढ़ने, अनियंत्रित किस्म की खरपतवार पनपने, संशोधित जीन वाली सरसों की वापसी असंभव होने जैसे अन्य खतरों के साथ साथ यह जैविक किसानों और उनकी फसलों की जैविक पहचान के लिए भी खतरा है क्योंकि जैविक खेती में संशोधित जीन वाले उत्पादों का प्रयोग प्रतिबंधित है।

3. संशोधित जीन वाली सरसों में प्रयुक्त जीन इसे 'जनन उपयोग प्रतिबंधित तकनीक' (Genetic Use Restriction Technology (GURT) बनाता है: संशोधित जीन वाली सरसों की इस संकर किस्म में प्रयोग की गई सरसों में नर बाँझपन का 'बारनेज़' (barnase) जीन डाला गया है। भारत के 'पौधों की क़िस्मों और किसानों के अधिकार के संरक्षण का कानून' के तहत 'जनन उपयोग प्रतिबंधित तकनीक' से अभिप्राय है मनुष्यों, पशुओं या पौधों के जीवन या स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तकनीक। इस लिए सरसों की यह किस्म 'जनन उपयोग प्रतिबंधित तकनीक' की श्रेणी में आती है।

4. आयुर्वेदिक उपचार पद्धति में सरसों का इस्तेमाल किया जाता है।आयुर्वेदिक उपचार पद्धति में सरसों का भोजन और दवा, दोनों रूप में इस्तेमाल किया जाता है। सरसों के बीज और तेल का कई तरह के रोगों के उपचार में प्रयोग किया जाता है। इस तरह के उपयोग पर संशोधित जीन वाली सरसों का प्रभाव स्पष्ट नहीं है और ना ही इस का अध्ययन किया गया है।

5. संशोधित जीन वाली सरसों का मधु मक्खियों और शहद उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा: संशोधित जीन उत्पाद उद्योग द्वारा स्वयं कई देशों में प्रायोजित किए गए अध्ययन यह दिखाते हैं कि संशोधित जीन वाली सरसों का मधु मक्खियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका है। यह अन्य फसलों एवं शहद दोनों के उत्पादन को प्रभावित करेगा। भारत में शहद उद्योग तेज़ी से बढ़ रहा है और मधुमक्खी पालकों के लिए सरसों एक प्रमुख संसाधन है। सरसों के साथ मधुमक्खी पालन से दोहरा फायदा होता है। इस से शहद उत्पादन के रूप में अतिरिक्त आय मिलने के अलावा सरसों की पैदावार में भी लगभग 20-25 प्रतिशत की बढ़ोतरी होती है।

6. जब पूरी दुनिया में संशोधित जीन वाली कनोला (सरसों प्रजाति की फसल) का क्षेत्रफल घट रहा है। इस के विपरीत भारत संशोधित जीन वाली सरसों को अनुमति देने की योजना बना रहा है। बीटी बैंगन पर रोक लगने के बाद हुये अध्ययनों में, संशोधित जीन वाले उत्पादों के हमारे स्वास्थ्य और पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के और भी सबूत मिलें हैं। इसके अलावा हमारे स्वास्थ्य और पर्यावरण पर खरपतवार नाशकों के दुष्प्रभाव के निर्णायक सबूत अब उपलब्ध हैं।

7. संशोधित जीन वाली सरसों खरपतवार नाशक सहनशील है। हालांकि इसके प्रवर्तक इस की खरपतवार सहनशीलता का ज़िक्र नहीं कर रहे। 'खरपतवार नाशक सहनशील' फसलों के दुष्प्रभाव ना केवल स्वास्थ्य और पर्यावरण पर पड़ते हैं बल्कि इस के सामाजिक-आर्थिक नुकसान भी हैं। इससे खेतिहर मजदूरों, मुख्य रूप से महिलाओं, को निराई-गुड़ाई के लिए मिलने वाले काम के सीमित अवसर भी खत्म होते हैं। संशोधित जीन वाली सरसों भारत में अन्य 'खरपतवार नाशक सहनशील' फसलों के लिए रास्ते खोलेगी।

8. सरसों का उत्पादन बढ़ाने के लिए अन्य प्रामाणिक विकल्प उपलब्ध हैं: सरसों का उत्पादन बढ़ाने के अन्य विकल्प उपलब्ध हैं। धान की श्री पद्धति की तर्ज पर सरसों की मौजूदा किस्मों से ही काफी ज़्यादा पैदावार मिली है।

अपने भोजन और पर्यावरण को संशोधित जीन वाले उत्पादों से मुक्त रखने के लिए आवाज़ उठाएं।

सम्पर्क: 94161-82061

❑अरुण कुमार कैहरबा

हरियाणा में स्कूली शिक्षा

दशा और दिशा

निश्चय ही बच्चे के सर्वांगीण विकास, देश व समाज के विकास और दुनिया भर में मानवीय मूल्यों की स्थापना में शिक्षा की अहम भूमिका है। शिक्षा देने वालों और शिक्षा की दिशा तय करने वालों के दर्शन और उद्देश्यों से शिक्षा का स्वरूप तय होता है। हर समय की तरह शिक्षा के केन्द्रों पर कब्जा करने के लिए बड़ी-बड़ी शक्तियां संघर्ष कर रही हैं। वित्तीय पूंजी, साम्प्रदायिक और जाति की ताकतें अपने विचार का फैलाव करने के लिए शिक्षा को काबू में रखना चाहती हैं। इसीलिए वे बड़े पैमाने पर शिक्षा के क्षेत्र में निवेश कर रही हैं। यह निवेश पैसे का भी है और विचारों का भी है।

सहिष्णुता, मानवता, तार्किकता और सामूहिकता जैसे मूल्यों को ऊंचा उठाने के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा की जरूरत है। बच्चों को अच्छा नागरिक बनाने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने की जिम्मेदारी सरकार की ही होनी चाहिए। यह हर एक बच्चे का बुनियादी अधिकार है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 भी इसकी गारंटी देता है। लेकिन पर्याप्त प्रबंध नहीं किए जाने के कारण कानून कागजों में सिमटता दिखाई दे रहा है। सरकारें पूंजीवादी नीतियों का अनुसरण करते हुए अपनी इस जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ रही हैं।

हरियाणा में भी ऐसा ही देखने को मिल रहा है। निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों के प्रभाव में जनशिक्षा को आघात पहुंचा है। आज शिक्षा गरीब और अमीर दो तबकों में असमान रूप से बंट गई है। सम्पन्न वर्ग पैसा खर्च करके जैसी चाहे शिक्षा प्राप्त करे और सरकारी स्कूल गरीबों के स्कूलों में बदलते जा रहे हैं। इन स्कूलों की स्थितियों से गरीब अभिभावक बेहद आहत हैं। लेकिन रोजी-रोटी के चक्कर में उलझे अभिभावकों के पास अभिव्यक्ति का कोई मंच नहीं है। यदि वे कुछ कहें भी तो उनकी सुनने वाला कोई नहीं है। सम्पन्न और निर्धन के बीच स्कूली शिक्षा की खाई समाज को कैसी घोर विषमता तक ले जाएगी। इसके बारे में सोचने के लिए सरकारों के पास कोई सोच-समझ दिखाई नहीं दे रही है। लेकिन इस दिशा में स्वैच्छिक प्रयास भी बेहद छिटपुट नजर आते हैं।

ऐसा नहीं है कि शिक्षा के फैलाव के लिए कुछ ना किया गया हो। अलग राज्य के रूप में अस्तित्व में आने के बाद से हरियाणा में शिक्षा के फैलाव के लिए किए गए प्रयास उल्लेखनीय हैं। आर्थिक एवं सांख्यिकी विश्लेषण विभाग हरियाणा द्वारा जारी हरियाणा इकोनोमी से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 1966 में मान्यता प्राप्त प्राथमिक स्कूलों की संख्या 4449 थी, जोकि 2009-10 में बढ़ कर 13073 हो गई। माध्यमिक स्कूल 1966-67 में 735 थे, जोकि 2009-10 में 3476 हो गए। उच्च एवं वरिष्ठ माध्यामिक स्कूलों की संख्या 597 से 6013 हो गई। इसी प्रकार से पहली से पांचवीं कक्षा में पढने् वाले विद्यार्थियों की 1966 की 8.11 लाख संख्या 2008-09 में बढक़र 18.48लाख, छठी से आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों की संख्या 2.47लाख से 11.45 लाख, नौवीं से 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों की संख्या एक लाख से 11.32 लाख हो गई। इसी तरह कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की संख्या और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी। स्कूलों की ही बात करें तो उनमें सुविधाओं का विस्तार भी हुआ। सरकारी स्कूलों में बच्चों के बैठने के लिए कमरे बनाए गए। स्कूल भवन में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की जरूरतों को देखते हुए रैंप और विशेष शौचालय बनाए गए। बच्चों को तकनीकी शिक्षा देने के लिए एजूसेट लगाए गए। कम्प्यूटर लैब बनाई गई। शिक्षा के साथ कौशल विकास का समावेश किया गया। अध्यापकों की तैनाती की गई। लेकिन बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप अभी भी संसाधनों और सुविधाओं की कमी है। नियोजन की कमजोरियों और कुप्रबंधन के कारण भी स्कूली शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं है।

स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ते निजी स्कूलों ने सरकारी स्कूलों को कड़ी टक्कर दी है। सरकारी स्कूल देखरेख की कमी, अध्यापकों व मानव संसाधनों के अभाव, सामूहिक प्रयासों की कमी और सरकारी उपेक्षा के कारण निजी स्कूलों से पिछड़ते दिखाई दे रहे हैं। अप्रशिक्षित अध्यापकों और मोटी फीस के बावजूद अभिभावकों में निजी स्कूलों की तरफ रूझान बढ़ रहा है। निजी स्कूलों की बसें गांव-गांव से उच्च जातियों और सम्पन्न परिवारों के बच्चों को ढोकर ले जाती हैं।

अधिकतर निजी स्कूलों के पास ना तो खेल के मैदान हैं, ना ही बच्चों की संख्या के अनुकूल बड़ा प्रांगण। कमरों के आकार छोटे हैं। कइ अध्यापकों के पास बुनियादी प्रशिक्षण नहीं है। स्कूलों के मालिक और प्रबंधकों की मुनाफाखोरी अलग से आफत है। अधिकतर निजी स्कूलों में पढ़ा रहे प्रशिक्षित और गैर-प्रशिक्षित अध्यापकों का मानदेय इतना कम है कि वे मुश्किल से गुजारा कर पाते हैं। तमाम पहलुओं के बावजूद समय का यथार्थ यही है कि निजी शिक्षा संस्थान लगातार बढ़ रहे हैं। सरकार द्वारा भी उन्हें संरक्षण दिया जा रहा है। जबकि सरकारी स्कूलों की उपेक्षा हो रही है।

अब मूल सवाल यह है कि शिक्षा की इस विषमता का हमारे समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। शिक्षा के सामाजिक सरोकारों की घोर उपेक्षा हो रही है। शिक्षा अपने मूल सार से अलग होकर दिखावे और शक्ति का साधन बनती जा रही है। सम्पन्न वर्ग लाखों रूपये की डोनेशन और भारी फीस चुका कर अपने बच्चों को पढ़ा रहा है। उसकी देखादेखी मध्यमवर्ग और निम्न मध्यमवर्ग ने भी घोड़े दौड़ा रखे हैं। निम्न मध्यमवर्ग में यह भी रूझान देखने में आ रहा है कि छोटी कक्षाओं में वे अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजते हैं और छठी के बाद जब फीस व खर्चे आसमान छूने लगते हैं तो अपने बच्चों को सरकारी

स्कूल में भेजने लगते हैं।

प्राथमिक शिक्षा की दयनीय स्थिति

सरकारी स्कूलों में प्राथमिक शिक्षा पर सबसे ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए था, उसकी सबसे ज्यादा उपेक्षा हो रही है। प्राथमिक शिक्षक अपनी पाठशाला में जिम्मेदारियों के निर्वहन में अपने आप को बिल्कुल अकेला पाता है। अपने विद्यार्थियों से काटने और अभिभावकों की अपेक्षाओं से दूर करने के लिए के लिए पूरी योजनाएं तैयार की गई हैं। पहली बात तो यह कि दिल्ली व चंडीगढ़ के विपरीत हरियाणा में विभाग द्वारा राजकीय स्कूलों के बारे में समग्र रूप से नहीं सोचा जाता है। टुकड़ों में सोचे जाने के कारण टुकड़ों में ही स्कूल खोले गए हैं। एक-दो कमरों के मकान के ऊपर राजकीय प्राथमिक पाठशाला लिख दिया और वहां एक-दो अध्यापक तैनात कर दिए तो हो गया स्कूल। अब अध्यापक को बच्चों को दाखिल करना है। उसे विभिन्न प्रकार के लिपिकीय कार्य करने हैं। मिड-डे-मील का सिलैंडर और खाद्य सामग्री खरीदनी है। स्कूल की सफाई करनी-करवानी है। आदेश मिलने पर बच्चों की पढ़ाई छोड़ कर सर्वेक्षण करना है। पोलियो की दवाई पिलानी है। जनगणना करनी है। चुनाव करवाने हैं। बीएलओ के रूप में घर-घर जाकर वोट बनानी है।

पाठशाला के इकलौते शिक्षक को भी स्कूल समय में अधिकारी द्वारा बुलाई गई बैठक में पहुंचना है। डाक जमा करवानी है। स्कूल में कमरा, चारदिवारी, रसोई या भवन का अन्य कोई भाग मंजूर होने पर अध्यापक को इंजीनियर और ठेकेदार बन जाना होगा। ईंट-भट्ठे पर जाकर ईंटों का रेट पूछना और ईंटें मंगाना उसकी जिम्मेदारी है। सीमेंट, सरिया, बजरी, मजदूर और मिस्त्री का प्रबंध करके काम शुरू करवाना और पूरा करने का काम उसकी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। निर्माण के छोटे-छोटे सामान की रसीद इकट्ठा करना, बिल बनाना और फिर अनुदान का हिसाब भी उसे ही देना है। अनुदान मंजूर करते समय ईंट, बजरी, सीमेंट के निर्धारित मूल्य यदि बढ जाएं तो इसमें विभाग क्या कर सकता है। बढे हुए मूल्य के अनुसार सामग्री खरीद कर कम मूल्य के बिल बनने चाहिए। नुकसान की भी सारी जिम्मेदारी उसी की होगी। स्कूल में एक-एक कमरा मंजूर होगा। उन कमरों का आकार-प्रकार भी अलग हो सकता है। एक-एक करके शौचालय बनाए जाएंगे। कभी पानी की टंकी आएगी और कभी कोई दीवार। इस तरह से निर्माण कार्य भी निरंतर चलते रहने वाले हैं। ये सारे गैर-शैक्षणिक कार्य अति महत्वपूर्ण हैं। इनकी उपेक्षा होने पर कोई भी आफत आ सकती है। हां बच्चों की पढ़ाई ना होने पर कोई असर नहीं होगा। सरकार, अधिकारियों और विभाग का यह प्रत्यक्ष संदेश है, जिसमें पढ़ने-पढ़ाने की क्रियाएं सबसे निचले पायदान पर आती हैं। ऐसा लगता है जैसे विभाग को अध्यापक की जरूरत नहीं है, बल्कि ऐसे महामानव की जरूरत है, जोकि सभी काम एक साथ कर सके। पढ़ने-पढ़ाने के अलावा।

आज भी बहुत बड़ी संख्या में प्राथमिक पाठशालाएं एक या दो अध्यापकों द्वारा चलाई जा रही हैं। इन पाठशालाओं में लिपिकीय कार्य के लिए लिपिकों की सेवाएं, चपड़ासी और सफाई कर्मचारी जैसे अन्य सहयोगी कर्मचारी मिलने चाहिएं ताकि अध्यापक अपने मूल काम के साथ न्याय कर पाए। दिल्ली और चंडीगढ़ में देखने में आया है कि वहां स्कूल का पूरा भवन तैयार किया जाता है। भवन तैयार करने की जिम्मेदारियां अध्यापकों के सिर पर नहीं हैं। स्कूल का पूरा भवन, जिसमें कक्षा-कक्ष, पानी, प्रकाश, शौचालय सहित सभी प्रकार की व्यवस्था करके भवन स्कूल को सुपुर्द किया जाता है। स्कूल का मुखिया भवन लेते समय श्याम पट्ट सहित सभी जरूरी चीजें देखता है और फिर भवन स्कूल का हिस्सा बन जाता है।

अध्यापकों के मामले में भी हरियाणा के स्कूलों में अव्यवस्था का आलम है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम के अनुसार छात्र-शिक्षक अनुपात आज तक पूरा नहीं है। शिक्षक को गैर-शैक्षणिक कार्य सौंपते समय बच्चों की परवाह नहीं की जाती। प्रसूति अवकाश सहित शिक्षकों के अवकाश के वक्त स्कूल में वैकल्पिक व्यवस्था तक नहीं होती है। शिक्षा विभाग के नियमों के अनुसार छात्रों की संख्या के अनुसार शिक्षक देने का प्रावधान किया गया है। हरियाणा की अधिकतर राजकीय प्राथमिक पाठशालाओं में एक कक्षा के पास एक अध्यापक नहीं है। बच्चों की संख्या के अनुसार अध्यापक के प्रावधान के कारण एक-एक अध्यापक के पास दो से पांच कक्षाओं को पढ़ाने की जिम्मेदारी है, जिससे सभी बच्चों पर पूरा ध्यान नहीं दिया जा पाता। जहां निजी स्कूलों में एक कक्षा पर कम से कम एक अध्यापक अवश्य होता है। चित्रकला, थियेटर, नृत्य जैसी अभिरुचि कक्षाओं के लिए अलग से अध्यापकों की सेवाएं ली जाती हैं। वहां प्राथमिक स्कूलों में इन स्थितियों के बारे में सोचा भी नहीं जाता है। अपने स्कूलों से लगातार कम होते बच्चों को देखना प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों की नियति बन गई है।

प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में एक यह भी तथ्य है कि निजी स्कूल में जहां नर्सरी, एल.के.जी. व यू.के.जी. पढ़ने के बाद बच्चा पहली कक्षा में पहुंचता है, वहीं राजकीय पाठशाला में पहली कक्षा में ही बच्चा दाखिल होता है। निजी स्कूल में चार-पांच वर्षों की पहली कक्षा में बेहतर बुनियाद लेकर आगे बढ़ता है, वहीं सरकारी स्कूल में पहली कक्षा में ही उसे हिन्दी, अंग्रेजी, गणित का बुनियादी ज्ञान अर्जित करना होता है। पहले ही बताया जा चुका है कि यह जिम्मेदारी भी ऐसे शिक्षक के कंधों पर है, जिसे शिक्षक कम, मल्टी-पर्पज कर्मचारी अधिक माना जाता है। शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक कार्यों के बोझ से वह लदा हुआ है। अभिभावकों की तंग सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के कारण उनका सहयोग भी निरीह शिक्षक को नहीं मिल पाता है।

सरकारी स्कूलों में गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा के लिए आंगनवाड़ी व्यवस्था का दुरूस्त होना भी जरूरी है। जबकि आंगनवाड़ियों की हालत प्राथमिक पाठशालाओं से भी बदतर है। सामाजिक विषमताओं और आर्थिक तंगहाली की मार झेल रहे समुदायों व परिवारों के बच्चे ही इनमें आते हैं। आंगनवाड़ी वर्करों को अनेक प्रकार के काम करने पड़ते हैं। गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य की देखरेख, उनका पोषाहार, महिलाओं और बच्चों का टीकाकरण, विभिन्न कार्यों के लिए सर्वेक्षण और रिकार्ड का रखरखाव सहित अनेक कार्यों की जिम्मेदारी उनके कंधों पर है। यहां भी बच्चों को पढ़ाने की जिम्मेदारी निचले पायदान पर आती है। आंगनवाड़ी वर्कर बेहद कम वेतन पाती हैं। ऐसी स्थितियों में आंगनवाड़ी अध्यापिकाएं बच्चों की पूर्व प्राथमिक शिक्षा की तरफ ध्यान नहीं दे पाती हैं। आंगनवाड़ियां बच्चों के लिए पोषाहार के केन्द्रों के तौर पर ही जानी

जाती हैं। प्राथमिक शिक्षा में सुधार के लिए इस महत्वपूर्ण कड़ी का मजबूत होना जरूरी है।

प्राथमिक शिक्षा के दौरान एक बड़ा सवाल भाषा का है। दुनिया में संभवत: भारत ही एकमात्र देश होगा, जहां पर नन्हें बच्चों पर दो-दो भाषाएं सीखने का बोझ लाद दिया गया है। देश में भी इस मामले में हरियाणा ने पहली कक्षा से बच्चों को हिन्दी के साथ अंग्रेजी पढ़ाने की शुरूआत की। भाषा के क्षेत्र में यह प्रयोग निजी स्कूलों की देखादेखी किया गया। हालांकि निजी स्कूलों में भी पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक कक्षाओं में दो भाषाएं पढ़ाए जाने की आलोचना हो रही थी। इससे बच्चों का स्वाभाविक विकास और रचनात्मक क्षमता पर बुरा असर पड़ रहा है। भाषाएं सोचने-विचारने और अभिव्यक्ति का माध्यम हैं। अपने आप में भाषा ध्येय नहीं हो सकती। मातृभाषा में बच्चा सहज महसूस करता है। मातृभाषा बच्चे की कल्पनाशीलता, विचारशीलता, रचनाशीलता को नई उड़ान देती है। छोटे बच्चे को अपने परिवेश में संवाद स्थापित करना है। उसके पास अपनी भाषा की मजबूत धरोहर होगी तो बड़ा होकर भले ही वह कितनी भाषाएं सीख ले। लेकिन नन्हें बच्चे के लिए भाषा को बोझ बनाना कतई उचित नहीं है।

सुविधाओं और अध्यापकों की किल्लत से जूझ रहे अधिकतर सरकारी स्कूलों में अंग्रेजी पढ़ाने की जिम्मेदारी ने पहले से घिसट-घिसट कर चल रही शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को चौपट कर दिया है। अंग्रेजी और हिन्दी के बीच झूलते बच्चों की स्थिति- 'न घर के रहे, ना घाट के' वाली हो गई है। हम अंग्रेजी के मोह में अपनी जबान के शिक्षण के साथ भी अन्याय कर रहे हैं। यही कारण है कि विभिन्न निजी संस्थाओं द्वारा करवाए गए सर्वेक्षण में हरियाणा के प्राथमिक स्कूलों में बच्चों का अधिगम स्तर काफी कमजोर पाया गया है।

समय-समय पर कितने ही आयोग और कमेटियों ने बच्चों पर किताबों का बोझ कम करने की सिफारिशें की हैं, लेकिन अंग्रेजी के आगे वे सारी सिफारिशें कमजोर साबित हुई हैं। हरियाणा के शिक्षा विभाग को अध्यापकों में मुरली महकमा कहा जाता है। जहां पर अधिकारी अपने तुगलकी प्रयोगों की मुरली बजाने में लगे रहते हैं। बच्चों का अधिगम स्तर लगातार रसातल को जाने की चर्चाओं के बीच अभिभावक अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों से बाहर निकाल रहे हैं। अध्यापक और सुविधाएं देने की बजाय हमारी सरकारें शिक्षा के क्षेत्र में नए प्रयोग करने के दावे ठोंक रही हैं।

उच्च प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा के बाद उच्च प्राथमिक शिक्षा में अंतर यह आता है कि स्कूल में विषयों की संख्या बढ़ जाती है। प्राथमिक कक्षाओं में आमतौर पर एक शिक्षक कक्षा के सभी विषय पढ़ाता है, लेकिन छठी से आठवीं तक उच्च प्राथमिक कक्षाओं में अध्यापक कालांश के अनुसार अपना विषय पढ़ाता है। इन तीन कक्षाओं (छठी से आठवीं)में बच्चे हिन्दी, अंग्रेजी, सामाजिक अध्ययन, विज्ञान, गणित सहित दो वैकल्पिक विषयों को मिलाकर सात विषय पढ़ते हैं। बहुत से स्कूलों में विद्यार्थियों के पास ड्राईंग का कोई विकल्प नहीं है। ड्राईंग एवं पेंटिंग एक बहुत ही महत्वपूर्ण कलात्मक विषय है। यह विषय बच्चों को कल्पना करने और कल्पनाओं में रंग भरने के लिए प्रेरित करता है और रचनात्मकता को उभारता है। कलाकार शिक्षक के बिना यह उद्देश्य पूरा होने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अधिकतर उच्च माध्यमिक स्कूलों में ड्राईंग शिक्षक नहीं हैं और जहां पर हैं उन्हें स्कूल प्रशासन द्वारा बहुत ही हल्के में लिया जाता है। दिसंबर, 2015 में विभाग से ही प्राप्त आंकड़ों के अनुसार ड्राईंग अध्यापक के हरियाणा में कुल 4597 पदों में 1624 पद रिक्त हैं। दूसरा वैकल्पिक विषय संस्कृत व पंजाबी भाषा है। हरियाणा में पंजाबी भाषा को दूसरी भाषा का दर्जा दिया गया है। प्रदेश में बहुत बड़ी आबादी की मातृभाषा ही पंजाबी है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि पंजाबी पढ़ाने के लिए स्कूलों में शिक्षक ही नहीं हैं। संस्कृत शिक्षक हैं तो केवल संस्कृत विषय पढ़ना बच्चों की मजबूरी है। हरियाणा के कुछ पंजाबी भाषी गांव में भी बच्चों को जबरन संस्कृत पढ़ाई जा रही है, जबकि लोग कई बार स्कूल में पंजाबी अध्यापक नियुक्त करने की मांग कर चुके हैं। यही हाल उर्दू का भी है।

प्रदेश के उच्च माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी भाषा की भी घोर उपेक्षा हो रही है। शिक्षा विभाग ने संस्कृत अध्यापक के पद को प्रथम पद घोषित किया है, जिनके ऊपर हिन्दी पढ़ाने की जिम्मेदारी भी डाल दी गई है और स्कूलों से हिन्दी शिक्षक के पद ही समाप्त कर दिए गए हैं।

हर विषय की तरह हिन्दी विषय की भी अपनी गरिमा और प्रकृति है। मनमाने ढ़ंग से संस्कृत को हिन्दी भाषा की मां घोषित करते हुए ऐसा किया गया प्रतीत होता है, जबकि विद्वान इस तर्क को पूरी तरह से खारिज करते हैं। वास्तव में तो हिन्दी भाषा के विकास का एक क्रम रहा है। अपभ्रंश और अवहट्ठ भाषा से खड़ी बोली या मानक हिन्दी का विकास हुआ है। यदि संस्कृत और हिन्दी एक-सी भाषाएं होती तो संस्कृत और हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण की अलग-अलग व्यवस्था ना होती। यदि एक विषय का अध्यापक दूसरे विषय को पढ़ाएगा तो फिर अपने विषय के साथ न्याय कैसे कर पाएगा। लेकिन प्रदेश के अधिकतर माध्यमिक स्कूलों से हिन्दी शिक्षक का पद समाप्त कर दिया गया है।

मौलिक शिक्षा विभाग ने यही हाल गणित विषय के साथ किया है। विज्ञान अध्यापक पर गणित विषय पढ़ाने की जिम्मेदारी डाल दी गई है। प्रदेश के दो हजार से अधिक उच्च माध्यमिक स्कूलों में एक भी ऐसा स्कूल नहीं है, जहां पर सातों विषय पढ़ाने के लिए सात अध्यापक हों। पहली से आठवीं कक्षा तक की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 ने सुनिश्चित किया है। बिना अध्यापकों के यह अधिकार किस तरह से सुनिश्चित हो पाएगा।

स्कूल प्रबंधन कमेटियों की दशा

शिक्षा का अधिकार अधिनियम की धारा 21 के तहत स्कूलों के विकास में जनसहभागिता बढ़ाने के लिए स्कूल संचालन एवं महत्वपूर्ण निर्णय लेने की जिम्मेदारी स्कूल प्रबंधन कमेटियों के ऊपर डाली है। स्कूल प्रबंधन कमेटी में 75प्रतिशत भागीदारी विद्यार्थियों के अभिभावकों की होती है। कमेटी का अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष भी इन्हीं अभिभावकों में से बनाया जाता है। प्रत्येक दो वर्ष में प्रबंधन समिति का पुनर्गठन करना होता है और महीने में एक बार समिति की बैठक भी अनिवार्य होती है। प्रबंधन कमेटी के पदाधिकारियों एवं सदस्यों के चुनाव में यदि लोकतांत्रिक प्रणाली अपनाई जाए तो अभिभावकों एवं समाजसेवियों के सहयोग से स्कूलों को

आनंददायी शिक्षा के केन्द्र बनाया जा सकता है। अभिभावकों को अपने गाँव-बस्ती के बच्चों की जानकारी होती है। सभी बच्चों के नामांकन और उपस्थिति में उनका अहम योगदान हो सकता है। यदि कुछ बच्चों का स्कूल में नामांकन नहीं हो पाया है। नामांकन के बावजूद बच्चे स्कूल नहीं पहुँच पा रहे। घरेलू झगड़े, बीमारी, नशा, पलायन या किसी अन्य कारण से किसी बच्चे की पढ़ाई बाधित हो रही है, तो स्कूल प्रबंधन समिति के सदस्य इस दिशा में सकारात्मक कदम उठाते हुए बच्चों की पढ़ाई के रास्ते की बाधा को दूर कर सकते हैं।

स्कूल में अध्यापकों की कमी होने पर समिति गाँव के ही पढ़े-लिखे युवाओं के सहयोग से बच्चों की पढ़ाई को होने वाले नुकसान को कम कर सकती है। अध्यापकों की उपस्थिति की निगरानी कर सकती है। यदि अध्यापक निजी ट्यूशन करते हैं या निजी मुनाफे के लिए अपने कर्त्तव्य पालन में चूक करते हैं, इस दशा में भी समिति कदम उठा सकती है। यदि स्कूल में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को दाखिल करने में आनाकानी की जा रही है या उनके नामांकन के बावजूद उनकी पढ़ाई के समुचित प्रबंध नहीं किए गए हैं, तो अधिकारियों से मिलकर विशेष बच्चों की पढ़ाई के विशेष प्रबंध करवाए जा सकते हैं। स्कूल में लड़कियों के लिए संवेदनशील माहौल प्रदान करने में भी समिति का सकारात्मक दखल हो सकता है। मिड-डे-मील योजना के सफल क्रियान्वयन में समिति सदस्य अपना योगदान कर सकते हैं। स्कूल विकास की योजना को अंतिम रूप देना और विभाग से प्राप्त बजट के अनुसार सही प्रकार से उसका क्रियान्वयन करना भी स्कूल प्रबंधन समिति के अधिकार एवं दायित्व में शामिल है।

विभिन्न स्कूलों में आज भी पीने के पानी और शौचालय की समुचित व्यवस्था नहीं है। कहीं चारदिवारी टूटी हुई है। कहीं स्कूल की भूमि का सदुपयोग नहीं हो रहा है। जमीन होने के बावजूद खेल का मैदान नहीं है। कहीं स्कूल की भूमि पर अतिक्रमण की समस्या है। इन सभी समस्याओं के समाधान और नई पहलकदमियों में स्कूल प्रबंधन समितियां अहम योगदान कर सकती हैं। लेकिन व्यवहार में ऐसा होता हुआ कम दिखाई देता है। अधिकतर अध्यापक एवं स्कूल मुखिया स्कूल में किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते हैं। इस कारण वे ऐसे अभिभावकों को प्रबंधन कमेटी का प्रधान एवं सदस्य बनाते हैं, जो कि उनके सामने कुछ ना बोलें और वे मनमाने ढ़ंग से अपना काम कर सकें। यहीं पर स्कूल विकास के ऐतिहासिक अवसरों पर रोक लग जाती है।

दुनिया में होने वाले बड़े-बड़े परिवर्तन, देश की आज़ादी की लड़ाई और विभिन्न गांवों में स्कूल बनाने के लिए जन सहयोग के उदाहरण हमें शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। समाज ने सामूहिक प्रयासों से बड़े-बड़े स्कूल व कॉलेज बनाए हैं। लेकिन अब लोग अपने कदमों से पीछे हट रहे हैं। अपने गाँव के सरकारी स्कूल को बचाने व बढ़ाने की बजाय निजी स्कूलों की तरफ दौड़ रहे हैं। विद्यालय की बजाय देवालय बनाने, बढ़ाने, आलीशान बनाने में समाज अपनी सामूहिक ऊर्जा का प्रयोग कर रहा है। समाज की ऊर्जा को शिक्षा की दिशा में मोड़ने में स्कूल प्रबंधन समिति अपने योगदान को निभाए तो सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जा सकती है। लेकिन इसके लिए ऐसे सक्रिय अभिभावकों को प्रबंधन समिति में आगे आने के लिए प्रेरित करना होगा, जोकि बदलाव के वाहक बनें और उनके साथ मिलजुल कर कार्य करना स्कूल मुखियाओं और अध्यापकों की जिम्मेदारी बनती है।

मिड-डे-मील की स्थिति

भोजन और शिक्षा का गहरा संबंध है। पंजाबी कहावत है कि 'पेट ना पईयां रोटियां ते सब्बे गल्लां खोटियां।' सरकारी स्कूलों में बहुत बड़ी संख्या में बच्चे कुपोषण और रक्त-अल्पता के शिकार हैं। मजदूर, घुमंतु और बेहद विपरीत परिस्थितियों में काम करने वाले परिवारों के बच्चे अक्सर भूखे पेट स्कूल में आते हैं। ऐसे में शिक्षा से भी पहले उनके पेट की भूख शांत करना और पोषण का प्रबंध करना बेहद जरूरी है। बच्चों को स्कूलों की तरफ आकर्षित करने, उनका नामांकन बढ़ाने, स्कूलों में बनाए रखने, उपस्थिति बढ़ाने और उन्हें पोषाहार प्रदान करने के लिए मिड-डे-मील योजना शुरू की गई थी। मिड-डे-मील योजना बिना जाति, लिंग, सम्प्रदाय के भेदभाव के सभी को इकट्ठे बैठकर भोजन खाने का मंच प्रदान करती है। योजना बच्चों में खाना खाने की अच्छी आदतों के विकास में भी मील का पत्थर साबित हो सकती है। मार्च, 2008 में इस योजना का विस्तार पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक कर दिया गया। लेकिन इस योजना के क्रियान्वयन के लिए बुनियादी ढांचे और सुविधाओं का विकास अभी तक नहीं हो पाया है।

पहली बात तो यही कि स्कूल में भोजन बनाने के लिए रसोई की जरूरत है। जितने बच्चों के लिए भोजन बनाया जाना है, उसी हिसाब से रसोई का आकार-प्रकार भी उपयुक्त होना चाहिए। लेकिन प्रदेश के सभी स्कूलों में मिड-डे-मील तैयार करने के लिए बिना इस बात का ध्यान रखे, एक ही आकार की रसोई स्वीकृत की गई। 20-30 विद्यार्थियों वाले स्कूल और सैंकड़ों बच्चों वालों स्कूल में एक ही आकार की रसाई उद्देश्य पूरा नहीं करती है। कई स्कूलों की रसोई में तो खाना बनाने के लिए बर्तन भी रखे नहीं जा सकते। इतनी बड़ी संख्या में भोजन खाने के लिए रसोई के साथ ही बड़े कमरे या हाल, फर्नीचर, बर्तनों, बर्तन धोने के लिए सिंक सहित सभी सुविधाएं चाहिएं। भोजन परोसने, बर्तन धोने, खाना बनाने आदि कामों के लिए मानव संसाधन की भी जरूरत है। लेकिन बच्चों की संख्या के अनुसार मिड-डे-मील वर्कर की नियुक्ति करके बाकी सारी जिम्मेदारी अध्यापकों पर डाल दी गई है। मिड-डे-मील के लिए खाद्य सामग्री खरीदने, सिलैंडर आदि का प्रबंध करने में अध्यापकों की व्यस्तता के कारण अध्यापक का मूल काम बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है। बच्चों के लिए बैठ कर मिड-डे-मील खाने की अच्छी व्यवस्था नहीं होने के कारण आम लोगों में मिड-डे-मील के बारे में नकारात्मक धारणाएं पैदा हो रही हैं। कुछ लोग तो सरकारी स्कूलों पर गरीब परिवारों के बच्चों का मजाक उड़ाने तक का आरोप लगाते हैं। जितनी बड़ी योजना उस हिसाब से प्रबंध अधूरे होने, रसोई का आकार छोटा होने, अनाज के रखरखाव की व्यवस्था नहीं होने, समय पर अनाज की सप्लाई नहीं होने, अध्यापक के ऊपर सारी जिम्मेदारी होने, गैस-सिलैंडर व ब्रांडेड सामग्री की खरीद, हाथ व बर्तन धोने की समुचित व्यवस्था नहीं होने, स्कूल प्रबंधन कमेटी की ही तरह मिड-डे-मील को लेकर बनाई गई कागजी कमेटी और मिड-डे-मील वर्करों के नाममात्र मानदेय सहित अनेक कारणों से योजना पर तरह-तरह के सवाल उठाए जाते हैं। तो भी

प्रबंधकीय खामियों के कारण योजना को खारिज करना कतई उचित नहीं है। इस योजना को कॉलेजों व विश्वविद्यालयों के छात्रावासों की तर्ज पर रसोई व भोजन खाने के लिए बड़े हॉल और फर्नीचर आदि का सभी स्कूलों में प्रबंध होना चाहिए। यह योजना शिक्षा की प्रक्रियाओं में सहायक बने, बोझ नहीं। इसके लिए जरूरी है कि योजना के प्रबंध से अध्यापकों को बरी कर दिया जाए। मिड-डे-मील वर्करों को सम्मानजनक मानदेय दिया जाए तो ही वे मन लगाकर काम कर सकेंगे। मौजूदा ढ़ाई हजार रूपये मानदेय भी उन्हें समय से ना मिलने की शिकायतें आती रहती हैं। मिड-डे-मील के लिए सामग्री की सप्लाई करने की जिम्मेदारी सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत गांव में खुली सस्ते राशन की दुकानों और सिलैंडर के लिए गैस-एजेंसी की जिम्मेदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

डीटीएच एवं एजूसेट शिक्षा

सरकारी स्कूलों के बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए समय-समय पर अनेक प्रयोग किए गए। विद्वानों द्वारा प्रसारित किए जा रहे कार्यक्रमों को डीटीएच व एजूसेट के जरिये स्कूलों के बच्चों तक पहुंचाने के लिए करोड़ो रूपये की लागत से स्कूलों में सिस्टम लगाए गए। कार्यक्रम प्रसारण की समय सूची देखकर अध्यापक अपने बच्चों को ये कार्यक्रम दिखाए तो वह अपने शिक्षण को रूचिपूर्ण बना सकता है। इसका प्रयोग करके स्कूल में कम शिक्षक भी हों तो बच्चों की सीखने की प्रक्रिया को सुचारू रखा जा सकता है। स्कूलों में एजूसेट व डीटीएच सिस्टम चोरी की घटनाओं को देखते हुए चौकीदार नियुक्त किए गए। इन चौकीदारों को एक हजार रूपये प्रतिमाह मानदेय दिया जाता है, जो कि कई-कई महीनों तक नहीं मिलता है। चौकीदार स्कूल में रखे गए टेलीविजन व बैटरी की तो रक्षा कर सकते हैं। लेकिन सिस्टम का प्रयोग करके बच्चों के शिक्षण-अधिगम का प्रबंध तो अध्यापकों को ही करना है। यह भी ठीक है कि अध्यापक कम हैं, लेकिन ऐसे में भी उपाय तो करना ही है। देखने में आया है कि करोड़ों रूपये का यह सिस्टम पूरी तरह से ठप्प पड़ा है। स्कूली शिक्षा विभाग के रहनुमा भी इस बारे में मौन साधे हुए हैं, जैसे सिस्टम लगाना भर उनका ध्येय हो, चलाना नहीं। स्कूलों में कहीं टेलीविजन खराब हैं, कहीं बिजली का प्रबंध नहीं है। कहीं पर रखी गई बैटरियां पुरानी पड़ चुकी हैं। तकनीकी शिक्षा का पूरा सिस्टम चौपट है।

उच्च एवं वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा

मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत पहली से आठवीं कक्षा तक के बच्चों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता है। लेकिन ज्यों ही बच्चा आठवीं पास करके नौवीं कक्षा में प्रवेश करता है तो उसे विभिन्न प्रकार के शुल्क देने पड़ते हैं। इन सारे फंडों के शुल्क गरीब परिवारों पर भारी पड़ते हैं। दलित, घुमंतु समुदाय, पिछड़ी जातियों, बीपीएल परिवारों के बच्चे और विशेष आवश्यकता वाले बच्चे प्राय: ये शुल्क अदा करने में सक्षम नहीं होते। फीस नहीं भरने के कारण बच्चों के नाम काट दिए जाते हैं और वे अपनी पढ़ाई पूरी किए बिना ही घर बैठ जाते हैं। स्कूल छोड़ चुकी लड़कियों को दोबारा स्कूल में लाने के लिए बहुत बार अभियान चलाने की बातें होती हैं, लेकिन नाम कटने के मुख्य कारण को समाप्त करने की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ की बात करने वालों को इस बारे में गंभीरता से विचार करना चाहिए। यह भी एक तथ्य है कि जिनके पास सामर्थ्य है, वे अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेज रहे हैं। उसमें भी लैंगिक भेदभाव के कारण लड़कियों को सरकारी स्कूलों में भेजा जाता है। हालांकि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने के लिए बहुत से उपाय करने की जरूरत है, ताकि निजी स्कूलों के विद्यार्थी भी सरकारी स्कूलों की तरफ आकर्षित हों। लेकिन यह कदम तो एकदम जरूरी बनता है कि विशेष वर्गो के बच्चों और सभी लड़कियों को 12वीं तक पूरी तरह से शुल्क रहित मुफ्त शिक्षा प्रदान की जाए। यही नहीं पहली से आठवीं कक्षा की शिक्षा की तरह बच्चों को किताबें भी मुफ्त दी जानी चाहिएं। किताबों का यह बोझ तब और अधिक बढ़ जाता है जब पाठ्य पुस्तकों के साथ-साथ गरीब अभिभावकों को कुंजियां भी खरीदनी पड़ती हैं। ये कुंजियां बेहद महंगी होती हैं। इन्हें खरीद पाना हर बच्चे के बूते में ही नहीं होता है।

अध्यापकों और प्राध्यापकों की कमी स्कूलों की सबसे बड़ी दिक्कत है। कई स्कूलों में तो वर्षों से कई विषयों के प्राध्यापक नहीं हैं। इस मामले में बहुत से लड़कियों के स्कूलों की स्थिति ज्यादा चिंताजनक है। कई स्कूलों में विज्ञान संकाय इसलिए शुरू नहीं हो पाता क्योंकि वहां पर सभी विज्ञान विषयों के प्राध्यापक पूरे नहीं होते। प्राध्यापक पूरे नहीं होने पर या तो विद्यार्थियों को विज्ञान की पढ़ाई छोड़ कर कला संकाय में आना पड़ता है या फिर निजी स्कूलों का रूख करना पड़ता है।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन एवं पुरानी परीक्षा पद्धति

रट्टा पद्धति को बढ़ावा देने वाली परंपरागत लिखित परीक्षाएं बच्चों के विकास में बोझ बनी हुई थी। यह परीक्षाएं विद्यार्थियों की बहुमुखी प्रतिभा का नोटिस नहीं लेती थी और पाठ्यचर्या को कागजी खेल बना देती थी। खामियों को देखते हुए शिक्षाविदों ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन को अपनाने की पक्षधरता की। ऐसा मूल्यांकन जो लगातार चले, जिसमें बच्चों और विद्यार्थियों के बीच गहरा रिश्ता बने और बच्चों के सर्वांगीण विकास को लक्षित करे। कोई बच्चा खेल में बहुत अच्छा हो सकता है। कोई गाने-बजाने में और विज्ञान में। हम किसी भी व्यक्ति को परीक्षा में उसके द्वारा प्राप्त किए गए अंकों से नहीं जानते, उनकी प्रतिभा से जानते हैं। तो फिर शिक्षा और परीक्षा को अंकों का खेल या अधिकाधिक अंक हासिल करने की गलाकाट प्रतिस्पर्धा बनाने की बजाय उसकी खूबियों और रचनात्मक प्रतिभा के विकास और मूल्यांकन पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। तभी बच्चे, समाज, देश और दुनिया का भला हो सकता है।

शिक्षा के उच्च लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए शुरू की गई सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन प्रणाली को आज बिना आजमाए ही नकार दिया जा रहा है। शिक्षा विभाग द्वारा व्यापक मूल्यांकन का ना प्रचार किया गया और ना ही इसे लागू करने के लिए तैयारी की। पहले से ही विभिन्न प्रकार के गैर-शैक्षणिक कार्यों के बोझ से दबे अध्यापकों को इस बारे में प्रशिक्षित भी नहीं किया गया। शिक्षा का अधिकार अधिनियम को लागू करने के बाद पुरानी परीक्षा पद्धति को तिलांजलि दे दी गई और नई पद्धति की उपेक्षा की गई।

पुरानी परीक्षा पद्धति का

महिमामंडन करने का शोर शिक्षा में सुधार करने की बजाय शिक्षकों को सबक सिखाने के उद्देश्य से ज्यादा मचाया जा रहा है। आक्रामक ढ़ंग से पुरानी परीक्षाओं को लागू किया जा रहा है। इसी का नतीजा है कि पहली से आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए भी मासिक परीक्षाओं का प्रावधान कर दिया गया है। अब शिक्षा का अधिकार अधिकार अधिनियम में संशोधन की बातें हो रही हैं, ताकि आठवीं कक्षा में बोर्ड की परीक्षाएं हो सकें। सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में मूल्यांकन लगातार चलने वाला काम है। हर एक अध्यापक इसे अपना अभिन्न कार्य मानता है।

बंद रहती हैं पुस्तकालयों की किताबें

प्रदेश के हरेक स्कूल में पुस्तकालय की अवधारणा को साकार करने के लिए पुस्तकें होती हैं। उच्च एवं वरिष्ठ माध्यमिक स्कूलों में तो पुस्तकालय के लिए कमरा व अलमारियों तक की व्यवस्था है। हर वर्ष पुस्तकें खरीदने के लिए अनुदान भी आता है और पुस्तक संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए पुस्तक मेले भी आयोजित किए जाते हैं। जिसमें विभिन्न प्रकाशक अपनी पुस्तकें लेकर पहुंचते हैं और स्कूलों के मुखिया व पुस्तकालय इंचार्ज वहां से अपने बच्चों के लिए पुस्तकों की खरीद करते हैं। प्राथमिक स्कूलों में भले ही पुस्तकालय के नाम पर कमरा व फर्नीचर आदि ना हो, लेकिन उत्साही अध्यापक चाहें तो एक कामचलाऊ पुस्तकालय बना सकते हैं। जिनसे बच्चों को उनके स्तर एवं रूचि के अनुकूल किताबें दी जाएं। उनमें पढ़ने की संस्कृति का विकास हो। प्राथमिक स्कूलों में नन्हें बच्चों के लिए हाल ही में एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित चित्रों वाली बरखा सीरीज की किताबें भेजी गई। कुछ अध्यापक इन पुस्तकों का काफी अच्छा प्रयोग भी कर रहे हैं। लेकिन अधिकतर स्कूलों की पुस्तकें संदूक या अलमारी की शोभा ही बढ़ाती हैं।

इसका कारण यह है कि जब अध्यापक में स्वयं ही पुस्तकें पढ़ने की लालसा नहीं होगी। तो वे बच्चों में पुस्तक पढ़ने के संस्कार कैसे पैदा कर पाएंगे। अधिकतर अध्यापकों को तो हमेशा इस बात का भय लगा रहता है कि कहीं पुस्तकें फट ना जाएं या फिर गुम ना हो जाएं। इस डर से वे बच्चों को पुस्तकें दिखाने के लिए भी नहीं देते।

वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों में तो पुस्तकालय के नाम पर कमरे या हाल का निर्माण भी किया गया है, लेकिन वहां पर पुस्तकालय नहीं होता है। विभाग ने भी कभी इन पुस्तकालयों की सुध नहीं ली है। होना तो यह चाहिए कि कम से कम वरिष्ठ माध्यमिक स्कूलों में पुस्तकालय विज्ञान की पढ़ाई किए हुए युवाओं को नियुक्त करके उन्हें पुस्तकालयों का कार्यभार सौंपा जाए। मानव संसाधनों की कमी और अध्यापकों पर अधिक कार्यभार और रूचि के अभाव के कारण स्कूल शिक्षा के संवेदनशील संस्थानों की तरह कम एक सरकारी कार्यालय की तरह ज्यादा चलते हैं।

विज्ञान एवं कम्प्यूटर की प्रयोगशालाओं का प्रयोग

स्कूलों में बहुत से उत्साही विज्ञान अध्यापक अपनी प्रयोगशालाओं में बच्चों को प्रयोग करके सीखने के अवसर प्रदान करते हैं। लेकिन बहुत से स्कूलों में विज्ञान प्रयोगशालाओं की स्थिति पुस्तकालयों जैसी ही है। प्रयोगशालाओं में रखे उपकरण अलमारियों में ही धूल फांकते रहते हैं। निजीकरण की व्यवस्था के तहत 3000 से अधिक स्कूलों में खोली गई कम्प्यूटर प्रयोगशालाओं की स्थिति ज्यादा खराब है। इन प्रयोगशालाओं में कम्प्यूटर अध्यापक और लैब सहायक की तैनाती का जिम्मा सरकार ने निजी कंपनियों को सौंपा। बहुत ही कम वेतन में कम्प्यूटर अध्यापकों और लैब सहायकों से काम लिया गया। नाममात्र का मानदेय भी यदि एक साल तक ना दिया जाए तो इस स्थिति को समझा जा सकता है।

यदि आज की स्थिति की बात करें तो राजकीय स्कूलों में खुली प्रयोगशालाओं को चलाने के लिए ना तो कम्प्यूटर अध्यापक हैं और ना ही लैब सहायक। डिजीटल इंडिया के दावों के बीच कम्प्यूटर प्रयोगशालाएं अक्सर बंद रहती हैं। हजारों स्कूलों में सत्र 2016-17 के दौरान कम्प्यूटर प्रयोगशालाएं खुली भी नहीं हैं।

शिक्षा के साथ कौशल विकास का समावेश

विभिन्न आयोगों और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 ने माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण और बच्चों को उत्पादक कार्यों से जोडने् की सिफारिशें की हैं। ऐसा करने से विद्यार्थियों में काम की संस्कृति का भी विकास होता। समय-समय पर ऐसे प्रयोग भी किए गए। स्कूलों में निर्माण कार्यों के लिए संयत्र लगाए गए। लेकिन इस नीति को लंबे समय तक जारी नहीं रखा गया। कई स्कूलों में पुराने उपकरणों के अवशेष आज भी दिखाई दे जाते हैं।

प्रदेश के लगभग एक हजार स्कूलों में दो-दो कौशलों को सिखाए जाने का प्रबंध किया गया है। इस योजना की भी सबसे बड़ी खामी यही है कि अनुदेशकों की नियुक्ति का जिम्मा निजी कंपनियों को दिया गया है। जिससे अनुदेशकों में हमेशा भय बना रहता है। दूसरे, विभिन्न कौशल सीख रहे विद्यार्थियों के लिए विभाग द्वारा अंग्रेजी माध्यम में ही पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। इन पुस्तकों को बहुत से विद्यार्थी पढ़ भी नहीं पाते हैं। इससे यह समझ नहीं आ रहा है कि विभाग कौशल विकास करना चाहता है या अंग्रेजी सिखाना। जो किताबें अनुदेशक भी ठीक से ना पढ़ पाएं, ऐसी किताबों को विद्यार्थियों के लिए आखिर क्यों प्रकाशित किया जा रहा हैं। जब विद्यार्थियों द्वारा हिन्दी माध्यम की पुस्तकें देने की मांग उठाई जाती है तो टका सा जवाब यही होता है कि ये पुस्तकें हिन्दी में छापी ही नहीं गई हैं।

भिन्न प्रकार से योग्य बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा

वैसे तो हमारा समाज अनेक प्रकार की संकीर्णताओं के जाल में फंसा हुआ है। आज 21वीं सदी में भी लैंगिक आधार पर लड़कियों के साथ, जाति के आधार पर दलितों, घुमंतु कबीलों और पिछड़ा वर्ग के साथ और साम्प्रदायिक आधार पर अल्पसंख्यकों के बच्चों के साथ भेदभाव के अनेकानेक मामले समय-समय पर सामने आते रहते हैं। लैंगिक रूप से संवेदनशील और जातीय संकीर्णताओं और भेदभाव से मुक्त वातावरण की समाज और स्कूल में जरूरत है। लेकिन भिन्न प्रकार से योग्य बच्चों के लिए मुसीबतें कई गुणा बढ़ जाती हैं। कई बार तो परिजन ऐसे बच्चों को छुपाए रहते हैं। उनकी पढ़ने की जरूरत एवं क्षमता पर भी कम ही यकीन किया जाता

है।

सामान्य स्कूलों में ऐसे बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा की नितांत आवश्यकता है। सामान्य स्कूलों में विशेष बच्चों को समावेशी शिक्षा प्रदान करने के लिए अध्यापकों और सहपाठियों का अभिमुखीकरण समावेशी समाज बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा। लेकिन साथ ही स्कूलों में तमाम प्रकार की ढ़ांचागत एवं मानसिक बाधाओं को समाप्त करना होगा और सुविधाएं उपलब्ध करवानी होंगी। स्कूलों में बनाए गए विशेष शौचालयों की बात करें तो वे अधिकतर अध्यापकों द्वारा ज्यादा इस्तेमाल किए जाते हैं, बच्चों द्वारा कम। जिन स्कूलों में बड़ी संख्या में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे हैं, वहां पर उनके लिए विशेष शिक्षकों की नियुक्ति की तरफ तो ध्यान ही नहीं दिया जा रहा है। ना ही स्कूलों के ढ़ांचागत विकास के लिए ही कोई प्रबंध किए गए हैं। हां खण्ड स्तर पर एक स्कूल में एक समावेशी संसाधन कक्ष जरूर विकसित किया गया है। इस कक्ष में अलग-अलग दिक्कतों की विशेषज्ञता वाले विशेष अध्यापकों की तैनाती भी की गई है। खण्ड स्तर पर तैनात ये विशेष अध्यापक विशेष बच्चों का सर्वेक्षण, मेडिकल कैंप, अभिभावकों के परामर्श शिविर, विशेष खेलों के आयोजन सहित कुछ गतिविधियों का संयोजन एवं संचालन तो कर पाते हैं, लेकिन विशेष बच्चों के शिक्षण के लिए ठोस उपाय तो हो ही नहीं पाते हैं।

यह सर्वविदित है कि जो छात्र-अध्यापक अनुपात सामान्य बच्चों का होता है। वह विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का नहीं हो सकता। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए व्यक्तिगत शैक्षिक योजना बनाई जाती है। इसमें फीजियो थेरेपी, स्पीच थेरेपी, म्यूजिक थेरेपी, ब्रेल लिपि, ओरियेंटेशन एवं मोबिलीटी, संकेतक भाषा सहित अनेक कौशलों के विकास की जरूरत हो सकती है और उसी तरह से अलग-अलग विशेषज्ञताएं रखने वाले व्यक्ति भी जरूरी हैं। लेकिन समावेशी शिक्षा के सपने को साकार करने के लिए पांच से दस विशेष बच्चों पर कम से कम एक विशेष अध्यापक की नियुक्ति होना तो बेहद अनिवार्य है। साथ ही फीजियो-थेरेपी, स्पीच थेरेपी सहित अन्य सहायक सेवाओं के लिए भी विशेषज्ञों की तैनाती होनी चाहिए। प्रदेश के स्कूलों में दिल्ली की तर्ज पर हर एक स्कूल में एक विशेष अध्यापक अनिवार्य रूप से नियुक्त करना चाहिए ताकि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की विशेष जरूरतों और विशेष दिक्कतों पर ध्यान दिया जा सके।

पहली से आठवीं कक्षा के बीच भले ही बच्चों का नाम ना काटा जाए, लेकिन विशेष आवश्यकता वाले बहुत से बच्चे पहली कक्षा में दाखिला लेने के बाद आठवीं शिक्षा पूरी नहीं कर पाते हैं। या तो उनके अनुकूल स्कूलों में माहौल की कमी है या फिर उन्हें कक्षाओं में बोझ माना जाता है। ऐसे में रोज-रोज अपमान झेलने से बच्चे या उनके अभिभावकों को स्कूल से विदाई लेना बेहतर लगता है। आठवीं के बाद नौवीं से बारहवीं तक विशेष आवश्कता वाले बच्चों की पढ़ाई को जारी रखने की दिशा में कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। यदि मंद मानसिक विकास वाले बच्चों पर भी उनके सहपाठियों जैसी परीक्षाएं थोंपी जाएंगी तो यह विशेष बच्चों के मानवाधिकार का सरासर उल्लंघन ही तो होगा। विशेष बच्चों को जरूरत अनुसार दसवीं और बारहवीं की बोर्ड की परीक्षाओं से छूट मिलनी चाहिए।

अध्यापक प्रशिक्षण

अध्यापक शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया का केन्द्रीय किरदार है, जिन्हें बच्चों के मन-मस्तिष्क में पैठकर उनके सर्वांगीण विकास की योजना पर अमल करना होता है। अध्यापन कर्म लठमार कार्य नहीं है, जैसा कि दिखता और दिखाया जाता है। यही कारण है कि अध्यापकों के गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण की भी जरूरत है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में जिला स्तर पर प्राथमिक शिक्षकों के लिए जिला शैक्षिक एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाईट) खोले जाने का प्रावधान किया गया था। इस समय प्रदेश में 21 डाईट, 2 खण्ड अध्यापक शिक्षा संस्थान और दो राजकीय मौलिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान हैं। एक समय में खण्ड स्तर पर अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान खोलने की योजना सरकारी स्तर पर बनी थी, लेकिन बाद में सरकार की दिशा निजीकरण की तरफ मुड़ गई। इस समय प्रदेश में गिने-चुने ही सरकारी बी.एड. कॉलेज हैं।

निजी क्षेत्र में चल रहे अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के मालिकों एवं प्रबंधकों का एकमात्र ध्येय पैसा कमाना है। यहां पर पैसा फेंक कर तमाशा देखा जा सकता है। बिना कक्षाएं लगाए और शिक्षण अभ्यास करवाए ही डिग्रियां बांटी जा रही हैं। निजी संस्थानों में प्रशिक्षण एक दिखावा और छलावा बन कर रह गया है। यह स्थिति सभी को पता है, लेकिन सरकारी स्तर पर स्थिति में बदलाव के लिए कोई प्रयास नहीं हो रहा। इसका कारण यह है कि अधिकतर प्रशिक्षण संस्थान एवं कॉलेज नेताओं या रसूखदार लोगों द्वारा चलाए जा रहे हैं। अध्यापकों के प्रशिक्षण की गुणवत्ता बढ़ाए बिना स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता को कैसे बढ़ाया जा सकता है?

सेवा पूर्व प्रशिक्षण की तरह सेवाकालीन अध्यापक प्रशिक्षण की स्थिति भी ज्यादा अच्छी नहीं है। यहां भी अध्यापकों के प्रशिक्षण का जिम्मा एक बारगी तो निजी कंपनियों या कम प्रशिक्षित लोगों को देने की कोशिश की गई। अध्यापकों की प्रशिक्षण कार्यशालाएं नाम लेवा होती हैं, जिनमें टाईमपास ज्यादा किया जाता है। उत्साही, प्रयोगशील और उच्च शिक्षित अध्यापकों को अध्यापक प्रशिक्षण कार्यशालाओं का जिम्मा देकर स्कूलों में पढ़ रहे बच्चों की हित में सकारात्मक माहौल एवं मानसिकता बनाई जा सकती है।

बच्चों और अध्यापक का संबंध

स्कूलों में विविध सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के बच्चे एक साथ पढ़ते हैं। सामाजिक बदलाव के लिए उनमें अपार क्षमताएं और संभावनाएं हैं। अध्यापक का बच्चों के साथ आत्मीयतापूर्ण जीवंत संबंध जीवन की कंटीली-पथरीली राहों में उनका सहारा बन सकता है। लेकिन ये संबंध रूढ़ मान्यताओं, परंपरागत मूल्यों और कठोर नियमों पर आधारित होते हैं। इन नियमों में बच्चों के मन-मस्तिष्क की संभावनाओं का ध्यान नहीं रखा जाता, बल्कि स्कूल में अनुशासन व व्यवस्था बनाए रखने का ख्याल किया जाता है। अध्यापक पाठ्यक्रम को शीघ्र पूरा करवाने व परीक्षा की तैयारी करवाने की भागदौड़ में इतना अधिक व्यस्त रहता है कि वह पाठ्यक्रम के विषयों को जीवन के साथ जोड़ने, क्रियाओं के द्वारा समझने-समझाने, बच्चों की जिज्ञासाओं के संसार को समझने, आगामी प्रश्नों से रूबरू होने के अवसरों से वंचित रह जाता है। बच्चों के साथ यांत्रिक और ऊपरी संबंधों के कारण अध्यापक सीखने और आत्मविकास

के अवसरों को खो देता है।

अध्यापक और विद्यार्थी के संबंधों का सबसे पीड़ादायक पहलू शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सजा का प्रयोग है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम के लागू होने के बाद सजा और शिक्षा पर चला विमर्श आज उल्टी दिशा में दौड़ पड़ा है। अधिकतर अध्यापकों की भावनाओं के अनुकूल सजा को शिक्षा का अहम हिस्सा बताया जा रहा है। उन्होंने अपने डंडे उठा लिए हैं। सजा का और भले ही जो प्रभाव हो, इससे बड़ी संख्या में बच्चे स्कूलों से दूर चले जाते हैं। डर में बच्चे ना तो स्कूल में अपनी रचनात्मकता और क्रियाशीलता का विकास कर सकते और ना ही बाहर। डंडे के डर से स्कूल छोड़ कर गए बच्चे बड़े होकर कैसे नागरिक बनेंगे, इसके बारे में भी विचार किया जाना चाहिए।

अध्यापक बच्चों को लताड़ने-फटकारने, दुत्कारने और भगाने की प्रवृत्ति को त्याग कर उनके साथ बराबरी के मानवता भरे संबंध बनाकर शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को और अधिक आनंददायी बना सकते हैं। बेहतर संबंधों पर आधारित शिक्षा से बच्चे और अध्यापक दोनों रोमांचकारी अनुभवों से गुजरता हुआ पाएंगे।

हरियाणा में स्कूली शिक्षा विभिन्न प्रकार की समस्याओं से जूझ रही है। अध्यापकों, मानव संसाधनों और सुविधाओं की कमी एक बड़ी समस्या है। शिक्षा पर निवेश में लगातार कटौती के रूझान दिखाई दे रहे हैं। शिक्षाविद लंबे समय से शिक्षा का बजट बढ़ाने की मांग कर रहे हैं। कल्याणकारी राज्य की धारणा के अनुरूप जिम्मेदारियों से सरकारें लगातार भाग रही हैं। लोगों के बुनियादी अधिकारों की रक्षा के लिए निजी क्षेत्र के रहते हुए भी शिक्षा और स्वास्थ्य की मजबूत संस्थाओं व संस्थानों का होना बेहद जरूरी है। लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समानता और न्याय जैसे संवैधानिक मूल्यों के आधार पर ही शिक्षा के ढ़ांचे को मजबूत बनाए जाने की जरूरत है। शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था को और अधिक जवाबदेह और जनपक्षधर बनाकर हम सभी बच्चों को गुणात्मक शिक्षा प्रदान कर सकते हैं।

सम्पर्क-09466220145

●

बाजार के हवाले शिक्षा

❒ सुरेन्द्र ढिल्लों

हरियाणा प्रदेश में शिक्षा के क्षेत्र में आए परिवर्तनों पर जैसे ही नजर जाती है, तो यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है कि प्रदेश में विद्यालयों-महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों की संख्या में भारी वृद्धि हुई। शिक्षण संस्थाओं की बढ़ती संख्या का यह सिलसिला आज भी बदस्तूर जारी है। राज्य की विभिन्न सरकारों ने इसे शिक्षा के प्रसारीकरण का इकलौता अचूक उपाय मानते हुए इस दिशा में निरंतर कदम बढ़ाती आई हैं और इसी उपलब्धि के दम पर राज्य को शिक्षा के उभरते हुए 'हब' के रूप में विज्ञापित एवं प्रचारित करती आ रही है।

शिक्षा नीतियों में भी समय के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के अनुरूप निरंतर परिवर्तन हुए हैं। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा कानून को लागू करना, सर्वशिक्षा अभियान का चलाया जाना, राजकीय विद्यालयों में वोकेशनल शिक्षा चालू करना व तकनीकी शिक्षा को बड़े पैमाने पर बढ़ावा देने के प्रयास शिक्षा क्षेत्र में हो रहे नीतिगत परिवर्तनों का फल हैं।

नब्बे के दशक में देश में आई आर्थिक उदारीकरण की नीतियों के साथ-साथ, सॉफ्टवेयर जगत में भारतियों की प्रतिभा की धाक जमाने के कारण इस प्रकार का ढिंढोरा पिटा गया कि भारत शीघ्र ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार व सेवा क्षेत्र में एक महाशक्ति बनने जा रहा है। परिणामस्वरूप हरियाणा के गुड़गांव में भी अनेक कॉल सेंटर खुल गए और अंग्रेजी जानने वालों के लिए रोजगार के अनेक नए अवसर खुल जाने का सपना दिखाया जाने लगा। अंग्रेजी भाषा ने फिर एक नयी अंगड़ाई ली और हरियाणा सरकार ने राज्य के विद्यार्थियों को अंग्रेजी में पारंगत करने के लिए एक नया बीड़ा उठाया। स्कूल और कालेजों में न केवल एजुसैट के माध्यम से विद्यार्थियों को 'सॉफ्ट स्कील' व अंग्रेजी बोलना सिखाने का कार्यक्रम चलाया गया, अपितु स्कूलों में पहली कक्षा से ही अंग्रेजी पढ़ाना अनिवार्य कर दिया गया। गैर सरकारी स्कूल चाहे वे गांव में स्थित या कस्बे में पूर्णत: अंग्रेजी माध्यम के स्कूल बन गए। इनमें पढ़कर बड़ी हुई पीढ़ी को न तो अच्छी तरह अंग्रेजी आती, न हिन्दी और न वे अपनी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास व समाज से जुड़ाव महसूस करते हैं और न उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा हो पाया है।

यही व समय था जब हमारी शिक्षा व्यवस्था, बाजार के हवाले कर दी और सरकारों ने भी पूरी शिक्षा व्यवस्था को बड़े निर्लज्ज भाव से व्यापारिक व निजी हाथों में सौंप दी। जगह-जगह निजी क्षेत्र में खुलने वाले इंजीनियरिंग-तकनीकी संस्थानों, चिकित्सा संस्थानों, बीएड, डीएड, मैनेजमैंट व प्रौद्योगिकी के संस्थानों की बाढ़ सी आ गई और रोजगारोन्मुखी शिक्षा पाने की चाहत रखने वालों के वित्तीय शोषण का एक नया दौर आरंभ हुआ। भारी फीस लेकर ज्ञान बेचने वालों की दुकानें खुल गई और मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थानों के समानांतर कोचिंग संस्थानों के फैले साम्राज्य ने शिक्षा को एक नया ही रूप दे डाला।

किसी जमाने में संभवत: डिग्री हासिल कर लेना रोजगार पा लेने की गारंटी माना जाता हो, परन्तु आज डिग्री मात्र अर्जित कर लेने से किसी को नौकरी नहीं मिल सकती। आज भी हमारे विद्यार्थी व उनके अभिभावक शिक्षा को नौकरी से जोड़कर देखते हैं। खेद की बात है कि सरकार भी इसी बात में विश्वास करती है। परन्तु हमें तो आज ऐसी शिक्षा व्यवस्था चाहिए जो रोजगार लेने वाले नहीं, रोजगार देने वाले पैदा कर सके। कम से कम इस दृष्टि से तो तमाम परिवर्तनों के बावजूद हमारी शिक्षा व्यवस्था उस लक्ष्य की ओर उन्मुख दिखाई नहीं देती।

सम्पर्क: 94164-85666

●

भारत में उच्च शिक्षा और युवा वर्ग

□रेनू यादव

आज भारत का उच्च शिक्षा का ढांचा पूरे विश्व में अमेरिका और चीन के बाद तीसरे स्थान पर है। सरकारी रिपोर्टों के अनुसार उच्च शिक्षण संस्थानों और उनमें पढ़ने वाले बच्चों एवं शिक्षकों में लगातार वृद्धि हो रही है। भारत में उच्च शिक्षा का सकल नामांकन अनुपात लगभग 20.4 प्रतिशत है, वही हरियाणा का ग्रॉस एनरोलमेंट अनुपात अगर देखा जाए तो यह कुछ ही सालो में 20.40 प्रतिशत से बढ़ कर लगभग 27.9 प्रतिशत हो गया है।

हमारे यहां पर कुल जनसंख्या में आज युवाओं की अच्छी-खासी संख्या है, जहां हमारे देश में 3,560 लाख जनसंख्या लगभग 10-24 वर्ष की आयु की है, वही हरियाणा में 15 से 24 वर्ष की आयु के युवा लगभग 52,45,000 है।

ऐसी स्थिति में सवाल ये उठता है कि क्या उच्च शिक्षा युवाओं के सपनों और उम्मीदों को पूरा करने में मदद कर पा रही है? होना तो यही चाहिए कि उच्च शिक्षा युवाओं के ज्ञान में और अधिक वृद्धि करे, ज्यादा प्रभावशाली और आत्मविश्वासी बनाये, लेकिन हालात कुछ और ही बयां कर रहे हैं। एक ओर तो मानविकी विषयों की तरफ से आम छात्रों का रुझान लगातार घटता जा रहा है जिसका कारण रोजगार है क्योंकि छात्र उन पाठ्यक्रमों या कोर्सों की तरफ आकर्षित हो रहे हैं जिनसे उन्हें रोजगार हासिल करना आसान लगता है। दूसरा आज उच्च शिक्षा प्राप्त बहुत बड़ी युवाओं की आबादी डिग्रियां हासिल करके भी बेरोजगारों की भीड़ में पहले से ही शामिल है। जिसका एक कारण गुणवत्ता की कमी है, अगर हम गुणवत्ता युक्त शिक्षा की बात करें तो हरियाणा के स्नातक के विद्यार्थियों को यह ना के बराबर ही मिलती है और स्नातकोत्तर की गुणवत्ता का स्तर भी बहुत कम है, हालात ये बने हुए हैं, कि ये उच्च शिक्षाधारी अधिकतर अपनी पढाई पूरी करके दिल्ली की तरफ किसी प्राइवेट संस्थान से कोचिंग लेते हुए नजर आते हैं।

भारत में बेरोजगार युवाओं की संख्या लगभग 15.50 प्रतिशत है जबकि हरियाणा में बेरोजगारी दर लगभग 34 प्रतिशत है। बेरोजगारी अपनी चरम सीमा पर है, ऐसे में पढ़े -लिखे युवाओं में भी निराशा घर करती जा रही है। अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं जब फतेहाबाद की रहने वाली दो बहनों ने बेरोजगारी की समस्या से परेशान होकर अप्रैल माह में अपनी जान दे दी। उससे पहले भी ऐसे मामले सामने आये हैं। एक सरकारी चपड़ासी की नौकरी के लिए हजारों 'पी.एच.डी.' धारक आवेदन करते हैं, ऐसे में स्नातक और स्नातकोत्तर के हालात तो समझ में आते ही हैं।

व्यावसायिक और प्रबन्धन से जुड़े विषयों का अध्ययन करने वाले छात्रों के मामले में भी रोजगार की हालत 'वही ढाक के तीन पात' वाली है। 'प्रोफेशनल डिग्री' लेने के बाद भी युवाओं को समझ में नहीं आता कि किस दिशा में जाना चाहिए। 'बी. टेक.' में अलग-अलग विशिष्ट किस्म की डिग्री हासिल करने वाले युवा भी आखिर में एस.एस.सी. या सी.जी.एल. की तैयारी में सिर खपाते नजर आ जाते हैं।

छात्रों का अच्छा-ख़ासा हिस्सा गुणवत्ता युक्त शिक्षा हासिल करने के मकसद से विदेशों में भी शिक्षा ग्रहण करने जाता है ताकि वहां पर पढ़ाई करके ज़्यादा से ज़्यादा पैसा कमा सके। परन्तु इस किस्म की उच्च शिक्षा अधिकतर आबादी की पहुँच से तो बाहर ही है।

सरकारें सार्वजनिक शिक्षा से हाथ खींच कर इसे बिकाऊ माल में तब्दील कर रही हैं। व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा के नाम पर तमाम कोर्सों को स्व-वित्तपोषित बनाया जा रहा है। सरकार ने शिक्षा के बजट में करीब 50 फ़ीसदी की कटौती की है और आइआइटी की फीस में भी करीब 122 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की है।

यदि सही मायने में शिक्षा है तो वह लोगों को समाज में फैली समस्याओं से मुंह मोड़ना नहीं सिखाती बल्कि उनके समाधान की तरफ उन्मुख करती है। बेहतर शिक्षा न केवल समाज के मानस का निर्माण करती है बल्कि इसे बेहतरीन रूप से ढालती भी है। शिक्षा का मकसद सबको समानता से देखने का दृष्टिकोण पैदा करना है पर आमतौर पर यह देखा जाता है कि हरियाणा के महाविद्यालय में केंद्रीय पुस्तकालय एवम महिला छात्रावास के बन्द होने में भी अन्तर पाया जाता है।

विश्वस्तरीय सर्वेक्षण और शोधों में हमारे विश्वविद्यालय एवम महाविद्यालय बहुत अधिक पिछड़े हुए पाये जाते हैं। उच्च शिक्षा ऐसी होने चाहिए जो युवाओं को लिंग, रंग, जाति और धर्म से ऊपर उठाए यानी हर चीज के प्रति सही नजरिए से सोचने की कुव्वत भी प्रदान करे। परन्तु हमारे यहां जमीनी हकीकत इससे बहुत अलग है। इसका एक उदाहरण तो हाल में ही घटित आरक्षण आन्दोलन है जिसमें जातिवाद का जहर इस कदर फैला कि युवा वर्ग भी इसकी चपेट में आ गया जिससे उसे एक भयावह रूप मिला। होना तो यह चाहिए था कि प्रदेश के पढ़े-लिखे युवा आरक्षण के सवाल पर तमाम नेताओं के बयानों की असलीयत लोगों के सामने रखते और उनसे आपस में एक-दूसरे का सिर न फोड़ने की अपील करते, पर यहां तो खुद ऐसे नौजवान ही वही सब कुछ कर रहे थे।

उच्च शिक्षा की शैली ऐसी हो कि वह संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठा कर युवाओं को तार्किक तौर पर सोचना सिखाये किन्तु हमारे यहाँ पर शिक्षा व्यवस्था कहीं न कहीं उद्योग की सेवा में तो लगी है और ज्ञान-तर्क-विवेक और जनवादी मूल्यों से रिक्त है।

शिक्षा का काम अज्ञान का बोझ हटाना होता है किन्तु हमारे यहाँ पर शिक्षा स्वयं में ही एक बोझ बनकर रह गयी है।

सम्पर्क-94662-57590

●

संभ्रात वर्ग की पहुंच से भी बाहर

स्वास्थ्य सेवाएं तथा उनकी कीमत

❑डा. पंकज गुप्ता

भारत में 1980-90 के दशकों तक 'हस्पताल' सुविधा ज्यादातर सरकारी या पब्लिक क्षेत्र में थी। आर्थिक उदारीकरण के बाद ढांचागत परिवर्तन से सरकारों ने निजी संस्थाओं के लिए सस्ती जमीन, टैक्स छूट, आयात पर छूट इत्यादि की घोषणा की, जिससे बड़े निजी अस्पतालों की स्थापना की शुरुआत हुई।

आज हालात यह हैं कि सरकारों ने अपने स्वास्थ्य ढांचों पर खर्चों की वृद्धि को नहीं बढ़ाया। बड़े उन्नत तथा अनुसंधान उन्मुख संस्थानों को समय की दौड़ में पिछाड़ दिया, जिसका फायदा जल्दी से निजी क्षेत्र ने उठाया।

सरकारों ने नए संस्थान तो बढ़ाए ही नहीं, उल्टा पहले के संस्थानों को 'आत्मनिर्भर' बनाने के नाम पर उपयोगकर्त्ता शुल्क तथा सेवाओं को अनुबंध पर कर दिया। यह सब करके सरकारों ने उच्च स्वास्थ्य सेवाओं से अपना पीछा छुड़ाना चाहा तथा अपने-आप को केवल प्राथमिक स्तर की चिकित्सा तक सीमित करने की कोशिश की। इसे लेकर वह लोगों में यह भ्रम फैलाते रहे कि वह अपनी 'स्वास्थ्य के लिए सामाजिक प्रतिबद्धता' को नहीं भूली है।

सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के बजट में कटौती 90 के दशक में शुरू हुई। 1992-93 के आर्थिक सुधारों ने पब्लिक स्वास्थ्य सेवाओं के संसाधनों में कटौती की। पांचवें वेतन आयोग का असर यह हुआ कि बजट का विनियोजन (allocation)केवल कर्मचारी वेतन को ही पूरा कर पाता है। आधुनिकीकरण का पूरा बोझ अस्पतालों पर डाला गया कि वो एक उपयोगिता शुल्क (user fee) लें। अब ये गरीबों के ऊपर दोहरी मार पड़ने लगी। एक तरफ तो जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में संस्थानों की संख्या तथा सुविधाएं न बढ़ाए जाने से सरकारी अस्पतालों में इतनी भीड़ रहने लगी कि वहां जाने से लोगों को डर लगने लगा। दूसरा वहां उपयोगिता शुल्क भी लगने लगा, जिससे गरीब और गर्त में धकेला गया।

ये अस्पताल सरकारी बजट की कमी से सुविधाएं तथा समयानुसार आधुनिकीकरण से वंचित रहे, जिससे प्राईवेट क्षेत्र और फलीभूत हुआ। इसी समय में बहुउद्देशीय प्राइवेट संस्थानों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है, परन्तु हमारी राज्य सरकार द्वारा उच्च स्वास्थ्य सेवा के नये केंद्र नहीं स्थापित किये गए।

स्थिति आज यहां तक है कि कभी रेफरल अस्पताल के नाम पर पीजीआई, एआईएमएस आदि अस्पतालों का नाम गर्व से लिया जाता था, उनके नाम की जगह अब प्राईवेट मल्टी-स्पेशयलिटी अस्पतालों ने ले ली है। इन उच्च सरकारी अस्पतालों की रीढ़ की हड्डी माने जाने वाले प्रोफेसर, हेड आफ डिपार्टमेंट तथा उच्चतम कैरियर के डाक्टर भी प्राइवेट मल्टी-स्पेशयलिटी अस्पतालों की चकाचौंध से खुद को दूर न रख पाए। उसकी वजह इन प्राइवेट संस्थानों द्वारा दिए जाने वाला पैसे का लालच, सरकारी राजनीति तथा लाल-फीताशाही से मुक्ति, ऐसा इंफरास्ट्रक्चर तथा तकनीक का प्रदान करना, जिससे डाक्टर को काम करने का उच्चतम वातावरण मिले।

इसका खामियाजा आम जनता को भुगतना पड़ रहा है। प्राइवेट अस्पतालों का मकसद कमाई है, न कि स्वास्थ्य सेवा। हर चीज की एक कीमत है। कमाई बढ़ाने के दबाव में कई बड़े प्राइवेट अस्पताल बिना जरुरत वाली जांच तथा इलाज भी करते हैं। जिन परीक्षण तथा सेवाओं की जरूरत नहीं भी है, वो भी लोकप्रिय कर बेची जाती हैं। यह सब तर्कसंगत देखभाल, चिकित्सा नैतिकता तथा मरीज की सेवा को ताक पर रखकर किया जाता है।

दूसरी तरफ सरकारी उच्च सेवाओं संस्थानों में ऊपर लिखी कमियों के कारण गरीब आज भी इन आधुनिक सेवाओं से वंचित है।इस पर एक विचारणीय पहलू यह भी है कि धीरे-धीरे विशेषज्ञ चिकित्सकों की कमी अब सरकारी प्राथमिक स्वास्थ्य स्तर (जिसकी जिम्मेवारी सरकार लेती है) तक भी खलने लगी है।

इन सबका निचोड़ यह है कि बेशक केंद्र तथा राज्य सरकारों ने मूलभूत स्वास्थ्य सेवाएं (जो कि एक क्लीनिक या नर्सिंग होम समान सेवाओं) पर तो अपना खर्च जारी रखा है, परंतु उन पर भी वह गुणवत्ता की कसौटी पर पिछड़ती नजर आने लगी है। लेकिन चिंता का विषय यह है कि सरकार ने उच्च स्वास्थ्य सेवाओं से अपना पल्ला झाड़ने की जो कोशिश की है, उसका खामियाजा केवल और केवल गरीब भुगत रहा है। भारत जैसे विशाल देश, जो दुनिया के एक-तिहाई गरीबों का घर है, वहां पर उच्च स्वास्थ्य सेवाओं को 100 प्रतिशत प्राईवेटाइज कर उन्हें इन सेवाओं से वंचित करने के घातक दुष्परिणाम हैं।

इसलिए सरकारों को अपनी स्वास्थ्य सेवाओं का बजट आबंटन कम से कम दोगुना करना होगा तथा नए आधुनिक चिकित्सा से लैस मिनी पीजीआई जैसे संस्थान राज्यों में बनाने चाहिएं।

अगर सरकारी क्षेत्र में स्पेशयलिटी अस्पताल, क्लीनिक तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र लंबे समय तक न रहे तो स्वास्थ्य सेवाएं तथा उनकी कीमत न केवल गरीब, बल्कि संभ्रात वर्ग की पहुंच से भी बाहर हो जाएगी तथा यह स्थिति सरकारों के लिए भयावह होगी।

सम्पर्क : 94160-88557

लघु कथा

और वह मर गई

शंकर पुणतांबेकर

सत्य ने मां, नीति के पास आकर कहा, 'आज मैंने एक बहुत बड़ा प्राणी देखा।' 'कितना बड़ा...?' नीति ने पेट फुलाकर दिखाया।'नहीं, इससे बड़ा।' नीति ने फिर पेट फुलाया।'नहीं, इससे भी बड़ा मां!' सत्य ने कहा। नीति पेट फुलाती गई और सत्य कहता गया - इससे भी बड़ा। सत्य ने जिस प्राणी को देखा था, भ्रष्टाचार था। नीति उसके दसवें हिस्से जितना पेट नहीं फुला पाई कि वह फूट गया। नीति बेचारी मर गई।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में हरियाणा के 50 साल

❑डा. रणबीर सिंह दहिया

एक तरफ हरियाणा में धनाढ्य वर्ग है दूसरी तरफ बड़ा हरियाणा इस विकास की अन्धी दौड़ में गिरता पड़ता गुजर बसर कर रहा है। एक हिस्सा ऐसा भी है जिसके पास आवास और रोटी रोजी का संकट गहराता जा रहा है।

धनाढ़्य वर्ग के स्वास्थ्य की समस्याओं के समाधान के लिए पिछले दो दशकों में प्राईवेट सेक्टर स्वास्थ्य क्षेत्र में काफी बढ़ा है। दूसरी तरफ आम आदमी के लिए और उसके बच्चों के लिए सरकारी अस्पतालों के ढांचे के चरमराते जाने के कारण इलाज उनकी पहुंच से दूर होता जा रहा है। हरियाणा में 1966 से लेकर 1990 और फिर 2005-2006 तक स्वास्थ्य सेवाओं के ढांचे का किसी हद तक विकास हुआ मगर उसके बाद प्राईमरी और सैकण्डरी स्वास्थ्य के ढांचे की रफ्तार धीमी होती चली गई।

यह कहा जा सकता है कि 1966 से लेकर अब तक स्वास्थ्य सेवाओं के ढांचे में 5 गुणा बढोतरी हुई है सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और अस्पतालों के संदर्भ में देखा जाए तो। मगर आज की जनसंख्या 2011 के आंकड़ों के हिसाब से यदि आकलन करें तो तस्वीर ज्यादा उत्साहवर्धक नहीं नजर आती। 2011 के सर्वेक्षण के हिसाब से हरियाणा की कुल जनसंख्या 25,351,462 है। इसमें 65.12 प्रतिशत लोग गांव में रहते हैं मतलब 16,509,359 लोग। भारत सरकार के मापदण्डों के हिसाब से 5000 जनसंख्या पर एक उप स्वास्थ्य केन्द्र अर्थात सी एच सी होना चाहिये। 30,000 की जनसंख्या पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और एक लाख की आबादी पर एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र होना चाहिये।

हरियाणा की स्वास्थ्य सेवाओं का ढांचा-दिसम्बर,2015 यदि ग्रामीण जनसंख्या के हिसाब से देखें :

संस्था	जो हैं	जो चाहिये
उप स्वास्थ्य केन्द्र	2630	3301
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	486	550
सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	119	165

भारत सरकार के बनाए गए मापदण्डों के हिसाब से प्रत्येंक सामुदायिक केन्द्र में एक सर्जन , एक स्त्री रोग विशेषज्ञ, एक शिशु रोग विशेषज्ञ और एक फिजिसीयन होना चाहिये। 60 सालों के बावजूद हरियाना की इन 119 सी.एच.सी.की हालत काफी खराब है। पी. एच. सी की भी हालत अच्छी नहीं कही जा सकती।

सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं का ढांचा जरुरत के हिसाब से विकसित नहीं किया गया। जो है उसको भी सुचारु रुप से क्यों नहीं चलाया जा रहा। क्या महज बिल्डिंग बना देने से और बड़े कमीशन खाकर उन बिल्डिंगों में आधुनिक मशीनें खरीद कर रख देने से काम चल जायेगा? बिल्कुल नहीं। दरअसल हमारी योजनाओं में परे सिरे से ही मानव फैक्टर गायब है।

प्रदेश के जिलों गुड़गांव, रोहतक, हिसार, भिवानी, फरीदाबाद और सोनीपत में विशेष आर्थिक पैकेज के तहत करोड़ों रुपये की परियोजनांए शुरु की गई हैं जिसके तहत स्वास्थ्य सेवाओं के आधारभूत ढांचे को विकसित करने के लिए इन जिलों के अस्पतालों को अपग्रेड करके सुपर स्पैशिलिटी अस्पताल बनाये जा रहे हैं।

बहुत ही हाईटेक उपकरण जो पिछले सालों में खरीदे गए वो बहुत कम जगह और कमतर स्तर पर इस्तेमाल किये जा रहे हैं। यहां पर उपयुक्त स्टाफ की कमी को तत्काल पूरा करते हुए इसके लिए सम्बंधित विशेषज्ञों, डॉक्टरों, नर्सों व पैरामैडिकल स्टाफ को उपयुक्त ट्रेनिंग देने की भी आवश्यकता है।

प्रदेश में एम.बी.बी.एस.की सीटें बढ़ी हैं मगर इन विद्यार्थियों की गुणवता पूर्ण मैडीकल शिक्षा के लिए जरुरी फैकल्टी के साथ-साथ की (Key)इन्फ्रास्ट्रक्चर की भी भारी कमी है। बेहतर शिक्षक मिल ही नहीं है। मैडीकल कालेजों में शिक्षकों की बड़ी समस्या है। चिकित्सा शिक्षा की गुणवता में काफी कमी आई है।

निशुल्क सर्जीकल पैकेज योजना के तहत 2009 से बी. पी. एल परिवारों एवं गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले व अधिसूचित झोंपड़ पट्टियों एवं बस्तियों के निवासियों के सभी आपरेशन मुफ्त करने की निशुल्क सर्जरी की सेवा ढंग से लागू नहीं की जा रही। इंदिरा बाल स्वास्थ्य योजना 26 जनवरी 2010 से लागू की गई। जिसके तहत अठारह वर्ष तक की आयु के बच्चों के स्वास्थ्य कार्ड बना कर सरकारी अस्पतालों में उनके स्वास्थ्य की निषुल्क जांच व ईलाज किया जाता है। बहुत से लोगों को इन सब योजनाओं से वाकिफ ही नहीं करवाया गया।

स्वास्थ्य सुविधाएं देते हुए मध्यम दर्जे के कार्यकर्ताओं (नर्स, ए. एन. एम., और पैरा मैडिकल कर्मी) ये कार्यकर्ता ही लोगों की समस्याओं के सम्पर्क में आते हैं। परन्तु खुद के स्वास्थ्य के क्षेत्र के काम के विश्लेशण में इनकी भागीदारी न के बराबर है। पहली बात तो यह कि निचले दर्जे में होने के कारण इनसे सिर्फ आदशों के पालन की अपेक्षा की जाती है, निर्णयों में इनकी कोई भागीदारी नहीं होती। दूसरी बात यह है कि इनकी ट्रेनिंग भी इस तरह की नहीं होती कि ये अपने व्यवहारिक अनुभवों से अवधारणा या विचार विकसित कर सकें या उन्हें व्यवहार में बदल सकें।

पब्लिक सेक्टर की स्वास्थ्य सेवाएं ही जनता के बड़े हिस्से की स्वास्थ्य समस्याओं का जवाब हैं निजीकरण नहीं। प्राईवेट ढांचे की सीमाएं और मरीजों का शोषण हरियाणा की जनता सब जानती है। मौजूदा स्वास्थ्य परिस्थिति को पलटने तथा स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाली परिस्थितियां एवं स्वास्थ्य सेवाएं लागू करते हुए सबके लिए स्वास्थ्य के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान जरुरी है ।

लोक वितरण प्रणाली को सार्वभौमिक बनाना जिसके तहत स्थानीय खाद्य पदार्थों को बढ़ावा दिया जाए। समस्त गावों व मोहल्लों में शुद्ध एवं सुरक्षित पेयजल की सार्वभौमिक उपलब्धता हो तथा हर गांव व

मोहल्ले में स्वच्छ शौचालयों तक सार्वभौमिक पहुंच हो। जाति आधारित भेदभाव बुरे स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण सामाजिक कारक है, पूर्णरुप से समाप्त करने हेतु त्वरित एवं प्रभावी कदम उठाये जाएं। मानव द्वारा मैला ढोने वाले समस्त मैनुअल कार्य पूर्ण रुप से प्रतिबन्धित हों। स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में इस भेदभाव से पीड़ित तबकों को प्राथमिकता दी जाए।

स्वास्थ्य के अधिकार का कानून लागू किया जाए जो कि समेकित, उच्चगुणवतापूर्ण, आसानी से उपलब्ध सेवाओं को सुनिश्चित करता हो तथा प्राथमिक, द्वितीय एवं तृतीय स्तरीय सेवायें आवश्यकतानुसार सबको उपलब्ध करवाता हो। सेवा प्रदाता को सेवाओं को उपलब्ध नहीं कराना या मना करना कानूनी अपराध घोषित किया जाए। समस्त स्वास्थ्य सुविधाओं में सेवाओं की गुणवता सुनिश्चित की जाए जिसके तहत स्वास्थ्य सेवाओं को प्रभावी, सुरक्षित, गैर शोषणीय बनायें तथा लोगों को सम्मानपूर्वक सेवायें उपलब्ध हों।

स्वास्थ्य सेवाओं में कार्यरत सभी कर्मचारियों की बेहतरीन शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए सार्वजनिक निवेश को बढ़ाया जाए। चिकित्सा तथा संबन्धित क्षेत्र के उच्च शिक्षा व्यवस्था के वाणिज्यिकरण बंद हो तथा निजी शिक्षण संस्थाओं के व्यवस्थित नियन्त्रण हेतु प्रभावी तन्त्र लागू किया जाए। स्वास्थ्य प्रणाली में समस्त सेवाओं के लिए आवश्यक सभी पद एवं स्थान प्रर्याप्त रुप से सृजित किये जाएं एवं इन पदों को समय समय पर भरा जाये।

. समस्त स्वास्थ्य सुविधाओं में जेनेरिक दवाओं के प्रिस्क्रिप्शन एवं उपयोग को अनिवार्य करार दिया जाये। सभी मानसिक रुप से पीड़ित मरीजों को स्वास्थ्य सेवाएं एवं रक्षा सुनिश्चित की जाये। सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर एक सर्जन, एक फिजिसियन, एक शिशु रोग विशेषज्ञ व एक महिला रोग विशेषज्ञ के प्रावधान के मानक केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग द्वारा तय किये गए हैं। इसके साथ यदि मरीज बेहोशी का विशेषज्ञ नहीं है तो सर्जन और गायनकॉलोजिस्ट तो अपंग हो जाते हैं। इसलिए इन पांचों विशेषज्ञों की नियुक्तियां प्रत्येक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों में की जाए।

सम्पर्क : 98121-39001

●

नशा
एक विकराल समस्या

❑देवदत्त

अभी हाल ही में बनी फिल्म 'उड़ता पंजाब' ने नशे की भयावह समस्या के बारे में चिंतनशील और जिम्मेदार नागरिकों को सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। यह समस्या नई नहीं है, बल्कि काफी अर्से से पंजाब में ही नहीं, अपितु सारे देश में अपने पांव पसार रही है। हरियाणा प्रांत जहां एक तरफ पंजाब से जुड़ा हुआ है, तो दूसरी तरफ दिल्ली से, जो नशे की पहुंच के केंद्र बिन्दू के रूप में देखा जाता है।

अंतराष्ट्रीय स्तर पर नशे का व्यापार एक अनुमान के अनुसार 800 बिलियन डालर का है जो कि तेल के व्यापार से ज्यादा और हथियारों की खरीद के बाद आता है। इससे सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि नशे से जुड़ा एक बड़ा संगठित माफिया है।

भारत वर्ष एक विचित्र भौगोलिक स्थिति में है। जहां एक तरफ इसके पूर्व में म्यांमार, कम्बोडिया व लावोस जैसे देश हैं, जिनको गोल्डन ट्रायंगल और इसके पश्चिम में पाकिस्तान, अफगानिस्तान व ईरान जैसे देश हैं, जिनको गोल्डन क्रेंसन्ट कहा जाता है।

हमारे इस क्षेत्र में ज्यादातर मादक पदार्थों का आगमन पाकिस्तान के रास्ते अफगानिस्तान से है। एक अनुमान के अनुसार एक किलो हेरोईन की कीमत जितनी पाकिस्तान में है, उससे लगभग साढ़े तीन से चार गुणा कीमत दिल्ली में और मुंबई में दिल्ली से दोगुणा तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक लाख डालर और न्यूयार्क की गलियों में 10 लाख डालर तक होने का अनुमान है। यह भी अनुमान है कि विश्व की 95 प्रतिशत अफीम की खेती अफगानिस्तान में होती है। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि मादक पदार्थों की तस्करी और आतंकवाद में कितना गहरा संबंध है।

नशे की शुरुआत को बतौर एक अनुभव, सामाजिक मनोरंजन, कुछ निश्चित हालात में स्व-प्रेरित दवाइयों का प्रयोग और फिर पूर्ण रूप से नशे पर आश्रित होने की आदत के तौर पर देखा और समझा जा सकता है। लेकिन हमारे यहां के परिवेश में बदलते आर्थिक हालात से आई कुछ लोगों में सुख-सुविधा बड़ी संख्या में बढ़ती बेरोजगारी, तनाव, सामाजिक ताने-बाने में अनेक खामियों, व्यक्तिगत आजादी की अपेक्षा और राजनीति में गिरावट आदि अनेक कारण हो सकते हैं।

औषधि निर्माण विधि द्वारा बनाई गई कोई औषधि या प्राकृतिक दवा या द्रव का जब किन्हीं विशेष परिस्थितियों में प्रयोग किया जाता है और इस प्रक्रिया से शारीरिक और मानसिक प्रभाव व बदलाव आते हैं तो इसको औषधि का नाम दिया जा सकता है। इसका सेवन किसी शारीरिक व मानसिक बीमारी के उपचार के लिए भी किया जाता है। एडिक्सन (लत) को इस तरह से भी समझा और देखा जा सकता है कि कोई व्यक्ति विशेष इस औषधि या द्रव पर पूर्ण रूप से निर्भर होकर उसका दास हो जाता है। इसके अभाव में शारीरिक व मानसिक रूप से अच्छा महसूस नहीं करता है। इस प्रक्रिया की निरंतरता को नशा-निर्भरता कह सकते हैं।

मुख्यत: नशे का प्रचलन इस प्रकार देखा जा सकता है:

1. शराब: सभी वर्ग के व्यक्ति
2. अफीम या इससे जुड़े नशे: अफीम का नशा आमतौर पर उच्च वर्ग के व्यक्ति, भुक्की: साधारण व निम्न वर्ग,
   हेरोहन/स्मैक: अति धनाढ्य वर्ग
3. भांग: भांग, गांजा, चरस व हशीस: निम्न वर्ग
4. जीवन रक्षक औषधि: ज्यादातर नौजवान वर्ग, जो औषधि नशे के तौर पर बिना डाक्टर के विमर्श के प्रयोग की जाती है। यह भी

देखा गया है कि पैट्रोल को सूंघना, आयोडैक्स को ब्रैड पर लगाकर खाना और फ्लूड़ को रूमाल या रूई में डालकर सूंघना आदि नशे के रूप में प्रयोग किया जाता है।

पंजाब के साथ लगते हरियाणा के इलाकों में विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों में भुक्की के नशे की लत पाए जाने का अधिक अनुमान है। नशे के फलते-फूलते व्यापार का इस बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि अभी हाल ही में अगस्त 2016 में करनाल में अलग-अलग स्थानों से पकड़ी गई 132 क्विंटल भुक्की को पुलिस की निगरानी में जलाया गया। हरियाणा में नशे के आंकड़े कम उपलब्ध हैं। इस सबंध में गंभीर प्रयास नहीं किए गए हैं। दिल्ली और दिल्ली से सटे इलाकों में रेव पार्टी, मादक पदार्थों की धर-पकड़ को लेकर आए दिन समाचार पत्रों में पढ़ा जा सकता है।

हरियाणा में शराब का सेवन लुके-छिपे होता था, जबकि आज सामाजिक कार्यक्रमों, उत्सवों, विवाह, जन्म दिनों, नववर्ष आदि के मौकों पर शराब परोसने से सामाजिक मान्यता एवं संरक्षण प्राप्त हो चुका है। चुनाव के दिनों में और विशेष तौर पर स्थानीय निकायों व पंचायतों के चुनावों में इसका खूब सेवन होता है और शायद दूसरे मादक पदार्थों का सेवन भी अछूता न रहता हो। कुछ पीर-पैगम्बरों की मजार पर शराब का चढ़ावा प्रसाद समझ कर चढ़ाया जाना कितना उचित है? यह सोचने का विषय है। इसी तरह कुछ धार्मिक उत्सवों पर भांग, सुल्फा आदि को भगवान का प्रसाद समझ कर प्रयोग किया जाता है। आगे चलकर यह एक नियमित आदत का रूप ले सकता है। भांग, सुल्फा आदि का सेवन करने वाले ढोंगी साधु, परा शक्तियों से सीधा संवाद होने का झूठा दावा करते हैं, जबकि इनमें ऐसी कोई सच्चाई नहीं है।

युवा वर्ग नशे की लत की चपेट में है। 15-18 वर्ष की आयु में स्वाभाविक एवं मानसिक परिवर्तनों का दौर होता है और इसी उम्र में अच्छी व बुरी आदतों का निर्माण होता है। शहरी माहौल से संबंधित लड़कियां भी नशे का शिकार बन रही हैं।

ऐसा भी देखने में आया है कि कुछ विशेष पेशे से जुड़े लोग जैसे ट्रक-टैक्सी ड्राईवर जो बिना नींद या आराम किए लंबे समय तक लगातार चलते रहते हैं, ज्यादातर भुक्की और अन्य मादक पदार्थों का, जिनमें शराब भी शामिल है, का सेवन करते हैं।

हरियाणा और पंजाब में जो मजदूर वर्ग अन्य प्रांतों से रोजी-रोटी के जुगाड़ में यहां पर कृषि पेशे एवं अन्य कार्यों के लिए आते हैं, वे आम तौर पर तम्बाकू, गुटखा, खैनी इत्यादि के सेवन के आदी होते हैं। ऐसा पाया गया है कि इस वर्ग से अधिक काम लेने के लिए मालिक इन्हें चोरी-छिपे, भुक्की आदि मादक पदार्थों की आदत डाल देते हैं। इसके विपरीत मालिक मजदूरों के देखा-देखी, तम्बाकू, गुटका, खैनी इत्यादि का धीरे-धीरे सेवन करने की आदत डाल लेते हैं। ऐसा अनुमान है कि इससे 60-70 प्रतिशत मुंह, गला, आहार नली (ग्रास नली) में कैंसर होने का कारण बन सकता है।

नशेड़ी व्यक्ति बहुत कम उम्र में शारीरिक व मानसिक बीमारियों जैसे फेफड़े, लीवर (जिगर), गुर्दे, हृदय रोग यहां तक कि एचआईवी वायरस और एआईडीएस (एडस) जैसी बीमारियों से ग्रस्त होता है। व्यक्ति अपनी वास्तविक उम्र से बहुत ज्यादा बड़ा दिखाई पड़ता है। इसके साथ-साथ ऐसे व्यक्ति मानसिक रोग जैसे निराशा (डिप्रेशन), भ्रम और विशेष तौर पर जीवन के प्रति असुरक्षा की भावना, कमजोर इच्छा शक्ति और आत्महत्या जैसी कमजोर प्रवृतियों का शिकार हो जाते हैं और जीवन की कटु सच्चाइयों और वास्तविकता से पलायन का रवैया अपना लेते हैं।

ऐसे व्यक्ति और इनके परिवार आर्थिक बदहाली और हीनभावना का शिकार बन जाते हैं। सामाजिक तौर पर ऐसे परिवारों में किसी सदस्य का नशेड़ी होना उस परिवार के रूतबे को ठेस पहुंचाता है और परिवार में कलह जन्म ले लेता है। पति के नशेड़ी होने की दशा में स्त्रियां सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं और घरेलू हिंसा का शिकार भी होती हैं। ज्यादातर सड़क दुर्घटनाएं नशे की लत के कारण होती हैं। 2011 की एक रिपोर्ट के अनुसार 1,34,000 व्यक्ति सड़क दुर्घटना में मरते हैं और इनमें से 70 प्रतिशत घटनाएं शराब के सेवन के कारण होती हैं।

नशे से निजात पाई जा सकती है नशे का उपचार करते समय ध्यान में रखा जाता है कि नशा एक बीमारी है और नशेड़ी एक मरीज है। नशा छोड़ने की प्रक्रिया के दौरान नशेड़ी (मरीज) को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिसे विड्राल सिम्पटम का नाम दिया गया है। जैसे नींद का न आना, आंख व नाक से पानी बहना, भूख में कमी आना, पेट में मरोड़ पड़ना, स्वभाव में चिड़चिड़ापन आना, शरीर के अंगों में कंपन और असहनीय दर्द, उदासीनता इत्यादि। इन सभी लक्षणों को ध्यान में रखते हुए एक समग्र उपचार दृष्टिकोण जैसे कि दवाइयां, व्यक्तिगत एवं पारिवारिक परामर्श और अन्य उपचार विधियां जैसे धार्मिक उपचार विधि में प्रार्थना, धार्मिक ज्ञान-विज्ञान, योग की सहज क्रियाएं और मन को शांत और एकाग्र करने के लिए रिलेक्शेसन और मेडिटेशन का सहारा लिया जाता है। अनुभव के तौर पर यह भी कहा जा सकता है कि अगर एक दफा नशेड़ी (मरीज) नशे की लत से बाहर निकल आए तो योग और प्राकृतिक चिकित्सा से मरीज की खोई हुई शक्ति पुन: प्राप्त की जा सकती है।

नशे से छुटकारा पाना एक तरह से नया जन्म लेना है। आज हरियाणा में 50 के लगभग नशा मुक्ति केंद्र हैं, जिनमें से 5 तो हरियाणा बाल विकास परिषद् द्वारा और जिला स्तर के सभी अस्पतालों में मनोरोग चिकित्सकों की देखरेख में और बाकी निजी नशा मुक्ति केंद्र उपलब्ध हैं। फिर भी नशे को इस ढंग से नियंत्रित नहीं किया जा रहा, जिस ढंग से नियंत्रित होना चाहिए।

यदि नशे के विरुद्ध युद्धस्तर के अभियान और जागरूकता की आवश्यकता है। तो मां-बाप अपने बच्चों का विशेष ध्यान रखें कि कहीं वो रात को घर देरी से तो नहीं आते, सुबह लेट तो नहीं उठते, बाथरूम में ज्यादा समय तो नहीं बिताते, चेहरे पर सुस्ती, कमजोरी और आंखें लाल तो नहीं रहती या फिर उनका कम बोलना, एकांत में रहना तो पसंद नहीं करते, जरूरत से ज्यादा बार-बार पैसे की अधिक मांग तो नहीं करते वगैरा-वगैरा।

जागरूक नागरिकों, समाज सेवी संस्थाओं को आगे आना होगा। सरकार और उससे जुड़े तंत्र को कठोर कदम उठाने की जरूरत है।

सम्पर्क : 94675-87128

महिलाओं के प्रति सामाजिक नजरिया

□जगमति सांगवान

जब हम छोटे थे तो हमारी दादी-मांओं, चाची-ताइयों से सुना करते थे कि जब आजादी का आंदोलन जारी था तो वो ये गीत बड़े ही चाव से गाया करती थी 'गाल्यो हे बजा ल्यो छोरियो हे, आजादी आवैगी, हे कासण धोवण-मांजण की मशीन आवैगी' महिलाओं के जिस तलछट हिस्से की आजादी से आकांक्षाओं को इंगित करने वाला यह लोकगीत है निश्चित रूप से उनकी वो आकाक्षाएं तो पूरी नहीं हुई हैं चाहे आजादी आ गई या हरियाणा को अलग राज्य बने 50 साल बीत गए। परन्तु बदलाव तो अवश्य आए हैं।

हरियाणा गठन की 50वीं वर्षगांठ के मौके पर हम महिलाओं की स्थिति को लेकर उपलब्धियों व चुनौतियों का आकलन करें तो स्थिति को संतोषजनक तो नहीं कहा जा सकता। क्योंकि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो हरियाणा की महिलाएं हरियाणा के विकास का दो तिहाई बोझ अपने कंधों पर उठाती हैं। उसके बावजूद जहां भी प्रतिभा प्रदर्शन का मौका मिले स्वयं को सिद्ध करके दिखाती हैं। वर्तमान रियो ओलम्पिक में उपलब्धियां इसका ताजा उदाहरण हैं। उनके अन्दर कुछ कर गुजरने का जज्बा बार-बार प्रदर्शित होता है।

अफसोस इस बात का है कि आज तक भी हमारे परिवारों व हमारी सरकारों ने इन्हें अपनी थाती नहीं बनाया है। हरियाणा का वर्तमान लिंगानुपात इसकी मुंह बालेती तस्वीर है। वर्ष 2011 के अनसुार 1000 पुरुषों पर 866 महिलाएं हैं। 0-6 आयु वर्ग में 1000 लड़कों पर 831 लड़कियां हैं।

महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में बराबर का अधिकार मिला यह बड़ी छलांग है। परन्तु आज तक वो कागजों तक ही महदूद है। इसे व्यवहार में लाने पर विमर्श भी नहीं है। आमतौर पर पिता की मौत के बाद घर की लड़कियों को बुलाकर कुछ उपहार देकर जमीन उनके नाम से उतरवा ली जाती है। पिछलें दिनों जब से जमीनें बिकने लगी हैं तो कुछ बेटियों ने भी चाहा कि उन्हें भी मुआवजे का कुछ हिस्सा मिलना चाहिए। इस पर तमाम तरह की हिंसा व तनाव देखने को मिला है। नतीजा यह है कि अब काफी जगहों पर शादी के समय ही सुसराल वालों से यह लिखवा लिया जाता है कि हम जमीन में कोई हिस्सा नहीं मांगेंगे। महिलाओं के पास इंसानी गरिमा से रहने के लिए कोई आर्थिक आधार नहीं है। इसलिए वो असहनीय हिंसा की शिकार होती है। अभी भी महिलाओं को दादालाही सम्पत्ति में बराबर हकदार बनाने वाले 2005 का संशोधन हरियाणा की सरकार ने आज तक राज्य में लागू नहीं किया है। महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने वाला यह संवैधानिक प्रावधान लागू करने की जरूरत है।

महिलाओं की आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिहाज से उनका रोजगारशुदा होना ही पितृसत्तात्मक जंजीरों को ढीला कर पाएगा। बढ़ते आर्थिक संकट में हर कोई चाहता है कि महिला नौकरीशुदा हो तो ही काम चल पाएगा। जहां पर सरकारी नौकरी में महिलाएं हैं वहां भी उनके प्रति अनेकों तरह के खुले-छुपे भेदभाव व यौन हिंसा होती है। इसके खिलाफ महिला आन्दोलन ने आवाज उठाकर काम के स्थान पर यौन शोषण विरोधी कमेटियों के गठन का प्रावधान करवाया। आज भी ये कमेटियां सभी काम की जगहों पर बनी हुई नहीं हैं तथा जहां बनी भी हैं वहां भी इनकी कार्यप्रणाली विशाखा गाइडलाईन के हिसाब से कम हो रही है।

कुछ ऐसे विभाग हैं जहां केवल महिलाएं काम करती हैं जैसे नर्स, आंगनवाडी, आशा वर्कर, मदरग्रुप इत्यादि। इनमें कार्य परिस्थितियां सुधारने की जरूरत है। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को किसी भी प्रकार के श्रम कानूनों का लाभ नहीं मिल पा रहा। भयानक शोषणकारी परिस्थितियों में इन महिलाओं को काम करना पड़ रहा है। न्यूनतम वेतन भी इनको नहीं मिल पा रहा। वेतन के मामले में महिला पुरुष के बीच भेदभाव जारी है।

आज आए दिन जिस प्रकार की हिंसा व छड़ेछाड़ महिलाओं के साथ हो रही है उससे आमतौर पर यह धारणा बनती जा रही है कि यह तो होती आई और होती ही रहेगी। जबकि यह सच नहीं है परन्तु सतही तौर पर नजर डालने से ऐसा लग भी सकता है। क्योंकि निर्भया केस के बाद महिला सुरक्षा को लेकर जस्टिस वर्मा कमेटी की सिफारिशें भी लागू कर ली। परन्तु हिंसा रुकने की बजाय बढ़ रही है। असल में महिलाओं की सुरक्षा को लेकर बनाए जा रहे कानून व प्रावधान उनकी भावनानुरूप लागू नहीं किए जा रहे, इच्छाशक्ति का अभाव है।

आज जब हरियाणा की बेटियां जीवन के हर क्षेत्र में बढ़ी-चढ़ी भूमिका अदा करना चाहती हैं तो छडेछाड़, यौन हिंसा की समस्या उनके रास्ते में बड़ी बाधा की तरह खड़ी है। हिंसा का स्रोत व समाधान दोनों की पहचान गलत होती है। छेड़छाड़ का स्रोत लड़कियों का पहनावा, उनका हंसना बोलना, फोन रखना, गैर टाईम घर की चारदिवारी से बाहर आना जाना माना जाता है और समाधान उनकी इन सभी स्वतन्त्रताओं पर रोक । जबकि महिलाओं व लड़कियों के साथ छड़ेछाड़ की समस्या पितृसत्तात्मक सोच से निकलती है।

यूं तो हरियाणा की महिलाएं अपने कद-काठी की वजह से अपने सौन्दर्य की अलग पहचान रखती हैं। परन्तु स्वास्थ्य को देखें तो बड़ा हिस्सा खून की कमी का शिकार है। जच्चा-बच्चा के लिए गांव में डिलीवरी-हट बने थे वो भी बिना किसी गम्भीर विश्लेषण के बंद किए जा चुके है। उन्हें दुबारा पूरी तैयारी के साथ खोला जाना चाहिए।

यह अच्छी बात है कि हरियाणा में महिलाओं के लिए खेल-दिवस बनाया जाता है। परन्तु उनके लिए उपयुक्त व्यायामशालाएं उपलब्ध नहीं हैं। इसी प्रकार जिस तरह हमारे भाइयों के लिए सामूहिक कार्यों के लिए चौपाल बनी हुई है, महिला चौपालों की भी विशेष जरूरत है।

जीवन जीने के लिए आर्थिक आधार या रोजगार तथा फैसले लेने वाली संस्थाओं में बराबर की भागीदारी ये दोनों

इंसानी जीवन में निणार्यक भूमिका अदा करते हैं। परिवार से लेकर धुर संसदीय स्तर तक। पूरे देश के साथ हरियाणा में भी पंचायती स्तर पर महिलाओं को आरक्षण के माध्यम से मुख्यधारा में शामिल करने की कोशिशें की गई हैं। इसने महिलाओं के प्रति सामाजिक नजरिये को गुणात्मक रूप से बदला है। यद्यपि पुरुषों को क्योंकि चौधर का चस्का लगा हुआ है तो वो अपनी पत्नियों की बजाय स्वयं पंचायती कामकाज करते हैं। इस पर प्रशासन को पूर्णतया रोक लगानी चाहिए क्योंकि यह एकदम अवैध है। दूसरा इन चुनी हुई महिलाओं का गहन शिक्षण प्रशिक्षण किया जाना चाहिए ताकि वो आत्मविश्वासी तरीके से अपनी भूमिका अदा कर सकें।

लैंगिक दृष्टि से बड़े बदलाव व्यवस्था व परिस्थितियों में हुए हैं। जिनका नतीजा है कि महिलाओं के अन्दर नए अरमानों ने जन्म लिया है। अब वो हर क्षेत्र में अपने भाईयों के साथ कंधे से कंधा मिला कर सक्रिय भूमिका अदा करना चाहती हैं। जरूरत है हमारे आर्थिक, सामाजिक ढांचों व संस्थाओं में बदलाव की। उनमें अभी भी उनकी कर्ता की बजाय सहायक जैसी भूमिका बद्धमूल है। इसके साथ-साथ संवेदनाओं व मूल्य मान्यताओं को बदलने के लिए सभी को सामूहिक व व्यक्तिगत आत्म संघर्ष से भी गुजरने की जरूरत है।

सम्पर्क-9416630805

डा. सुभाष सैनी की ग़ज़लें

जिंदगी की धूप में अब जल रहा है आदमी
शूल हैं राहों में लेकिन चल रहा है आदमी

भीड़, हिंसा, कर्फ्यू, लाशें और निरन्तर बेबसी
अब तो बस, इस दौर में, यूं जल रहा है आदमी

अब दिलों की तो दिलों से बढ़ गई हैं दूरियां
पर जमीं से आसमां तक चल रहा है आदमी

हर बशर बेचैन है, गमगीन है इस दौर में
बर्फ़ की मानिंद अब तो गल रहा है आदमी

जानकर भी सब खबर, रहता है फिर भी बेखबर
खुद से खुद को इस तरह अब छल रहा है आदमी

आदमी की दास्तां को देखकर लगता है अब
आज भी वैसा है जैसा कल रहा है आदमी

2

बहुत मिले भड़कीले लोग
लाल, गुलाबी, पीले लोग

हम ही मोम सरीखे थे
सभी मिले पथरीले लोग

पास आकर डस लेते हैं
ऐसे हैं ज़हरीले लोग

भीतर आग है नफ़रत की
बाहर से बर्फ़ीले लोग

दामन छलनी करते हैं
हैं ये अजब कंटीले लोग

कठिन राह में जीवन
ख़ाक चलेंगे ढीले लोग

3

सब के अपने दर्द हैं दुश्वारियां हैं बेहिसाब
हर किसी से पूछते हो क्यों सवालों के जवाब

ज़िंदगी में ग़म मिले तो ग़म न करना दोस्तो
मुस्कराना इस तरह कि जैसे कांटों में गुलाब

चाहते हो तुम कि तुम से फिर वही बातें कहूं
क्या करूं मैं खो गई है मेरी माज़ी की किताब

कोई सुनता ही नहीं है अब किसी की दास्तां
किस को दूं मैं ज़िंदगी के गुज़रे लम्हों का हिसाब

बेवफाई को बताया उसने अपनी बेबसी
इस कदर उसने दिया है मेरी उल्फ़त का जवाब

4

तरसा होगा वो ज़िंदगी के लिए
जिस ने सोचा है खुदकुशी के लिए

दुश्मनी क्यों किसी से की जाए
ज़िंदगी तो है दोस्ती के लिए

देखकर कत्लो-खून के मंज़र
हाथ उठते हैं बंदगी के लिए

आज के दौर में हिफ़ाजत से
जीना मुश्किल है, हर किसी के लिए

जिसने तामीर की है महलों की
वो तरसता है झोपड़ी के लिए

सम्पर्क : 94165-21508

महिला की पूर्व निर्धारित भूमिका में बदलाव

❑सुमित सौरभ

अपने निर्माण के पचास वर्षों के दौरान हरियाणा राज्य का तीव्र आर्थिक विकास हुआ है। विकास के माप हेतु निर्मित सूचकांक के विभिन्न सूचकों को इस राज्य के संदर्भ में देख कर हम खुश हो सकते हैं, लेकिन ठीक इसी समय राज्य के लैंगिक विकास सूचकांक, लैंगिक समानता सूचकांक के विभिन्न सूचकों को देखकर हमारी सारी खुशी समाप्त हो जाती है।

सातवें दशक के अंतिम तथा आठवें दशक के शुरूआती वर्षों में हरियाणवी सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक व्यवस्था में कई स्तरों पर तेजी से बदलाव हुए। इन बदलावों से महिलाएं भी अछूती नहीं रही। कई मामलों में यह बदलाव महिलाओं के लिए सकारात्मक थे।

कृषि क्षेत्र के अधिशेष ने हरियाणवी कृषक समाज को उपभोक्तवादी संस्कृति अपनाने का अवसर मुहैया कराया। नई स्थितियों में कृषि हरियाणवी समाज की नई चाहतों को पूर्ण करने में सक्षम न थी। परिणामत: कृषि क्षेत्र में उत्पन्न अधिशेष का निवेश शहरों में व्यवसाय तथा अन्य कृषि कार्यों के साथ बच्चों की शिक्षा में किया जाने लगा। परिवार के सर्वाधिक योग्य संतान को डाक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, मैनेजर तथा अन्य आधुनिक पेशा अपनाने पर जोर दिया जाने लगा। बदलाव की उपरोक्त प्रक्रिया से प्रथम दृष्टया महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन नहीं दिखाई देता। बावजूद इसके महिलाओं की स्थितियां भी बदल रही थी। निसंदेह बदलाव की गति धीमी थी। लड़कियों का शिक्षित होना स्वीकार्य हो रहा था। आठवें दशक के शुरूआती वर्षों तक लड़कियों का स्कूल जाना सामान्य हो चुका था। बाद के वर्षों में शिक्षा हेतु लड़कियों को परिवार से दूर शहरों में भी भेजा जाने लगा। उनके लिए सम्मानजनक शहरी जीवन की कल्पना की जाने लगी।

1991 में भारत सरकार द्वारा अपनायी गई उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमंडलीकरण की नीतियों ने सम्पूर्ण राष्ट्र समेत हरियाणवी सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक व्यवस्था को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। नयी बाजार व्यवस्था में कृषि अर्थव्यवस्था के लिए कोई जगह नहीं थी। निजी तथा असंगठित क्षेत्रों में उपलब्ध रोजगार की जो प्रवृति थी, उसने श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा दिया। श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी ने जातीय-वर्गीय तथा लैंगिक संबंधों में महत्वपूर्ण बदलाव किए।

जीविकोपार्जन हेतु कृषि अर्थव्यवस्था पर निर्भरता की समाप्ति, शिक्षा से प्राप्त आत्मविश्वास तथा बेहतर जीवन की चाह ने पारम्परिक पितृसत्तात्मक मूल्यों के प्रति अवहेलनात्मक दृष्टिकोण पैदा किया। पारम्परिक पितृसत्तात्मक मूल्यों के प्रति अवहेलनात्मक दृष्टिकोण को वर्चस्वशाली पुरुष समाज द्वारा चुनौती को की तरह स्वीकार किया गया और विभिन्न तरीकों से कमजोर होते पितृसत्तात्मक मूल्यों को पुन:स्थापित करने की कोशिश की गई। जाति पंचायत द्वारा प्रेमी युगल को दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड/मृत्यु दण्ड को इस आलोक में देखा जा सकता है।

हिंसा का प्रकार	भारत	अपराध दर	हरियाणा	अपराध दर
हिंसा की कुल घटनाएं	327394	53.9	9446	75.7
बलात्कार	34651	5.7	1070	8.6
सामूहिक बलात्कार	2113	0.3	204	1.6
बलात्कार का प्रयास	4437	0.7	105	8.8
अपहरण	59277	9.8	2336	18.7
दहेज हत्या	7634	1.3	243	1.9
यौन उत्पीड़न	24041	4.0	688	5.5
पीछा करना	6266	1.0	388	2.7
घरेलू हिंसा	113403	18.7	3525	28.3

स्रोत : नेशनल क्राईम रिकार्ड ब्यूरो-2015

स्त्रियों की संख्या यद्यपि इस राज्य में औपनिवेशक काल से ही पुरुषों की तुलना में कम रही है। विभिन्न जनगणनाओं से स्पष्ट होता है कि राज्य का लिंगानुपात सदैव नकारात्मक रहा है। अलग राज्य के निर्माण के साथ आई समृद्धि, छोटा परिवार की भावना तथा लिंग जांच संबंधी आधुनिक तकनीक की सर्व सुलभता ने कन्या भ्रूण हत्या की भयावह स्थिति पैदा की है।

राज्य में घटते लिंगानुपात के अध्ययनों में घटते लिंगानुपात के कारणों के तौर पर मुख्य रूप से इज्जत, दहेज प्रथा, धार्मिक रीति-रिवाज, वंश वृद्धि की चाह, पुत्र प्रधानता, पुत्र मोह इत्यादि कारणों को चिन्हित किया गया है। निसंदेह घटते लिंगानुपात में इनकी भूमिका रही है। बावजूद इसके पूर्व की भांति वर्तमान में कन्या भ्रूण हत्या के पीछे यही मुख्य कारण नहीं रह गए हैं।

बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों व आर्थिक व्यवस्था के साथ कन्या भ्रूण हत्या के कारक भी बदले हैं। 'छोटा परिवार सुखी परिवार' की भावना घटते लिंगानुपात में असरकारक भूमिका अदा कर रही है। अकारण नहीं है कि शिक्षित, सम्पन्न, उच्च जाति के परिवारों में अशिक्षित-गरीब निम्न जाति के परिवारों की तुलना में कन्या भ्रूण हत्या की प्रवृति अधिक पायी जा रही है।

वर्तमान समय में सम्पूर्ण देश की निगाह स्त्री प्रश्नों को लेकर हरियाणा की तरफ है। जाति पंचायत के निर्णय, कन्या भ्रूण हत्या, विभिन्न रूपों में महिलाओं के खिलाफ हिंसा, जातिय वर्चस्व की लड़ाई में दलित स्त्रियों के शरीर को बतौर औजार इस्तेमाल करने की प्रवृति इत्यादि विमर्श के केंद्र में हैं। उपरोक्त विषयों पर प्रचूर अकादमिक लेखन मौजूद है।

परिवार का ढांचा बदल रहा है। स्त्री-पुरुषों की पूर्व निर्धारित भूमिका बदल रही है। स्त्री-पुरुषों के संबंध बदल रहे हैं। मुख्यधारा के अकादमिक विद्वानों और नारीवादी विद्वानों ने इन विषयों पर कम ध्यान दिया है। थोड़े-बहुत जानकारी पत्रकारिता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं।

महिलाओं की स्थिति में आए परिवर्तन तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार की योजनाओं के लिए आवश्यक है कि बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्थितियों के संदर्भ में महिलाओं की स्थितियों का मूल्यांकन करें। *सम्पर्क : 88168-76226*

हरियाणा में दलित दशा, उत्पीड़न व प्रतिरोध

□डा. सुभाष चंद्र

पिछले कुछ वर्षों में हरियाणा में दलित उत्पीड़न के जघन्य कांड हुए हैं जिस कारण हरियाणा का समाज राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय रहा है। हरियाणा का समाज तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। दलित उत्पीड़न की घटनाएं बढ़ रही हैं तो दलित वर्ग की ओर से तीखा प्रतिरोध भी हो रहा है। परंपरागत उत्पादन व सामाजिक संबंधों में बदलाव आ रहा है। दलित उत्पीड़न के मुद्दे, स्परूप व चरित्र और प्रतिरोध के माध्यम से इस परिदृश्य को समझा जा सकता है।

भारत में तीन हजार से अधिक जातियां है। सामाजिक दर्जे पर सबसे निम्न स्थान पर स्थित 779 जातियों को भारतीय संविधान की धारा 341 के अनुसार अनुसूचित जातियों की श्रेणी में रखा गया है। हरियाणा में 37 जातियों को इस श्रेणी में स्थान दिया गया है।

1 आदि धर्मी 2 बाल्मीकि, चुड़ा, भंगी 3 बंगाली 4 बराड़, बुराड़, बेराड़ 5 बटवाल 6 बौरिया, बावरिया 7 बाजीगर 8 भांजड़ा 9 चमार, जटिया चमार, रेहगर, रैगर, रामदासी, रविदासी, बलाही, बटोई, भटोई, भांबी, चमार-रोहीदास, जाटव, जाटवा, मोची, रामदासिया 10 चनाल 11दागी 12 दराईं 13 ढेहा, ढाया, ढेह 14 धानक 15 ढोगड़ी, ढांगड़ी, सिग्गी 16 डुमना, महाश्य, डूम 17 गगड़ा 18 गंधीला, गंधील, गोंडोला 19 कबीरपंथी, जुलाहा 20 खटीक 21 कोरी, कोली 22 मारीजा, मरेछा 23 मजहबी, मजहबी सिक्ख, 24 मेघ 25 नट, बादी 26 ओड 27 पासी 28 पेरणा 29 फड़ेड़ा 30 सांहाई 31 सांहल 32 सांसी, भेड़कूट, मनेश, 33 सांसोई 34 सपेला, सपेरा 35 सरेड़ा 36 सिकलीगर, बड़िया 37 सिरकीबंद

2011 की जनगणना के अनुसार हरियाणा की अनुसूचित जातियों की जनसंख्या हरियाणा की जनसंख्या का 20.5 प्रतिशत है। पंजाब के साथ लगते जिलों में अनुसूचित जातियों की संख्या का प्रतिशत सबसे अधिक है। हरियाणा के फतेहाबाद जिले की कुल जनसंख्या का लगभग 27 प्रतिशत अनुसूचित जातियों से है, इसके बाद सिरसा जिले की कुल जनसंख्या का 26 प्रतिशत भाग व अंबाला जिले की 25 प्रतिशत भाग अनुसूचित जाति से संबंधित है।

अनुसूचित जातियों में चमार जाति की जनसंख्या सबसे अधिक है। अनुसूचित जातियों की कुल जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत अकेली चमार जाति से है। इसके बाद 20 प्रतिशत बाल्मीकि जाति तथा 12 प्रतिशत धानक जाति की संख्या है। अनुसूचित जाति की कुल जनसंख्या का 82 प्रतिशत भाग तो इन तीन जातियों से है, शेष 18 प्रतिशत अन्य जातियों से है।

चुनाव-प्रणाली में संख्या का महत्त्व है, विशेष तौर पर राजनीतिक शक्ति हासिल करने में। सत्ता व शक्ति की दृष्टि से विशेषत: राजनीतिक तौर पर ये तीन जातियां ही शक्तिशाली हैं। अनुसूचित जातियों में इन्हीं की चर्चा होती है, वर्चस्वी शक्तियों की टकराहट व संघर्ष भी मुख्यत: इन्हीं के साथ है। उत्पीड़न के मामले भी अक्सर इन्हीं के साथ होते हैं, जिसकी जड़ में इनकी हो रही बेहतर स्थिति है, जो परम्परागत तौर पर शक्तिशाली वर्गों को कतई स्वीकार नहीं है।

दलित समुदाय एकरूप व एक पहचान वाला समुदाय नहीं है। उसमें कोई समानता है तो सिर्फ यही कि वर्चस्वी शक्तियां उनको अछूत व निम्न मानती हैं। समूचे दलित समुदाय की कोई अलग सांस्कृतिक पहचान नहीं, बल्कि वह स्थानीय वर्चस्वी सांस्कृतिक मूल्यों से ही परिचालित होता है।

आधुनिक समाज में शिक्षा की विशेष भूमिका है, क्योंकि शिक्षा हासिल करके परम्परागत पेशों को बलने की संभावना बनती है। डा. भीमराव आम्बेडकर के आन्दोलनों का हरियाणा के दलितों पर भी पड़ा। उन्होंने भी शिक्षा को प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया। लेकिन आंकड़े बताते हैं कि दलित समाज की शिक्षा में भागीदारी अपेक्षाकृत कम है, लेकिन शिक्षा प्राप्त करने की ललक सबसे अधिक है। शिक्षा की ओर बढ़ता रूझान आशाजनक है।

दलित जातियों के विद्यार्थी बड़े उत्साह से स्कूलों में प्रवेश लेते हैं, लेकिन अपनी घरेलू परिस्थितियों के कारण स्कूल छोड़ देते हैं। ड्रॉप आउट में साधनहीन गरीब अनुसूचित जाति के बच्चों का बाहुल्य होता है।

आरक्षण की व्यवस्था ने दलितों के एक हिस्से को लाभ पहुंचाया है, जिसकी वजह से दलितों में मध्यवर्ग पनपा है। यद्यपि जातिगत पक्षपात की मानसिकता के कारण दलितों को आरक्षण का पूरा लाभ नहीं मिलता। आरक्षित पद खाली पड़े रहते हैं सरकारें उनको घोषित करती हैं, लेकिन भर्ती नहीं करती। कुछ स्थान तो ऐसे हैं जहां आरक्षण की व्यवस्था पूरी तरह से लागू नहीं है।

वर्ण-व्यवस्था में दलितों को सबसे निम्न स्थान पर रखा गया और सम्पति, ज्ञान व सत्ता के अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इसलिए अधिकांश जनसंख्या के पास सम्पति के नाम पर कुछ नहीं है। दलितों के बहुत छोटे हिस्से के पास जमीन है, अधिकांश दलित कृषि श्रमिक हैं। खेतीहर मजदूरों की स्थिति काफी कुछ खेती पर निर्भर करती है, खेती के स्वरूप में भारी बदलाव हुए हैं, किसान और मजदूर के संबंधों में बदलाव आया है। खेती का अधिकतर काम मशीन से करने के कारण मजदूरों को साल में केवल 60 से 70 दिन तक ही काम मिलता है, शेष दिनों में खाली

जैसा है। खेती के परम्परागत स्वरूप में दलित जातियों का रोजगार अधिकांश सहायक का था, लेकिन तकनीक के विकास ने उनको अप्रासंगिक बना दिया है।

दलितों को शैक्षिक-सामाजिक दृष्टि से पिछड़े होने तथा भू-स्वामियों पर आर्थिक निर्भरता के कारण सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक उत्पीड़न सहन करना पड़ता है। यदि वे कथित 'मर्यादा' 'परम्परा' का त्यागकर बराबरी के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं तो उनको वर्चस्वी समाज जाति के नाम पर गाली देकर, सार्वजनिक रास्ते रोक कर, परम्परागत पेशों-धन्धों से इनकार करने पर पीट कर, अन्तरजातीय विवाह आदि के कारण अत्याचार करते हैं।

डा. भीमराव आम्बेडकर ने समाज में घटित दलित उत्पीड़न की घटनाओं का ब्यौरा प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने हरियाणा (तत्कालीन पंजाब) के अम्बाला जिले की दुखेड़ी की घटना को भी शामिल किया, जो दलित उत्पीड़न की 'परम्परा' की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है।

हरियाणा में पिछले कुछ वर्षों से दलितों पर अत्याचार एवं उत्पीड़न की घटनाओं में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। इस उत्पीड़न की जड़ में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक कारण हैं। हरियाणा में दलित उत्पीड़न की दिल दहला देने वाली घटनाएं घटित हुई हैं। जिन मामलों ने समाज को हिलाकर रख दिया उनकी ओर संकेत करना यहां उचित होगा।

झज्जर जिले के रतनथल गांव में दो दलित लड़कियों के साथ बलात्कार के बाद हत्या करके खेत में फेंक दिया गया। दलित परिवारों को सवर्णों ने चुप रहने के लिए इतना आंतकित कर दिया कि उन्हें मजबूरन चुप्पी साधनी पड़ी।

20 मई 1995 को जीन्द जिले के पड़ाना गांव में दलित लड़की के साथ बदले की कार्रवाई के तौर पर दिन दहाड़े सामूहिक बलात्कार किया गया। इस लड़की का 'दोष' यह था कि वह उस बालिग दलित भाई की बहन थी, जिसने और सवर्ण जाति की लड़की ने अपनी इच्छा से विवाह था।

जुलाई 2002 में झज्जर जिले के तलाव गांव में सवर्ण जाति की लड़की ने गांव से भागकर दलित जाति के लड़के से अपनी मर्जी से विवाह कर लिया। बाद में लड़की को वापस गांव में लाकर हत्या कर दी गई तथा केस में दलितों को फंसाया गया। इससे परेशान होकर एक दलित महिला व पुरुष ने आत्महत्या कर ली और कइयों को गांव छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा।

15 अक्तूबर, 2002 को झज्जर जिले में दुलीना पुलिस चौकी के पास पांच दलितों की पीट पीट कर हत्या कर दी थी। इन पर आरोप लगाया कि ये गौ-हत्या में शामिल थे। इनको भीड़ ने पुलिस चौंकी दुलीना में पुलिस हिरासत से निकाल कर मारा।

कैथल जिले के हरसौला गांव में 10 फरवरी, 2003 को 270 दलित परिवारों को पीट-पीट कर गांव से खदेड़ दिया। 6 फरवरी को दलित भजन गा रहे थे। उच्च जाति के लड़कों ने बाधा डालने की कोशिश की। दलितों ने उसे भगा दिया तो उच्च जाति के लड़के लाठियों के साथ आए। 10 फरवरी को गांव के उच्च जाति के लोगों ने दलितों की बस्ती पर हमला बोल दिया और दलितों की महिलाओं, बच्चों व बुजुर्गों समेत पीट-पीटकर गांव से खदेड़ दिया। जान बचाने के लिए लोग कई मील तक पैदल भागते हुए आए और कैथल शहर में आकर शरण ली।

सोनीपत जिले के गोहाना कस्बे में दलितों की बस्ती फूंक दी गई, जिसमें पूरी बस्ती जलकर खाक हो गई और दलितों के घर में घुसकर तोड़-फोड़ की गई।

करनाल जिले के महमूदपुर गांव में संत रविदास प्रतिमा का जूलुस निकालने पर दलितों को पीटा तथा गांव से भगा दिया।

भिवानी जिले के लुहारी जाटू गांव में दलित दुल्हे के घोड़ी पर चढ़ने के कारण दलितों को बुरी तरह से पीटा गया।

रोहतक जिले के पहरावर गांव के सरपंच कर्ण सिंह का अपहरण कर लिया गया। गांव का एक धड़ा सरपंच पर 20 एकड़ शामलात जमीन एक संस्था को दान में देने के लिए दबाव डाल रहा था, तो दूसरा न देने के लिए।

रोहतक जिले के गांधरा गांव में दलित महिला सरपंच को बालों से पकड़कर गली में घसीटा व पीटा गया। गांव के दो वर्चस्वी जातियों के गुटों में एक का पक्ष लेने के लिए उसे शिकार बनाया गया।

महम के नजदीक खरकड़ा गांव में दलित महिला को पिस्तौल की नोक पर अगवा करके बलात्कार किया। उसके परिवार को समझौता करने को मजबूर किया गया और दोषी के विरूद्ध कोई मुकद्दमा दर्ज नहीं हुआ।

मार्च 2006, रोहतक जिले के फरमाणा गांव में प्रवेश करने से रोकने के लिए दलित बस्ती के चारों ओर दीवार खड़ी कर दी।

मार्च 2010 में भिवानी जिले के लढ़ाणी गांव में गांव में प्रवेश पर विवाद हुआ। जिसमें उच्च जाति का एक व्यक्ति मारा गया। 150 दलित परिवार गांव से पलायन करने के लिए मजबूर हुए।

अप्रैल 2010 में हिसार जिले के मिर्चपुर गांव में 18 दलितों के घरों को जला दिया। 18 साल की शारीरिक रूप से अपंग युवती व उसके पिता को जिंदा जला दिया गया।

मार्च 2012 में पंचकुला जिले के बतौड़ गांव में ग्राम पंचायत के राजस्व में हेरा फेरी का विरोध करने पर दलितों पर हमला किया गया।

अप्रैल 2013 में कैथल जिले के पबनावा गांव में दलित लड़के व उच्च जाति की लड़की के अपनी इच्छा से विवाह करने पर दलित बस्ती पर हमला।

फरवरी 2015 में हिसार जिले के गांव दौलतपुर में घड़े से पानी पीने पर दलित युवक का हाथ काट दिया।

कुरुक्षेत्र जिले के भुस्तला गांव में दलित जाति के लड़के की घुड़चढ़ी निकालने पर हमला।

दलित उत्पीड़न की घटनाओं की लम्बी सूची है, जिसके भिन्न भिन्न कारण हैं। इन घटनाओं में निरंतर बढौतरी हो रही है। यद्यपि मुख्यधारा की पार्टियों के दलित नेता इन मामलों को उठाने में अपनी पहचान नहीं बना पाये, क्योंकि सत्ता में भागीदारी के लिए ये वर्चस्वी लोगों पर ही निर्भर हैँ। इसीलिए दलित उत्पीड़न की घटनाओं पर स्थानीय व उच्च स्तर का नेतृत्व या तो मूकदर्शक बना रहता है या फिर समझौतावादी रुख के साथ उत्पीड़कों के साथ ही होता है। लेकिन यह रेखांकित करने की बात है कि कुछ मामलों में दलितों ने राजनीतिक व कानूनी तौर पर जिस तरह

अपनी लड़ाई लड़ी उससे यही साबित होता है कि वे शोषण व उत्पीड़न को सहन नहीं करेंगे।

दलित समाज पर उत्पीड़न में बढ़ोतरी के कारण केवल सांस्कृतिक परंपराओं में नहीं, बल्कि समाजार्थिकता में हैं। जिस पर एक नजर डालना अप्रासंगिक नहीं होगा।

खेती के कारोबार में दलित जातियों की विशेष भूमिका थी। जजमानी प्रथा में दस्तकारों व श्रमिकों को कितने ही काम उसको बेगार में करने पड़ते थे। जजमानी प्रथा में किसान-जमींदार की खेती में सहायक दस्तकार, कारीगर व श्रमिक तक बंटे हुए थे। यद्यपि मालिक व नौकर दोनों को अपनी पसंद का मालिक व नौकर नहीं मिलता था, लेकिन परस्पर निर्भरता की स्थितियों में दोनों एक-दूसरे की जरूरत भी थे। बेशक रिश्ते बराबरी के नहीं थे, इनमें मालिक और नौकर के संबंधों की गूंज थी, पर घृणा व नफरत यहां नहीं थी। श्रम का शोषण करने के लिए ऊंच-नीच के संबंध जरूर थे।

उत्पादन की नई तकनीक ने परस्पर निर्भरता को कम किया तथा श्रम के लिए एक विस्तृत बाजार खुला, जिसने भू-स्वामी व दलित-श्रमिक के संबंधों को बदला। श्रम के खुले बाजार ने श्रमिक की मोल-भाव की क्षमता व श्रम की स्वतन्त्रता को बढ़ावा दिया। नई परिस्थितियों को जितनी तेजी से दलित-श्रमिक ने ग्रहण किया, भू-स्वामी वर्ग ने नहीं किया। भू-स्वामी वर्ग की सामन्ती सोच तथा दलित-श्रमिक में उत्पन्न मानवीय गरिमा, स्वतंत्रता व बराबरी की इच्छा ही दलित-उत्पीड़न का कारण बनी।

उत्पादन की नई तकनीक ने परस्पर निर्भरता को कम किया तथा श्रम के लिए एक विस्तृत बाजार खुला, जिसने भू-स्वामी व दलित-श्रमिक के संबंधों को बदला। श्रम के खुले बाजार ने श्रमिक की मोल-भाव की क्षमता व श्रम की स्वतन्त्रता को बढ़ावा दिया। नई परिस्थितियों को जितनी तेजी से दलित-श्रमिक ने ग्रहण किया, भू-स्वामी वर्ग ने नहीं किया, उसकी नजर में दलित-श्रमिक अभी भी सामाजिक दृष्टि से हेय तथा आर्थिक तौर पर उसका बंधुआ व उसकी नीति-नियमों का अनुपालन करने वाला था। भू-स्वामी वर्ग की सामन्ती सोच तथा दलित-श्रमिक में उत्पन्न मानवीय गरिमा, स्वतंत्रता व बराबरी की इच्छा ही दलित-उत्पीड़न का कारण बनी। दलित-श्रमिकों द्वारा अपनी मजदूरी बढ़ाने या परम्परागत कार्य करने से इन्कार करने के फलस्वरूप भू-स्वामियों द्वारा उन्हें खेतों में न घुसने देना, पशुओं के लिए चारा न लेने देना, मजदूरी पर न बुलाना आदि कार्रवाइयों में दलित-उत्पीड़न दिखाई दिया।

खेत मजदूर अपनी मेहनत का उचित दाम मांगने लगे, जिससे किसानों और खेत मजदूरों के बीच सम्बन्धों में वैमनस्य बढ़ा। भूमि विवाद, वित्तीय लेनदेन पर विवाद, काम करवाने के बाद मजदूरी न देना, जबरदस्ती काम करवाना, अनुसूचित जाति के व्यक्ति की फसल लूटना या नष्ट करना, घास काटने पर मार पीट करके अपमानित करना आदि ऐसे कार्य कारण हैं, जिन पर दलितों को उत्पीड़न सहन करना पड़ता है। मजदूरों में बराबरी के व्यवहार की चाह ने परम्परागत आचार संहिता पर प्रश्नचिन्ह लगाना शुरू किया।

'सामाजिक परम्परा व मर्यादा' के उल्लघंन के नाम पर कमजोरों को प्रताड़ित करना असल में पनप रहे नए संबंधों की ओर संकेत करता है, जो वर्चस्वी शक्तियों को स्वीकार नहीं है। सामाजिक बहिष्कार व बंदी जैसी सामूहिक सजा देना इसी का एक रूप था।

उत्पीड़न के मुद्दे बदले हैं तो उसके तौर-तरीके भी बदले हैं। अब खेतों में दलितों पर बंदी या बहिष्कार जैसे कदम कभी-कभार ही सुनने में आते हैं, क्योंकि इनसे अब उनको विवश नहीं किया जा सकता। दलित पूर्णत: भू-स्वामी पर निर्भर नहीं हैं, उन्होंने वैकल्पिक धंधे की तलाश कर ली है।

दलितों की सत्ता में हिस्सेदारी व स्वतंत्र निर्णय भू-स्वामी वर्ग को रास नहीं आता। राजनीतिक शक्ति हासिल करने तथा इसे प्रयोग करने में संघर्ष स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है। चुनाव प्रणाली में राजनीतिक शक्ति हासिल करने के लिए वोटों का बहुत महत्त्व है। दलितों की वोट प्राप्त करने के लिए उनको डराना-धमकाना, धन का लालच देकर वोट खरीद लेना, उनको वोट न डालने देना या किसी विशेष राजनीतिक पार्टी को वोट डालने के लिए मजबूर करना, सवैंधानिक शक्तियों को प्रयोग न करने देने के लिए उन पर अत्याचार किया जाता है।

उच्च जाति की लड़कियों द्वारा दलित जाति के लड़कों से अपनी इच्छा से विवाह करने पर दलित लड़कों की हत्या तक की जा चुकी है। गौर करने की बात है कि सवर्ण जाति के लोग इस पर गर्व करते हैं व हत्यारों को सम्मानित करते हैं।

स्वयंभू पंचायतों का चरित्र दलित-विरोधी है। 'गांव की मर्यादा' का मतलब यहां वर्चस्वी लोगों की दाब-धौंस कायम रहने से है, 'गांव की इज्जत' का मतलब वर्चस्वी लोगों के अहं की तुष्टि से है। 'गांव की इज्जत', 'मर्यादा की रक्षा', 'परम्परा का सम्मान' का मतलब यहां चली आ रहे रिवाजों-प्रथाओं की अनुपालना है। 'सम्मान', 'इज्जत', व 'मर्यादा' की इस परम्परागत अवधारणा में दलितों को वर्चस्वी लोगों के आदेशों को मानना तथा अपने अपमान को ही स्वाभिमान समझना आदि गैर-बराबरी की अनेक प्रणालियां व संरचनाएं शामिल हैं।

जब कोई दलित मानवीय गरिमा हासिल करने के लिए संघर्ष करता है तो 'गांव की मर्यादा' के रक्षकों की भुजाएं फड़कने लगती हैं और 'मर्यादा' का दलित विरोधी चेहरा स्पष्ट तौर पर प्रकट हो जाता है। अनेक ऐसे मामले हो चुके हैं, जिनमें दलितों को सरेआम अपमानित किया जा चुका है। दलित-उत्पीड़न के संगीन अपराधों में शामिल लोगों को जाति-पंचायतें सम्मानित करती हैं व उनके बचाव पक्ष में आती हैं। झज्जर जिले के दुलीना में पांच दलितों की पीट पीट कर हत्या करने वाले अपराधियों को बचाने के लिए बड़ी बड़ी पंचायतों का आयोजन किया, जो सामाजिक न्याय की आवाज उठाने वालों को एक चेतावनी देने की भाषा में बात करती थी। फरवरी, 2005 में सोनीपत जिले के गोहाना कस्बे में दलितों की बस्ती जलाने वाले अपराधियों को बचाने के लिए भी जाति विशेष की महा पंचायतें आयोजित की गईं, तथा अपराधियों को बचाने के लिए राजनीतिक दबाव बनाया गया।

सम्पर्क : 94164-82156

विकलांग जन
दया नहीं अधिकार की दरकार

❑सुनील 'थुआ'

हमारे देश की आजादी के 70 साल पूरे होने जा रहे हैं, परन्तु एक वर्ग अपनी पहचान और नाम के लिए तरस रहा है। हम बात कर रहे हैं विकलांगों, दिव्यांगों, निशक्तों तथा अन्य इसी तरह के नामों वाले सामाजिक समूह की। जो अपनी विशेष आवश्यकताओं व समस्याओं की वजह से सामान्य लोगों से थोड़ा अलग है।

'हमारे समाज में विकलांगता के प्रमुख रूप से दो मॉडल हैं-पहला मेडिकल मॉडल जो कहता है कि विकलांगता व्यक्ति में पाई जाती है। वहीं दूसरा मॉडल हमें बताता है कि विकलांगता व्यक्ति में ना होकर हमारे समाज, परिवेश व वातावरण की बाधाओं में होती है।'

डब्ल्यू.एच.ओ. के अनुसार-विकलांगता एक परिभाषी शब्द है, जिसमें हम क्षीणता, गतिविधियों की सीमाओं के पैमाने के रूप में देखते हैं। वस्तुत: यह एक जटिल प्रक्रिया है जोकि एक व्यक्ति की शरीर की विशेषताओं और समाज में जीवन यापन की क्रिया को दर्शाते हैं। एक अनुमान के अनुसार पूरे विश्व में लगभग एक अरब लोग विकलांगता का शिकार हैं जोकि विश्व की कुल जनसंख्या का 15 प्रतिशत हिस्सा है।

वैश्विक स्तर पर विकलांग व्यक्तियों का समूह विश्व के सबसे बड़े अल्पसंख्यक समूहों में से एक है जोकि उपेक्षा-अभाव, अलगाव और बहिष्कार का सामना करता है।

हमारे देश में विकलांगों की प्रथम जनगणना ही सन् 2001 से शुरू हुई है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश में कुल 2.68 करोड़ लोग विकलांगजन पाए गए हैं। यह हमारे देश की कुल आबादी का 2.21 फीसदी हिस्सा है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या का 2.13 फीसदी हिस्सा विकलांग था। इनमें 1.76 करोड़ ऐसे लोग गांवों में रहते हैं। कुल आबादी में विकलांगों के प्रतिशत के लिहाज से गांव में स्थिति ज्यादा खराब है। विकलांगों की जनगणना में एक और चिंताजनक संकेत सामने आया है और वह दलितों में विकलांगता औसत से ज्यादा है। राष्ट्रीय औसत 2.21 के मुकाबले अनुसूचित जातियों में 2.45 फीसदी विकलांगता पाई जाती है। जबकि जनजातियों में स्थिति थोड़ी सी बेहतर है। अनुसूचित जनजातियों में यह 2.05 फीसदी है। जनगणना के आंकड़ों में शामिल विकलांगों में सबसे ज्यादा लगभग 54 लाख लोग चलने-फिरने में असमर्थ हैं, जबकि सुनने व देखने में असमर्थ लोगों की संख्या 50-50 लाख से ज्यादा है। (तालिका-1)

विकलांगता के समाज शास्त्र को समझने के लिए सबसे पहले हमें विकलांगता के किसी भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनुभव को एक अभ्यास से जानने का प्रयास अवश्य कर लेना चाहिए। आप एक बार अपनी आंखें बंद करके अपने घर के बाहर जाने की कोशिश करें या सिर्फ एक पैर के सहारे चलकर देखें। किसी दुर्घटना व चोट की वजह से कुछ दिन बिस्तर पर पड़े रहने वाले किसी व्यक्ति से बात करके देखें। यह अभ्यास विकलांगता के बारे में किसी आलेख व किताब से ज्यादा जानकारी दे सकता है।

विकलांग शक्ति अब हमारे समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पाई जाती है चाहे वह सरकारी सेवा, मनोरंजन, खेल व उद्योग हो या समाज के सामान्य नागरिक के रूप में हो, पर इसमें हम राजनीतिक क्षेत्र को इससे अछूता ही कह सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्त्री-पुरुष चाहे कितना भी विकलांग क्यों न हो, सबका एक जीवन उद्देश्य व सपने अवश्य होते हैं। समाज जीवन उद्देश्य व सपनों को उड़ान दे सकता है और सपनों के पंख भी काट सकता है।

विकलांगजनों को हर स्तर पर अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। विकलांगता को कलंक के रूप में देखने की वजह से विकलांग के प्रति समाज के व्यवहार में एक नकारात्मक सोच दिखाई देती है।

समाज में यह धारणा है कि व्यक्ति में विकलांगता उसके पिछले जन्मों के कर्मों (अर्थात् भाग्य) के फलस्वरूप भगवान द्वारा दी गई सजा है। अत: कोई भी इस स्थिति को नहीं बदल सकता है। विकलांगों को दिया गया नया नाम यानी दिव्यांग भी इसकी पुष्टि करता है।

विकलांगजन रोजमर्रा की जिंदगी में कई पहलुओं पर गैर विकलांग लोगों की तुलना में अधिक नुक्सान व अलग-थलग महसूस करते हैं, जबकि हमारा समाज उनको बोझ महसूस करता है। यही नहीं विकलांगों के माता-पिता, बच्चों तथा भाई-बहनों को भी इस नकारात्मक दृष्टिकोण का दंश झेलना पड़ता है। विकलांगों की भावनाओं को ठेस

तालिका-1
भारत में विकलांगता के प्रकार और विकलांग

विकलांगता के प्रकार	व्यक्ति कुल	पुरुष	महिलाएं
देखने में	50,32463	26,38,516	23,93,947
सुनने में	50,71,007	26,77,544	23,93,463
बोलने में	19,98,353	11,22,896	8,75,639
चलने-फिरने में	54,36,604	33,70,374	
मानसिक दशा में विक्षिण्ता	15,05,624	8,70,708	6,34,916
मानसिक कमजोरी	7,22,826	4,5,732	3,07,094
अन्य	49,27,011	27,27,828	21,99,183
बहु विकलांगता	21,16,487	11,62,604	9,53,883
कुल	2,68,10,557	1,49,86,202	1,18,24,353

पहुंचाने वाले चुटकले, हंसी-मखौल, फब्तियां और गालियों का बड़े पैमाने पर चलन है।

विकलांगता हमारे विकास के दोषपूर्ण माडल से जुड़ा हुई है। सामाजिक जीवन में व्याप्त रूढ़ियों व परम्परा के कारण विकलांगों को सामान्य नागरिक के तौर पर नहीं देखा जाता। योजना बनाते हुए यह वर्ग प्रायः प्राथमिकताओं से सदा ओझल रहता है। उन्हें दीन-हीन और दया व सहानुभूति का पात्र बनाए रखने के लिए मजबूत किलेबंदी की जाती है।

यह स्वीकार करने की आवश्यकता है कि यदि उन्हें समान अवसर दिए जाएं तो वो शक्तिशाली व क्षमतावान सिद्ध होंगे। अगर उनकी ऊर्जा का सदुपयोग हो जाए तो उनमें आशाएं बढ़ेंगी और स्वाभिमान व स्वावलंबन का भाव जागृत होगा। अल्बर्ट आईंस्टाईन का सापेक्षता-सिद्दांत, थॉमस अल्वा एडीसन का बिजली यंत्र, लुई ब्रेल का ब्रेल लिपि का आविष्कार आज भी इस दुनिया को रास्ता दिखा रहे हैं। उपरोक्त सभी वैज्ञानिक विभिन्न शारीरिक अक्षमताओं के शिकार थे। हापकिंस इसकी सबसे बड़ी मिसाल हमारे समाज के सामने है।

हमारे देश में पुरानी शैक्षिक व्यवस्था के तहत विकलांगों के लिए विशेष विद्यालयों से शिक्षा देकर उन्हें सामाजिक समावेश से हमेशा के लिए काट दिया जाता था, उन्हें नियमित विद्यालयों में भेजना आवश्यक है, जिससे उनका सामाजिक व सांस्कृतिक एकीकरण आसानी से संभव है। विकलांगजनों की शिक्षा की सरकार व समाज की जिम्मेवारी बढ़ जाती है। परन्तु इनके शैक्षिक अधिकारों की अनदेखी हुई है।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में विकलांगों में लगभग 1.50 करोड़ यानी 51 फीसदी आज भी निरक्षर हैं। 26 फीसदी से ज्यादा प्राथमिक शिक्षा नहीं ले पाए तथा सिर्फ 6 फीसदी को मिडल तक की शिक्षा मिली है। 13 फीसदी ने माध्यमिक स्तर तथा उच्च शिक्षा प्राप्त की है। प्रत्येक मानव एक संसाधन है। किसी वजह से कोई भी व्यक्ति अर्थव्यवस्था की समृद्धि के लिए अपना योगदान नहीं दे सके, तो इसका सीधा नुक्सान संबंधित समाज को होगा। उन्हें शिक्षित करके समान अवसर उपलब्ध करवाकर राष्ट्रीय संसाधनों की आय के रूप में योगदान दे सकते हैं।

हमारे देश में विकलांगों की इतनी बड़ी आबादी के बावजूद लोग उनके अधिकारों के बारे में जानते तक नहीं है। समाज केवल भीख और चंदा देकर ही अपने कर्त्तव्यों से मुक्त हो जाता है। जबकि उनकी आवश्यकता दया व सहानुभूति का पात्र बनने की नहीं है, अपितु उन्हें अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करके अधिकार सम्पन्नता हासिल करने से है।

हमारे संविधान निर्माताओं ने समाज के कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण सहित अनेक प्रावधान किए पर इस वर्ग की क्षमताओं और आवश्यकताओं के बारे में सही समझ बनाने में वे भी कुछ हद तक असफल रहे। हमारे पूरे संविधान में विकलांगों के बारे में एक स्थान पर जिक्र है और वह स्टेट लिस्ट एंट्री संख्या नौ है। इसके तहत सरकार को हिदायत दी गई है कि रोजगार न कर सकने वाले विकलागों के लिए राहत कार्य करें।

हमारे देश में शारीरिक बाधाओं की बात करें तो कई लोगों के आसपास विकलांगता के अनुरूप परिवहन सुविधा, सुलभ इमारतें आदि उचित ढंग से नहीं मिलती हैं। देशभर में ट्रेनों व रेलवे स्टेशनों की आधारभूत संरचना के अनुकूल नहीं है।

विकलांगजनों के कल्याण के लिए बनने वाली योजनाओं को तैयार करते समय विकलांग समूहों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो पाई है। विकलांगों की क्षमता, सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्मविश्वास पर प्रहार किया जाता है। संघ लोक सेवा आयोग की वर्ष 2015 की टॉपर इरा सिंघल इसका साक्षात प्रमाण है, जिनको पिछले वर्ष अपने प्रदर्शन व रैंक के अनुसार कॉडर व पोस्ट नहीं दी गई थी।

वैश्वीकरण के इस दौर में रोजगार के लिए गलाकाट प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। हमारे देश में 1995 के पी.डब्ल्यू.डी अधिनियम द्वारा विकलांगों को सरकारी क्षेत्र में आरक्षण की 3 फीसदी सुविधा दी गई थी, जिसकी आज तक केंद्र व राज्यों की सरकारों ने अनुपालन नहीं किया। आज हजारों की संख्या में पढ़े-लिखे कुशल युवा रोजगार को तरस रहे हैं। सरकारी क्षेत्र में तो थोड़ा बहुत रोजगार मिल ही जाता है, परन्तु निजी क्षेत्र में उनके लिए रोजगार के दरवाजे लगभग बंद ही हैं।

पितृसत्तात्मक व पुरुषवादी सोच का सबसे बुरा असर विकलांग महिलाओं पर पड़ता है। यह धारणा बनी हुई है कि एक विकलांग महिला गृहिणी, पत्नी और मां की भूमिका को पूरा करने में असमर्थ है, क्योंकि सौंदर्यता और नारीत्व की स्थापित मान्यताओं के अनुरूप नहीं है। विकलांग महिलाओं के साथ होने वाली यौन उत्पीड़न

	समूह	कुल सृजित पद	विकलांगों के लिए आरक्षित पद	पदस्थापित पद	प्रतिशत रिक्तियां	भरे गए पदों का प्रतिशत
मंत्रालय व विभाग *	क	57,643	4,305	134	3.11	0.25
	ख	73,631	4,652	205	4.41	0.28
	ग	1,607,243	167,863	6,307	3.76	0.39
	घ	960,025	104,578	3,329	3.18	0.35
	कुल	2,698,762	281,398	9,975	3.54	0.37
सार्वजनिक उपक्रम **	क	204,127	18,244	508	2.78	0.25
	ख	175,159	14,350	1,226	8.54	0.70
	ग	1,013,917	89,789	4,525	5.04	0.45
	घ	4,35,328	56,615	3,819	6.75	0.88
	कुल	1,828,531	56,615	3,819	6.75	0.88
	कुल योग	4,527,293	460,396	20,053	4.36	0.44

*59 मंत्रालय व विभागों का आंकड़ा

**237 सार्वजनिक उपक्रमों का आंकड़ा

स्रोत : http:web.worldbank.org.

की घटनाओं में देशभर में बढ़ोतरी हुई है। खासकर हरियाणा गत दिनों रोहतक में नेपाली मंदबुद्धि युवती से गैंगरेप के साथ जघन्य कुकृत्य ने समस्त समाज को झकझोर दिया था। ज्यादातर विकलांग महिलाएं खून की कमी, गरीबी, कुपोषण, निरक्षरता तथा घरेलू हिंसा व अत्याचारों से सर्वाधिक पीड़ित हैं।

आमतौर पर हम समाज में यह सुनते हैं कि जिंदगी दो पहिए की गाड़ी है, जिसमें स्त्री व पुरुष दोनों के सहारे यह गाड़ी जिंदगी की पटरी पर दौड़ती है। हमारे समाज में ज्यादातर विकलांग लड़के व लड़कियां बहुत लंबे समय तक शादी, प्यार के बारे में विचार तक नहीं करते हैं, क्योंकि उसमें परिवार व समाज का अपेक्षित समर्थन नहीं मिलता है। यह सवाल उनकी जिंदगी को बहुत कचोटता है।

एक ऑनलाईन शादी वेबसाईट के वर्ष 2011 में करवाए गए एक सर्वे के अनुसार सिर्फ 7 फीसदी महिलाओं व 15 फीसदी पुरुष ही विकलांगजन अपने जैसा हमसफर व जीवन साथी चुनना चाहते हैं।

इस सर्वे ने बताया है कि भारत में केवल 5 फीसदी विकलांगों की शादी सफल हो पाती है, जबकि विदेशों में इसका प्रतिशत 95 प्रतिशत है। एक अध्ययन से यह भी सामने आया है जो विकलांग लड़के-लड़कियां, जो आर्थिक रूप से सक्षम हैं, बाद में उनमें से ज्यादातर विकलांग को जीवन साथी नहीं अपनाना चाहते। आमतौर पर देखने में आया है कि विकलांग महिलाओं की शादी अपनी उम्र से बहुत ज्यादा उम्र के पुरुषों के साथ होती है, जबकि बहुत योग्य व सक्षम विकलांग पुरुष की शादी बहुत कम उम्र वाली लड़की से, अनपढ़, मंदबुद्धि या किसी गंभीर रोग से ग्रस्त लड़की से करवाई जाती है। जिसके असंख्य उदाहरण मेरी आंखों के सामने हैं।

नेशनल सैंपल सर्वे की एक रिपोर्ट बताती है कि महिलाओं के तलाक के मामलों में विकलांग दम्पतियों में तलाक के मामले सामान्य से बहुत ज्यादा सामने आए हैं।

विकलांगों के कल्याण और नर सेवा नारायण सेवा के नाम पर आयोजित होने वाले शादी के परिचय सम्मेलनों का आयोजन होता है, जिसमें दान-पुण्य के नाम पर लोगों से मोटा पैसा हड़पा जाता है। इन सम्मेलनों में कई-कई साल कोई शादी नहीं होती है। विकलांग सेवा संघ महाराष्ट्र के अध्यक्ष टी.एन. दुबे बताते हैं कि 90 फीसदी विकलांग अपने घर वालों की उपेक्षा का शिकार होते हैं, जिसके कारण उनमें आगे बढ़ने व तरक्की करके शादी द्वारा अपना घर बसाने की आशा खत्म हो जाती है।

विकलांगजनों को सशक्त बनाने के लिए उन्हें योग्यता के अनुसार घर में, समाज में तथा कार्यस्थल पर उपयुक्त जिम्मेवारियां निर्वहन करने के लिए सौंपनी चाहिएं। अब समय आ गया है कि विकलांगों को परनिर्भरता की संस्कृति का अंत हो और एक ऐसे समाज की ओर कदम बढ़ाया जाए, जिसमें विकलांगों के लिए सहयोगपूर्ण नजरिया रखा जाए।

सम्पर्क : 94675-67507

दीपचंद्र निर्मोही की कविता

सभी तो आदमी हैं

मस्तिष्क के
किसी कोने में
चिपके हैं
कई प्रश्नचिन्ह
और
मैं उदास हूं
भीड़ के पास हूं
जो
निरी तेज
दर्द में लिपटी हुई
रक्त के धब्बों से
गले तक लिथड़ी हुई
चीजों को धकेल कर
आकाश में घोलती है
    मैं भी पिल गया हूं
    भीड़ में ठिल गया हूं
    अधमरी लकड़ी-सा
    दोहरा हो गया हूं
आकाश
किसी के बाप का नहीं
धरती सबकी है
हवा को मत बांधो
धूप को भी
संकरी गली के
हर छोर तक जाने दो
गाने दो
हरेक मौसम को
खुलकर गाने दो
पानी की बूंदों को
गलियारे तक जाने दो
बल्बों की रोशनी को
महलों से झोंपड़ी तक
आने दो, आने दो
वे देह
जिनकी आंतें
विवशता की ठंड से
सिंकुड़ कर ऐंठ गई
उन्हें
प्यार की गर्मी दो
अन्यथा
उनका मन
घृणा से कुण्ठित हो
जीवन से तंग आ
अधिकार की खातिर
विद्रोह के द्वार पर
धरना देगा
मारेगा, मरेगा
फिर
मौसम भयावना होगा
कुरूप होगा
तब
सभी कुछ
अस्त-व्यस्त हो बिखरेगा
जो
संभवत: उचित नहीं
अत:
स्वयं जियो
और
दूसरों को जीने दो
क्योंकि
यहां 'सब' किसी का नहीं
'सब' सबका है
सभी को हंसने दो
गाने दो
आखिर
    सभी तो आदमी हैं।

सम्पर्क : 98136-32105

हरियाणा में रचित हिन्दी कविता की अर्द्धशती

▢राजेन्द्र गौतम

हरियाणा में रचित समकालीन हिन्दी कविता पर बात करते हुए एक दिक्कत सामने आती है। कविता का पार्थक्य भाषाओं और अलग-अलग काल-खंडों के आधार पर तो समझा जा सकता है पर सोनीपत से शामली की हिंदी कविता का अंतर समझ पाना अथवा पंचकूला से मोहाली की कविता को अलगा कर देखना थोड़ा कठिन है। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मैंने पिछले दिनों हरियाणा में रचित साहित्य से जुड़े आलोचना-ग्रंथों में ऐसे वाक्य पढ़े हैं कि फलां लेखक इसलिए अप्रासंगिक हो जाता है क्योंकि फलां पुस्तक प्रकाशित कराते समय वह हरियाणा से पंद्रह किलोमीटर दूर था। उन्हीं आलोचना-ग्रंथों में ऐसे रचनाकारों का प्रशस्ति-गायन भी देखा गया है, जिनका हरियाणा की संस्कृति से दूर का भी रिश्ता नहीं हैं। आजकल तो मुझसे भी जवाब मांगा जा रहा है कि मैं हरियाणा का नागरिक हूँ या नहीं। यह उल्लेख इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि इसमें संदर्भित लेखकों की 'नागरिकता' यदि किसी को विवादास्पद लगती है तो उसे मेरी निजी मान्यता समझ कर नजरअंदाज कर दें। यह बात दीगर है कि ये निजी मान्यताएं निराधार नहीं हैं।

हरियाणा की कविता का मूल्यांकन यहां हम पहली बार नहीं कर रहे हैं। पूर्ववर्त्ती ही नहीं, समकालीन कविता का मूल्यांकन भी अनेक विद्वानों द्वारा गत पचास वर्षों में अनेक बार हुआ है। 1985 में हरियाणा से बहुत दूर इलाहाबाद से 'उन्नयन' नामक एक पत्रिका का 'हरियाणा-पंजाब कविता विशेषांक' भी निकला था लेकिन इसमें संदेह नहीं है कि ये प्रयास वर्तमान रूप में हरियाणा के अस्तित्व में आने के कई वर्ष बाद आरम्भ हुए। इस दिशा में आरम्भ में महत्त्वपूर्ण कार्य 'हरियाणा साहित्य अकादमी' के द्वारा ही किया गया। अकादमी ने यह कार्य दो स्तरों पर किया है। एक, हरियाणा में रचित हिन्दी कविता का संग्रहण दूसरे उसका मूल्यांकन। संग्रहण-योजना के अंतर्गत 'सरगम', 'नयी सम्भावनाएं', 'रसम्भरा', 'कविता के आर पार', 'धूप और गंध', 'कविता-यात्रा-6' तथा 'हरियाणा की प्रतिनिधि कविता' के रूप में सात संकलनों का प्रकाशन हुआ है। हरियाणा में रचित हिन्दी कविता के समकालीन परिदृश्य को समझने में इन संग्रहों की सामग्री और इनके सम्पादकीय वक्तव्यों की विशेष भूमिका है। अकादमी ने अलग से दो मूल्यांकनपरक ग्रंथों का प्रकाशन किया है। वे हैं: 'हिन्दी साहित्य को हरियाणा का योगदान'- 1991 (सं. प्रो. शशिभूषण सिंहल एवं श्री सत्यपाल गुप्त) तथा 'हरियाणा का हिन्दी साहित्य'- 2008 (सं. प्रो. लालचंद गुप्त मंगल)। तीसरा बड़ा आयोजन हरियाणा सरकार द्वारा तैयार करवाए गए 'हरियाणा एन्साइक्लोपीडिया' का खंड तीन दो भागों के प्रकाशन के रूप में सामने आया है। इस आयोजन की सम्पादक डा. शमीम शर्मा हैं।

ऐतिहासिक महत्त्व के इन आयोजनों की एक सीमा भी है। यह कार्य मूलत: सर्वेक्षणपरक है और इसमें सामग्री के आकलन का प्रयास अधिक है। आरम्भ में यह जरूरी भी था लेकिन अब अगला और अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य यहां से प्रारम्भ होता है। वह है - इस सामग्री का पाठपरक विश्लेषण एवं विवेचन कर उसके प्रदेय का समूचे हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना। मूल्यांकन का कार्य कभी हड़बड़ी में नहीं हुआ करता। इसके लिए विस्तृत योजना बना कर निजी अथवा सांस्थनिक प्रयास करने होंगे।

मेरा आशय यह नहीं है कि हरियाणा में रचित हिन्दी कविता का पाठपरक अध्ययन हुआ ही नहीं है। प्रांत के विश्वविद्यालयों ने, विशेषकर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने पी-एच. डी. और एम. फिल. के शोधार्थियों द्वारा हरियाणा में रचित हिन्दी कविता का व्यापक पाठपरक अध्ययन भी करवाया है लेकिन इस शोधकार्य का स्तर विचारणीय भी है।

हरियाणा में रचित हिन्दी कविता के स्वर, स्तर और परिमाण का सापेक्ष सम्बन्ध यहां के भाषिक परिदृश्य से है। किसी भी समाज की रचनात्मक प्रतिभा का भी एक समग्र योग अर्थात् 'सम् टोटल' तो होता ही होगा। यह कुल प्रतिभा एक ही दिशा में गतिशील हो रही है या इसका वितरण हो रहा है, इससे उस समाज का रचनात्मक परिदृश्य भी प्रभावित होता है, ऐसा मैं मानता हूँ। लम्बे समय तक हरियाणा में रचित हिन्दी कविता का शेष हिन्दी कविता से पिछड़ने का एक कारण हरियाणा की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का एकमात्र मार्ग खड़ीबोली हिन्दी नहीं होना भी रहा है।

जिसे हम आज विशेष राजनैतिक सीमाओं में बंधा हरियाणा कहते हैं, उसका सांस्कृतिक अस्तित्व तो पुराना है और आजादी से पहले इस सांस्कृतिक हरियाणा में मात्रात्मक अनुपात की दृष्टि से सर्वाधिक काव्य-सर्जना हरियानी और उर्दू में हुई है। उसका काल-विस्तार भी खुसरो से लेकर अब तक है। विभाजन के बाद यहां आकर बसने वाले एक बड़े समुदाय ने पंजाबी में अपनी रचनात्मकता को मुखर किया।

हरियाणा में खड़ीबोली केवल नगरों में और वहां भी शिक्षित वर्ग द्वारा बोली जाती रही है, इसलिए इस तथ्य को स्वीकार कर लेने में कोई हर्ज नहीं है कि कई बड़े नामों की उपस्थिति के बावजूद 1950 तक हरियाणा में खड़ीबोली हिन्दी में रचित कविता का परिमाण ही सीमित नहीं रहा है, समग्र हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों से उसका तालमेल भी थोड़ा कम रहा है बल्कि सही मायने में अखिल भारतीय स्तर पर हरियाणा की कविता हरियाणा की वर्तमान राजनैतिक संरचना के बाद ही सम्भव हो पाती है। 'हरियाणा की प्रतिनिधि कविता' की भूमिका में माधव कौशिक ने लिखा है: ''यदि सत्तर के बाद की हरियाणा की कविता का अनुशीलन करें तो विशेष प्रकार के प्रभावोत्पादक बदलाव की मानसिकता दृष्टिगोचर होती है। उस समय कवियों की एक बड़ी जमात सामने आई तथा उन्होंने

कविता, नवगीत व ग़ज़ल के माध्यम से अपनी पहचान बनानी प्रारम्भ की। जिस प्रदेश के लिए यह प्रसिद्ध था कि यहां 'एग्रीकल्चर' तो है 'कल्चर' नहीं, वह प्रदेश धीरे-धीरे साहित्यिक मानचित्र पर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने लगा। तीन दशकों के उपरान्त स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन आ चुका है। गीत, नवगीत तथा ग़ज़ल के क्षेत्र में तो हरियाणा के रचनाकार प्रथम पंक्ति के सिरमौर कवियों में सम्मिलित किए जाते हैं।'' संयोग से मेरे द्वारा भी ऐसी ही स्थापना तीन दशक पूर्व 'कविता-यात्रा-6' की भूमिका में की गई थी। सत्तर के दशक में हरियाणा की कविता में कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं।

समकालीन यथार्थ से गहरे जुड़ाव ने कविता के कथ्य को बदला और शिल्प की ताज़गी ने उसको समकालीन हिन्दी कविता से जोड़ा। हरियाणा की समकालीन कविता विविधरूपा है। इस दौर में इसने अपने समय के डिक्शन को आत्मसात् कर भावबोध का युगानुरूप विकास किया है। पूर्ववर्ती समाज-सुधार की इतिवृत्तात्मक शैली की अपेक्षा प्रगतिशील सामाजिक प्रतिबद्धता उसमें अधिक है। कवि देख रहा है कि परिवेश बहुत खूँखार हो गया है। आम आदमी शोषण, मुद्रास्फीति, अभाव, माफिया-तंत्र, आतंक और जातिपरक शोषण के चंगुल में फँस गया है। कविधर्म की मांग यही थी वह युगबोध की अभिव्यक्ति का दायित्व निभाए। हरियाणा की समकालीन कविता की उपलब्धि का सबसे अधिक रेखांकनीय बिंदु यही है कि उसने इस दायित्व का भरपूर निर्वाह किया है। अल्प मात्रा में ही सही, पर कविता स्त्री विमर्श दलित विमर्श जैसे समकालीन बोध से भी कटी हुई नहीं है। खास बात यह है कि उसका दायित्व-निर्वाह सभी काव्य-रूपों के माध्यम से हुआ है।

समकालीन हिन्दी कविता की दो प्रमुख धाराएँ हैं। एक छांदसिक, दूसरी अछांदसिक। ये धाराएँ हरियाणा में निर्विरोध प्रवाहित रही हैं बल्कि कई कवियों ने दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं। उन कवियों की संख्या भी कम नहीं है, जिन्होंने छंद के भी अनेक रूपों --गीत, ग़ज़ल, दोहा, कवित्त आदि को अपनाया है। हरियाणा में रचित हिन्दी कविता के इन विविध स्वरों का समग्र विश्लेषण तो बहुत विस्तार की मांग करता है। यहां हम संक्षेप में इसका जायजा लेंगे। इस दौर में मात्रा की दृष्टि से मुक्त छंद और ग़ज़ल, समृद्धतम काव्यधाराएँ हैं। यह दावा अतार्किक और अप्रामाणिक होगा कि इन विधाओं में रचा गया सारा काव्य श्रेष्ठ ही है लेकिन इसमें श्रेष्ठता का उतना अंश अवश्य है, जो समकालीन हिन्दी कविता में हरियाणा को सम्मान दिलाता है।

गत पचास वर्षों में रचनारत छंद-मुक्त धारा के प्रमुख कवि हैं: पूरन मुदगल, सुगनचंद मुक्तेश, रूपदेवगुण पुष्पा मानकोटिया, सुभाष रस्तोगी, शिशु रश्मि, रामशरण युयुत्सु, अशोक भाटिया, राकेश वत्स, सुधा जैन, जितेन्द्र वाशिष्ठ, रामकुमार आत्रेय, हनुमंत राय नीरव, हरनाम शर्मा, रामनिवास मानव, विकेश निझावन, त्रिलोक कौशिक, मनमोहन, हरभगवान चावला, जयपाल, ओम सिंह 'अशफाक', मनोज छाबड़ा, विपिन चौधरी, अमित मनोज आदि। यह सूची बहुत लम्बी है यहां सबका उल्लेख सम्भव नहीं है अपितु इस कविता की प्रवृत्तियों का उदाहरणों से परिचय पाना बेहतर होगा।

हिन्दी कविता में बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हाशिए की अस्मिताओं को केंद्र में लाने का प्रयास विशेष रूप से हुआ है। हाशिए की इन अस्मिताओं में दलित, स्त्री एवं आदिवासी अस्मिताएं प्रमुख हैं। हरियाणा की विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण यहां की कविता में आदिवासी अस्मिताएं स्थान नहीं पा सकी हैं लेकिन दलित एवं स्त्री विमर्श से जुड़े आंदोलनों की छायाएं यहां के साहित्य पर भी पड़ी हैं। यह बात दूसरी है कि इन आंदोलनों की उतनी मुखर अभिव्यक्ति हरियाणा की कविता में नहीं हुई है, जैसी अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी कविता में दिखाई देती है लेकिन यहां के कवि का बदला हुआ सौंदर्य-बोध जरूर पाठक को प्रभावित करता है। यहां उदाहरण देने का अवकाश नहीं है। उल्लेखनीय है कि गत पचास वर्षों में हरियाणा के कवियों के छंद-मुक्त धारा के शताधिक संकलन प्रकाशित हुए हैं। जिनमें प्रमुख हैं-

अश्व लौट आएगा, ठहरा हुआ सत्र, एक चिड़िया उसके भीतर , (पूरन मुद्गल), रोशनी की लकीर, सब चुप हैं (सुगनचंद मुक्तेश), सुबह की तलाश, शब्दों का इंतजार (पुष्पा मानकोटिया), नारों के अंधे शहर में, आवाज के पेड़ (शिशु रश्मि), मुझे यकीन है, जरा और कविता (राकेश वत्स), गली का आदमी, एक बात पूछूं (रूपदेवगुण), बुझी मसालों का जुलूस, बूढ़ी होती बच्ची (रामकुमार आत्रेय), टूटा हुआ आदमी, कत्ल सूरज का, समय के सामने (सुभाष रस्तोगी), बीसवीं सदी का कीट्स (जितेन्द्र वाशिष्ठ), टूटते उजाले (रामशरण युयुत्सु), सूखे में यात्रा (अशोक भाटिया), निम्मो अनुत्तीर्ण क्यों (मधुकांत), अवन्नी चवन्नी (प्रदीप कासनी), अंकगणित बदल रहा है (त्रिलोक कौशिक), कुंभ में छूटी औरतें (हरभगवान चावला), दरवाजों के पीछे (जयपाल), भूकंप में बच्चे (ओम सिंह 'अशफाक'), चिड़िया कोई दुख तो नहीं (अमित मनोज) आदि ऐसे अनेक संकलनों के अतिरिक्त इस दौर में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएं इस समृद्धि में योग देती है।

मेरा मानना है कि हरियाणा की उर्दू की पृष्ठभूमि ग़ज़ल के बहुत अनुकूल रही है इसीलिए यहां उस पारम्परिक ग़ज़ल की तो प्रचुर रचना हुई ही जिस का दाय उसने उर्दू से ग्रहण किया है, विशेष यह है कि सत्तर के दशक से जब हिन्दी ग़ज़ल दुष्यंतकुमार त्यागी के साथ नया तेज लेकर सामने आती है तो हरियाणा के रचनाकारों की नयी पीढ़ी उससे विशेष रूप से जुड़ती है। हिन्दी ग़ज़ल को इस पीढ़ी ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है। ग़ज़ल के इन नए हस्ताक्षरों में विजय कुमार सिंघल, ज्ञान प्रकाश विवेक , माधव कौशिक और हरेराम समीप बड़े नाम हैं। इन कवियों को उदयभानु हंस, कुन्दन गुड़गांवी, राणाप्रताप गन्नौरी, निर्दोष हिसारी और बी.डी. कालिया हमदम जैसे कई उस्तादों की परम्परा मिली थी। राणाप्रताप गन्नौरी नयी और पुरानी पीढ़ी के संयोजन-स्थल पर अवस्थित हैं। उनकी इस तरह की ग़ज़लें नयी भावभूमि से जुड़ी हैं-

बन गया है पैसा अब ख़ुदा ज़माने का
घूमता है हर कोई जेब में ख़ुदा लेकर
यह दुकान हर सौदा घाटे का ही करती है
जाओगे न घर वापिस कोई फ़ायदा लेकर

तरक्क़ीपसंद शायरी से जुड़ी हिन्दी ग़ज़ल के सामने बड़ा मसला ग़ज़लियत को बचाते हुए ज़माने के तीखे धधकते सवालों से रू-ब-रू होना था। हरियाणा की नयी पीढ़ी के ग़ज़ल कहने वालों ने यह कमाल किया भी। सरमायेदारी और भ्रष्ट सियासत ने आम आदमी का जीना मुहाल कर दिया था। इस नये दौर में ग़ज़ल का साकी, मीना और सागर वाला तथा आशिक-माशूक वाला पहरन बेमानी हो गया था। तब कुछ ऐसा

स्वर हरियाणा की हिन्दी ग़ज़ल में सुनायी दे रहा था–

जब भी हमने पंख तोले हैं उड़ानों के लिए
हम चुनौती बन गए हैं आसमानों के लिए
ख़ामुशी में काट देते हैं जो सारी ज़िंदगी
खोल अब अपनी ज़बां उन बेज़बानों के लिए
सारी दुनिया के लिए जो फ़स्ल कल बोता रहा
आज वो मोहताज है क्यों चार दानों के लिए

यह तेवर है विजयकुमार सिंघल की ग़ज़लों का और इसी तेवर की अनेक ग़ज़लें उनके 'धूप हमारे हिस्से की', 'बर्फ से ढका ज्वालामुखी', 'सात समुन्दर प्यासे', 'धुंध से गुजरते' हुए शीर्षक संग्रहों में संकलित हैं।

उधर 'धूप के हस्ताक्षर', 'आंखों पर आसमान', 'इस मुश्किल वक्त में' के रचयिता ज्ञानप्रकाश विवेक अपने दौर के आदमी की उलझन और बेबसी को यों जुबान देते हैं:

तमाम घर को बयाबां बना के रखता था
पता नहीं वो दीए क्यों बुझा के रखता था
बुरे दिनों के लिए तुमने गुल्लकें भर लीं
मैं दोस्तों की दुआएं बचा के रखता था
वो जिस नदी पे उछाले हैं अपने पत्थर
मैं उसपे कागज़ी कश्ती बना के रखता था

माधव कौशिक भी सारी तकलीफ़ों को सहते हुए, सारी मुख़ालफ़त से टकराते हुए और नाउम्मीदी से लड़ते हुए रोशनी की बात यों करते हैं–

ये तो तय है रोशनी को अब कहां रख जाऊँगा
खोल कर सब के जहन की खिड़कियां रख जाऊँगा
जो जला करते हैं महलों को सजाने के लिए
उन चिरागो में बगावत का धुआं रख जाऊँगा
आने वाली पीढ़ियों को कुछ तो आसानी रहे
रास्ते भर खून के ताजा निशां रख जाऊँगा

माधव कौशिक का हरियाणा की हिन्दी ग़ज़ल में गुणात्मक दृष्टि से ही विशेष स्थान नहीं है, मात्रात्मक समृद्धि का पता भी उनके 'आइनों के शहर में', 'किरण सुबह की', 'सपने खुली निगाहों के', 'हाथ सलामत रहने दो', 'नयी सदी का सन्नाटा', 'आसमान सपनों का' जैसे संकलन देते हैं।

जैसा कि हम कह चुके हैं, इस दौर में हरियाणा में ग़ज़ल का अभूतपूर्व मात्रात्मक विस्तार हुआ है, उसका पता कुछ चुने हुए संकलनों से चलता है। वे हैं: 'आंधियों के दौर में', 'कुछ तो बोलो', 'किसे नहीं मालूम', 'हवा से भीगते हुए' (हरे राम समीप), 'समंदर के दायरे', 'मजबूरियां मेरी', 'क्यों सभी खामोश हैं', 'हादसा हूं मैं', 'इशारे हवाओं के' (देवेन्द्र मांझी), 'धूप के इश्तिहार', 'कुछ कदम फुटपाथ पर', 'कतरे में समुन्दर'(गुलशन मदान), 'इबारत हाशिए की' (दिनेश दधीचि), काली नदी, (चन्द्र त्रिखा), 'तलाश अपने साये की' (कंवल हरियाणवी), 'कहकशां'(रमेश सिद्धार्थ), 'वक्त के अंदाज', 'आवाजों के जंगल', 'अम्बर तक आते सपनों में', (अमरजीत अमर), 'बूंद-बूंद वेदना', (सारस्वत मोहन मनीषी), 'तपी हुई जमीन' (राजकुमार निजात), 'मालकौंस तथा पीड़ा का स्वयंवर', (विपिन कुमार सुनेजा), 'आओ खोलें बंद झरोखे' (संतोष धीमान), 'वक्त की शतरंज पर' (राजेन्द्र चांद), 'मंज़र मंज़र अंगारे' (योगेन्द्र मौदगिल), 'दुनिया भर के गम थे' (श्यामसखा श्याम), 'मैं फिर आऊंगा' (सत्यपाल सक्सेना),'रूह लेगी फिर जनम' तथा 'कर आजाद उजालों को' (आर के पंकज), 'सन्नाटा बुनते दिन' (घमंडीलाल अग्रवाल)।

हरियाणा के ग़ज़लकारों के स्वतंत्र संकलनों के अतिरिक्त संयुक्त संकलनों की संख्या भी कम नहीं है। ग़ज़ल के अन्य चर्चित हस्ताक्षर हैं–बलदेव राज शांत, अर्चना ठाकुर, राकेश वत्स, मनु गौतम, फज़रूद्दीन बशर, नसीम चसवाल, सोमप्रकाश चसवाल आदि। हरियाणा की ग़ज़ल ने कथ्य के क्षेत्र में ही उल्लेखनीय उपलब्धियां नहीं प्राप्त की हैं, इसकी तकनीक की श्रेष्ठता भी काबिले गौर है।

हरियाणा में पारम्परिक गीत की ज़मीन तो बहुत उपजाऊ रही है जबकि सन् साठ के पहले से नवगीत आंदोलन के अस्तित्व में आ जाने के बावजूद 1970-75 तक हरियाणा की कविता में इसकी कोई सुगबुगाहट सुनाई नहीं देती और पारम्परिक गीत का ही बोलबाला यहां दिखाई देता है। लेकिन उसके बाद नवगीत-धारा को हरियाणा के कई समर्थ रचनाकारों का सहयोग मिला है। हरियाणा में रचनारत नवगीतकारों के प्रदेय की चर्चा से पूर्व इतिहास-क्रम की दृष्टि से उन गीतकारों की चर्चा संक्षेप में कर लेना अपेक्षित होगा जिनका स्वर समकालीन हिन्दी कविता से तो पिछड़ता नज़र आता है लेकिन हरियाणा के साहित्यिक वातावरण को सजीव रखने और नये रचनाकारों को प्रेरित करने में जिनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ये रचनाकार हरियाणा के अस्तित्व में आने से दो-तीन दशक पहले से रचनारत थे पर उनके 1966 के बाद के काव्य में भी बड़ा प्रवृत्यात्मक परिवर्तन दिखाई नहीं देता। इन कवियों में कुछ चर्चित नाम हैं- जयनाथ नलिन, रामेश्वरलाल खंडेलवाल 'तरुण', छविनाथ त्रिपाठी, खुशीराम वशिष्ठ, उदयभानु हंस, रत्नचंद शर्मा, पी.डी. निर्मल, भगवानदास निर्मोही, रामावतार अभिलाषी, लीलाधर वियोगी और प्रभुदयाल कश्यप। इनके काव्य में उत्तरछायावादी प्रवृत्तियों की प्रधानता है। इस दौर के कुछ कवि-सम्मेलनी कवि भी रहे पर आने वाली पीढ़ी पर वे कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ सके। लोकप्रियता दृष्टि से इनमे उदयभानु हंस को काफी प्रतिष्ठा मिली।

नवगीत को लेकर रचनाकारों और आलोचकों में कई भ्रांतियां रही हैं। कुछ-एक ने तो इसे एक खास तरह का फॉरमूलाबद्ध लेखन मान लिया और कुछ खास शब्दों, पदबंधों और मुहावरों के प्रयोग को ही इसका आधार मान कर कई तुकबंदियों को नवगीत नाम देकर कवि-गौरव पाने का प्रयास किया है। वास्तव में नवगीत गीत का वह रूप है, जिसने पारम्परिक गीत की गलदश्रु भावुकता से तो गीत को मुक्त किया ही है, साथ ही उसमें व्यष्टि के साथ समष्टि के अनुभव को समाहित किया गया है और सामाजिक यथार्थ से गीत को जोड़ा गया है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि नवगीत आंदोलन पिछले पचास वर्षों से भी अधिक समय से अस्तित्व में रहा है लेकिन प्रवृत्त्यात्मक दृष्टि से यह जड़ या स्थिर नहीं है। उसमें युगबोध की सजग अभिव्यक्ति रही है, इसलिए इसमें आरम्भ में यदि आंचलिकता का स्वर प्रमुख है तो बाद में इसमें महानगरीय विसंगतियों का भी उतना ही सशक्त चित्रण है।

बीसवीं शताब्दी के अवसान काल में उत्तर आधुनिक परिवेश में जब भूमंडलीकरण के परिणाम स्वरूप बाजारवाद और उपभोक्तावाद का नंगा नाच शुरू हुआ तो नवगीतकार ने जीवन की उन तल्खियों को भी बहुत शिद्दत के साथ महसूसा है और कविता के प्रतिरोध दर्ज करवाने के दायित्व का निर्वाह करते हुए प्राणवान् कविता की सर्जना की। हरियाणा की कविता की यह एक बड़ी उपलब्धि है कि प्रदेश के कई नवगीतकारों के श्रेष्ठ स्वतंत्र गीत संकलन तो प्रकाशित हुए ही हैं, इसके अतिरिक्त उपर्युक्त विशेषताओं से सम्पन्न राष्ट्रीय स्तर

पर जितने भी प्रतिनिधि सम्पादित संकलन प्रकाशित हुए हैं, उन सभी में हरियाणा के कुछ नवगीतकारों को अवश्य स्थान मिला है। डॉ. शंभुनाथ सिंह द्वारा सम्पादित नवगीत दशकों और 'नवगीत अर्द्धशती' के रूप में जो तीन प्रतिनिधि संकलन प्रकाशित हुए हैं, उनमें कुमार रवीन्द्र और प्रस्तुत लेखक को भी स्थान मिला है।

हरियाणा के नवगीतकारों के सैंकड़ों गीत समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। कुछ विशिष्ट नवगीत-संग्रहों का उल्लेख यहां अपेक्षित है। वे हैं: आहत हैं वन, चेहरों के अंतरीप, पंख बिखरे रेत पर, सुनो तथागत तथा और हमने संधियां कीं (कुमार रवीन्द्र); गीत पर्व आया है, पंख होते हैं समय के, बरगद जलते हैं (राजेन्द्र गौतम); पंखुरी पंखुरी झरता गुलाब, त्रिविधा, एक बादल मन (राधेश्याम शुक्ल); जोग लिखी, खुशबू की सौगात (पाल भसीन); मौसम खुले विकल्पों का, शिखर संभावनाओं के (माधव कौशिक); घूंट भर जीवन (रामनिवास चावरिया) तथा हलफ़नामे सुबह के (सतीश कौशिक)।

उदारीकरण के में दौर में जन-जीवन में बहुत उथल-पुथल हुई है। रिश्तों की चूलें बुरी तरह से चरमराई हैं। हरियाणा के नवगीतकारों की यह एक बड़ी उपलब्धि है कि उसने छीजती संवेदनाओं के उपभोक्तावादी दौर में विसंगतियों को उजागर करती श्रेष्ठ गीत रचनाएँ दी हैं। कुमार रवीन्द्र अखिल भारतीय स्तर पर स्थापित नवगीतकार हैं। उनके गीतों का मात्रात्मक और गुणात्मक प्रदेय उल्लेखनीय है। निस्संदेह हरियाणा के नवगीतकारों की उपलब्धि अखिल भारतीय स्तर स्वीकृत हुई है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में हिन्दी कविता में दोहे का पुनर्जन्म और पुनर्संस्कार दिखाई देता है। यह दोहा मध्यकाल की आवृत्ति नहीं है अपितु उसका कथ्य और शिल्प नितांत नवीन है। यहां यह देख कर देख कर सुखद आश्चर्य होता है कि हरियाणा के कवियों ने नए दोहे का अनुकरण नहीं किया है बल्कि प्रवर्तन किया है। 1982 तक नया दोहा विशेष चर्चा में नहीं था जबकि उस वर्ष 'हरियाणा साहित्य अकादमी' के प्रकाशन 'नयी सम्भावनाएँ' में कुमार रवीन्द्र के कई सशक्त दोहे प्रकाशित हुए हैं। नए दोहे का संकलन रूप में प्रथम प्रकाशन का श्रेय भी हरियाणा के रचनाकार पाल भसीन को जाता है। इनके अतिरिक्त हरियाणा के चर्चित दोहाकार हैं। गत बीस वर्षों में उदयभानु हंस, कुमार रवीन्द्र, पाल भसीन, हरेराम समीप, राजेन्द्र गौतम, बलदेव राज शान्त, सारस्वत मोहन मनीषी, श्याम सखा श्याम, राम निवास मानव, नरेन्द्र अत्री, रक्षा शर्मा, सतपाल सिंह चौहान, नरेन्द्र आहूजा के अनेक संयुक्त और स्वतंत्र संकलन प्रकाशित हुए हैं। स्वतंत्र संकलनों में प्रमुख हैं: अमलतास की छांव (पाल भसीन) जैसे, साथ चलेगा कौन (हरेराम समीप), मनीषी सतसई (सारस्वत मोहन मनीषी), बोलो मेरे राम (राम निवास मानव), भारत सतसई (सतपालसिंह चौहान) आदि।

ऊपर हमने हरियाणा में रचित समकालीन हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है। हमारा लक्ष्य नाम-परिगणन नहीं है। इसलिए जिन रचनाकारों या कृतियों का यहां उल्लेख नहीं हुआ है, वह उनके महत्त्व का नकार नहीं है। यहां हमने एक नई करवट को पहचानने की कोशिश की है।

हरियाणा में रचित हिन्दी कविता के मूल्यांकन का समाहार करते हुए हम एक महत्त्वपूर्ण तथ्य को रेखांकित करना चाहेंगे। कविता अपनी जड़ों से जुड़ कर ही प्राणवान् हुआ करती है। अनुभव की आंच से तपाए बिना कृत्रिम अनुकरण मात्र से कविता न तो राष्ट्रीय हो पाती है और न अंतर्राष्ट्रीय! कई बार यह देख कर कष्ट होता है कि हमारे प्रदेश की अनेक कविताओं में हरियाणा की धड़कन गायब है। यहां की मिट्टी की महक उसमें नहीं है। हम यदि अपनी कविता में अपना परिवेश अंकित करेंगे तो देश तो उसमें अपने आप आएगा ही!

और अंत में एक बात यह भी- - उपर्युक्त समृद्धिपरक आकलन के बावजूद हमें यह नहीं मान लेना होगा कि हमने उपलब्धि के सारे शिखर छू लिए हैं। अभी हमें मात्रात्मक समृद्धि के साथ-साथ और आपेक्षिक गुणात्मक परिष्कार करना होगा। दलित विमर्श और स्त्री विमर्श जैसे नए विमर्शों की प्रासंगिकता को पहचानना होगा। ताकि भविष्य के रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह हरियाणा में रचित हिन्दी कविता की उपेक्षा न कर सकें।

सम्पर्कः 9868140469

●

लिखने की कला लिखने में नहीं, बल्कि जो ठीक नहीं लिखा गया है उसकी काट छांट करने की कला में निहित है। लोगों और सिर्फ लोगों के बारे में ही लिखते रहना उबाऊ काम है। यदि आपने लोगों के बारे में तीन कहानियां लिख डाली हैं तो चौथी कहानी घोड़े, कुत्ते या बिल्ली पर लिखिए। भले ही यह कहानी उन कहानियों से घटिया हो जिनमें लोगों के बारे में लिखा गया है। पर इसे बहुत रुचि के साथ पढ़ा जायेगा। पहली बात तो यह है दोस्तो, कि झूठ न बोला जाए। कला की यही विशेषता है और इसीलिए श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें झूठ नहीं बोला जा सकता। प्यार में, राजनीति में, चिकित्सा में झूठ बोला जा सकता है, लोगों को - यहां तक कि ईश्वर को भी धोखा दिया जा सकता है ... इस तरह की घटनाएं भी हुई हैं ... लेकिन कला में धोखा नहीं दिया जा सकता।

चेखव

हरियाणा में हिन्दी कहानी का परिदृश्य

❑ज्ञान प्रकाश विवेक

ज्ञान प्रकाश विवेक हरियाणा के प्रख्यात कथाकार हैं। उन्होंने नई कथा-भाषा का सृजन करते हुए कहानी को कलात्मक उच्चता प्रदान की है। अपने समय के यथार्थ की जटिलता, व्याकुलता, बेचैनी तथा उपभोक्तावादी समाज में बदल रहे सामाजिक संबंधों व सामाजिक संकट के विभिन्न आयामों को बेबाकी से अभिव्यक्त किया। विवेक के पास कथा कहने का विशिष्ठ कौशल है, किस्सागोई इनकी कहानियों को पठनीय बनाती है। उनका यह लेखक हरियाणा की हिन्दी कहानी को समझने की दृष्टि पैदा करता है। **-सं.**

कहानी घटनाओं का मजमा नहीं होती। कहानी भावुकता का उत्पाद और अखबारी खबरों का पुनर्उत्पाद भी नहीं होती। कहानी कुछ और होती है, इस सबके बावजूद। अनुभवों का ताप। संवेदना की लय। दृष्टि का नुकीलापन। सामाजिक यथार्थ के तलघर में झांकने की कुव्वत। मारक एकाग्रता। कथाभाषा का सृजन। भाषा में कहानी उतारने की कला और भाषा से खेलने का साहस। यथार्थ को कल्पनाशीलता से विस्तार देने की सलाहियत। शिल्प, शैली का नयापन। और किस्सागोई। इन सब तत्वों के अलावा कहानी में उपस्थित (कथन) और अनुपस्थित (अकथ) का शऊर!

कहानी की एक ज़रूरी शर्त उसकी पठनीयता होती है। बेशक! लेकिन उससे बड़ी शर्त कहानी की विश्वसनीयता होती है। कहानी इतना विश्वास पैदा करे कि पात्रों का संघर्ष अपना लगे और उनके दुख, कष्ट, अभाव, उनका टूटना-बिखरना, संवरना, विखण्डन इतनी आत्मीयता पैदा करें कि कहानी के बाहर पाठक उनको भोगता चला जाए। कहानी के पात्रों का आत्मनिर्वासन उसका अपना निर्वासन हो जाए।

फारसी का एक शेर है -

मन तू शुदम तू मन शुदी
मन जां शुदम तू तन शुदी

यानी मैं तू बन गया और तू मैं बन गया। मैं रूह हो गया। तू जिस्म बन गया। कहानी लिखते हुए एकमेक हो जाना।

लेखक जब इस तरह नुकीली एकाग्रता से कहानी को रचता है तो पाठक भी उसे उतनी ही शिद्दत से पढ़ता है।

हरियाणा के कलाकारों ने इस बात को समझा और बड़ी निष्ठा से कहानियां लिखी।

विभाजन के बाद जब हम हरियाणा की हिन्दी कहानी पर बात करते हैं तो वरिष्ठ रचनाकारों का एक बड़ा वर्ग हरियाणा कहानी में सक्रिय दिखाई देता है-स्वदेश दीपक, राकेश वत्स, पृथ्वीराज मोंगा, हेमराज निर्मम, यशपाल वैद्य, सुरेन्द्रनाथ सक्सेना, रूप देवगुण, रत्नचंद्र शर्मा, पुष्पा बंसल, बैजनाथ सिंह। लेकिन स्वदेश दीपक, राकेश वत्स और पृथ्वीराज मोंगा के अतिरिक्त, बाकी किसी लेखक की हरियाणा की कहानी में उपस्थिति, महत्वपूर्ण नहीं है। इन लेखकों ने कहानियां जरूर लिखीं, लेकिन अपने वक्तों की चुनौतियों के प्रति बेसरोकार रहे। इस वरिष्ठ पीढ़ी के बाद भी हरियाणा के अनेक कथाकार हुए जिन्होंने कहानियों को एक खास पेटर्न, खास मेनेरिज्म के तहत लिखा। कहानी का मुहावरा और शिल्प बदलने का इस पीढ़ी के पास शानदार मौका था। लेकिन इस पीढ़ी के लेखक खुद फारमूलाबद्ध हो गए, यथा-मधुकांत, सुभाष रस्तोगी, विकेश निझावन, कमला चमोला, दिबेन इत्यादि।

विडम्बना यह भी रही कि हरियाणा के रचनाकारों का रूझान कहानी के प्रति कम, लघुकथा के प्रति ज्यादा रहा। इन दो-तीन दशकों में लघुकथा संग्रहों की बाढ़ सी आ गई। एक और विधा ने हाहाकार मचा रखा है, वो है दोहा! साहित्य में उपस्थित रहने के ये आसान रास्ते हैं।

लेकिन स्वदेश दीपक ने कहानी लेखन में मुश्किल रास्ते चुने। उन्होंने कहानियां लिखीं, उपन्यास लिखे, स्मृति आख्यान (खंडित जीवन का कोलाज़) तथा मैंने मांडू नहीं देखा (आत्मवृतांत) लिखे। अपने कथा लेखन में उन्होंने जो भाषा अर्जित की, वो नायाब है। उन जैसा नस्रनिगार (गद्यकार) शायद ही कोई दूसरा हो। सिर्फ नाटक लिखे और 'कोर्ट मार्शल' अब तक ढाई हजार बार मंचित किया जा चुका है। उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं शहर की मौत, आहेरी, महामारी, क्योंकि हवा पढ़ नहीं सकती, मसखरे कभी नहीं रोते तथा किसी एक पेड़ का नाम लो।

स्वदेश दीपक की बहुत सारी कहानियों का वातावरण 'केंटोनमैंट' है यानी मिल्टरी परिसर! अम्बाला छावनी के मॉलरोड में उनका घर था। बिल्कुल पास सरहिन्द क्लब। मॉल रोड और स्टाफ रोड पर बहुत बड़ी कोठियां बंगले-मिल्टरी अफसरों, ब्रिगेडियर, मेजर के रिहायशी घर। पूरा इलाका फौजी अनुशासन से लबरेज। स्वदेश दीपक की कहानियों में वही फौजी तमतराक। वातावरण। वही पात्र। कथानक। संवाद। उल्लास। जवांमर्दी। बेबाकी। खुशरंगी। उदासी। अकेलापन। ड्रिंक्स और निर्वासन!

स्वदेश दीपक सही मायने में फनकार थे। उनकी कहानियों में उनका फनकार होता है, जो कहानी के केनवस में जिंदगी की विचित्र, अनोखी, अबूझ छवियों के रंग भर रहा होता है।

कहानी के भीतर कहानीपन को किस कलात्मक ढंग से व्यक्त किया जाता है-उन्हें इसका शऊर था। कहानी के भीतर वो भाषा के साथ खेलते भी थे। यथार्थ के भीतर फंतासी का इस्तेमाल - इसकी उन्हें महारत हासिल थी। क्योंकि 'हवा पढ़ नहीं सकती' तथा 'किसी एक पेड़ का नाम लो'-इसी पेचीदा शिल्प (फ़ंतासी मैं यथार्थ और यथार्थ में फ़ंतासी) की कहानियां हैं। क्योंकि 'हवा पढ़ नहीं सकती' का अंत! रेलवे प्लेटफार्म। नई दिल्ली का स्टेशन। डा. राधा प्लेटफार्म पर अपने पति कैप्टन रंजीत का इंतजार करती हुई। एनाउंसमेंट हो रहा है। युद्धबंदियों की गाड़ी के आने का। डा. राधा जानती है कि कै. रंजीत उसका पति युद्ध भूमि में मारा जा चुका है। वो फिर भी

खड़ी है। यहां जो अनुपस्थिति है वह सबसे बड़े उदासी के राग की तरह है। कहानी का आरंभ बेहद दिलचस्प और कल्पनाशील है और अंत! विडम्बनाओं को रचने की ताकत स्वदेश दीपक में हद दर्जे की है।

वो कहानियों में कौतुहल की रचना करते हैं। फ्रेम-दर-फ्रेम जिज्ञासा पैदा करते जाना उनकी शैली है। 'किसी एक पेड़ का नाम लो'-कहानी में जिस कलात्मक ढंग से फंतासी का इस्तेमाल हुआ है, वो बेमिसाल है। स्वदेश की यह अमर कहानी है। एक ताकतवर खूबसूरत मेजर विदेश से आ रही बेहद खूबसूरत जवान लड़की (अपने उच्च अधिकारी की बेटी) को एयरपोर्ट से लेने आया है। दिल्ली एयरपोर्ट से वापिस पंजाब और साथ में सुंदर माया बख्शी।

सफर और कहानी का विस्तार पाना। मेजर अजय इतना ताकतवर है कि गाड़ी पंकचर हो जाने और पान्ना न मिलने के बाद वो अपनी उंगलियों से नट बोल्ट खोल देता है। लेकिन अंत! कहानी का अंत हाहाकार पैदा करने वाला। यथार्थ का बीहड़ और फंतासी का टूटना!

'मसखरे कभी नहीं रोते' कहानी में अधूरे पात्रों का यथार्थ और इस यथार्थ में कल्पनाशीलता। कहानी का शिल्प इतना नया कि कहानी के सभी आज़मूदा मुहावरे पिछड़ गए। कहानी में नाटक है। दर्शक दो विक्षिप्त भाई एक गुंगी बहन। सीधे सरल सहज। लेकिन यही तीनों पात्र तब आक्रामक हो उठते हैं जब इनकी रोटियां चुरा ली जाती हैं। भूख सबसे बड़ा यथार्थ है। यहां भूख किसी बिम्ब की तरह दिखाई देती है।

जीवन का यथार्थ, प्रेम, स्मृतियां, कौतुहल, आवेग और भाषा की उंगलियों से स्पंदन पैदा करना-स्वदेश दीपक की कहानी का कला कौशल है। वो हरियाणा के सम्पूर्ण कथाकार हैं। वो कथाकार हैं या कथाकार थे यह कशमकश हलाक करके रख देती है। एक सुबह वो घर से निकले और फिर कभी लौटकर नहीं आए। कहानियों में कथन के पस:मंजर, अकथ की रचना करने वाला कथाकार स्वदेश दीपक, खुद किसी अकथ कथा की तरह हो गया।

अम्बाला छावनी के दो अन्य कथाकार जिन्होंने हरियाणा कहानी परिदृश्य में न सिर्फ पहचान बनाई, बल्कि धमक भी पैदा की, वो थे – राकेश वत्स और पृथ्वीराज मोंगा। पृथ्वीराज मोंगा सातवें-आठवें दशक में ऐसे कथाकार के रूप में उभरे, जिन्होंने राष्ट्रीय परिदृश्य में अपनी शिनाख्त दर्ज कराई। धर्मयुग और सारिका में उनकी कहानियां छपीं और चर्चित भी हुई। उन्होंने मध्यमवर्गीय यथार्थबोध की कहानियां लिखीं। यह वो समय था जब पुराने मूल्य टूट रहे थे। समाज अपने भीतर कशमकश-सी महसूस कर रहा था। आत्मनिर्वासन, अकेलापन, तंगहाली, ईगो जैसे मुद्दे पृथ्वीराज मोंगा ने अपनी कहानियों उठाए और सशक्त कहानियां लिखीं। उनके दो कहानी संग्रह 'वह कोई एक' तथा 'उसकी पहचान' प्रकाशित हुए।

हरियाणा की हिन्दी कहानी में राकेश वत्स की अहम् भूमिका है। उन्होंने हमेशा कहानी के क्षेत्र में हलचल पैदा की। कहानी को जीवंत माहौल दिया। कहानी की गोष्ठियों में उनकी आक्रामक उपस्थिति भी उनका मजबूत पक्ष बनती थी। उनकी जनवादी मिजाज की कहानियों के पात्र अक्सर 'लाउड' होते हैं। उनकी कहानियों में अकथ के विपरीत, सब कुछ खोल कर सपाट लहजे में बयान कर देने की तकनीक है। अंत नाटकीय जैसे कि बिरजू तो मारा जाएगा या फिर सावित्री और अंतिम प्रजापति कहानियां। उन्होंने उपन्यास, नाटक, कविताएं और कहानियां लिखीं। उनके कुछ प्रमुख कहानी संग्रह-पहर एक रोज का, अंतिम प्रजापति, अतिरिक्त तथा अन्य कहानियां, इन हालात में, महाकवि के वारिस हैं।

इस बात को कहने में कोई गुरेज नहीं कि उन्होंने शोषित, दमित, जीवन में संघर्षरत, गरीबी से जूझते पात्रों को केंद्र में रखकर कहानियां लिखीं। लेकिन कुछ कहानियां उन्होंने इन विषयों के विपरीत भी लिखीं कर्फ्यू और बंटवारा, इस सिलसिले में उनकी संवेदन लय पैदा करती कहानियां हैं। अकेलेपन से त्रस्त वृद्ध दम्पति की कहानी 'बंटवारा' भावनात्मक और मर्मस्पर्शी कहानी है। घर का बंटवारा हो चुका है। घर में रह गए हैं बूढ़े माता-पिता। और रह गई हैं स्मृतियां। और रह गया है अवसाद! यह कहानी नायाब प्रतीकों तथा प्रबल भावना के साथ लिखी गई जनवाद के सारे मुल्लम्मे उतारती, सशक्त कहानी है। इसी प्रकार उनकी एक कहानी हिफ़ाज़त है – जीव जंतुओं के प्रति सहानुभूति पैदा करती कहानी। यह कहानी समाज में छीज चुकी संवेदना के बीच अपनी जगह बनाती है।

तारा पांचाल हरियाणा कथा जगत के सही मायने में प्रेमचंद की परम्परा को विस्तार देने वाले कथाकार हैं। बेहद फ़क्कड़। जमीनी लेखक। यारबाश। बीड़ी के सुट्टे मारता, किसी चिंतक जैसा, किसी फकीर जैसा तारा पांचाल हरियाणा की हिन्दी कहानी परिदृश्य का बेहद सशक्त कथाकार। कमजोर और वंचितों के पक्ष में खड़ा यह कहानीकार, कहानी को खून-पसीने से सींचने वाला नायब किस्सागो था।

बिल्कुल अभी टीवी चैनलों पर बार-बार दिखाया जाने वाला 'दृश्य'। एक पति अपनी पत्नी की लाश को सिर पर ढोकर जा रहा है।

लगभग इसी विषय की कहानी तारा पांचाल बहुत पहले लिख चुके थे। ग्रामीण, अशिक्षित, उपेक्षित, बेहद गरीब पति-पत्नी। बस के भीतर। कंधे पर बेटे का शव। उसे इस तरह रखते-पुचकारते हुए कि वो मरा नहीं जीवित है। वो डरे हुए भयभीत। डाक्टर की हिदायत कि बेटे को मरा हुआ घोषित किया तो पुलिस बंद कर देगी दोनों को। यह कहानी जिसका यथार्थ इतना कड़ियल है और कथाकार की कल्पनाशीलता इतनी मारक कि हर पल हौलनाक मंजर उपस्थित होता है। कहानी 'खाली लौटते हुए', लेकिन दिल है कि दुख से भरा। आंखे हैं कि आंसुओं से लथपथ। दिमाग है कि ख़ौफ़ज़दा!

तारा पांचाल के पास अनुभवों को पकाने और उनकी पुनर्रचना तथा उन्हें संश्लिष्टता से तहरीर करने की शक्ति थी। प्रत्येक कहानी के लिए वो एक नई भाषा ईजाद करते और नई कथा शैली भी। उनकी कहानियों के पात्र देहाती, किसान, मजदूर, औघड़, दलित, शोषित, गर्दआलूद, अपने समय से पिछड़े हुए, तंगहाल जीवन जीते हुए, भद्रजनों के समाज से बहिष्कृत – तारा की कहानियां ऐसे पात्रों के पक्ष में खड़ी न्याय मांगती, प्रतिवाद की सशक्त आवाज़ पैदा करती कहानियां हैं।

उनकी कहानियों के पात्र अति साधारण। लेकिन इन्हीं साधारण पात्रों के बीच वो असाधारण कहानियां रचते चले

जाते – खाली लौटते हुए, निक्कल, टिक्स, झूठे, निर्माता, फोटो में बच्चा, गिरा हुआ वोट तथा मुनादियों के पीछे! उनका एकमात्र कहानी संग्रह 'गिरा हुआ वोट' प्रकाशित हुआ। उनकी एक कहानी है दीक्षा। मठ के प्रपंच पर तीखे कटाक्ष करती इतनी जीवंत कहानी। मोह से मुक्ति का पाठ पढ़ाने वाला महंत, स्वयं मोह के जंजाल में फंसा है। कहानी दृश्यात्मक है। औघड़पन, धूनी आंच, अंधेरा-उजाला, महंत का रोग, स्मृति, विभ्रम, चिलम भरना, बुड़बुड़ाना-कहानी को पाठक पढ़ते हुए 'देखता' भी है। यह 'देखना' कहानी की शक्ति है और विशेषता। यह हुनर तारा पांचाल में था। लेकिन विडम्बना यह है कि तारा पांचाल जैसा ग्रामीण परिवेश की कहानियां लिखने वाला। प्रेमचंद की परम्परा को जिंदा रखने वाला कथाकार इस दुनिया से विदा हो गया।

ललित कार्तिकेय किसी नक्षत्र की तरह उभरे। उनमें प्रतिभा का विस्फोटक था। कहानी के भीतर चुनौतियां पैदा करना और फिर उनसे टकराना, उनका मकसद था और यही उनकी शैली भी थी। प्रयोग के स्तर पर वो एक दुस्साहसी कथाकार थे। उनके भीतर एक बेचैन कथाकार हर वक्त, बदलती दुनिया के तौर-तरीकों से सचेत रहता था। उन्होंने न सिर्फ अपनी कथाभाषा को विकसित किया, बल्कि कहानी के शिल्प और शैली में जमकर तोड़फोड़ की। उन्होंने सामाजिक विडम्बनाओं, मध्यवर्गीय पाखण्ड, धर्मभीरूता, मक्कारी, यांत्रिकता और कायरता पर तीखी भाषा में प्रहार किया। उनकी कहानियों में वो समाज दिखाई देता है। जो नए मूल्यों की गर्दिश में, टूट-बिखर रहा है। वो बदहवास होते समाज की विकलांग नैतिकता और गणित की किताब जैसे रोज़नामचे को रेशा-रेशा खोलते चले जाते हैं। कसा हुआ शिल्प, गूढं अर्थ देती भाषा और इन्हीं तत्वों से छनकर आती शैली। हीलियम, त्रिशंकु का प्रेत, हौवा, एक कलावादी की फुसफुसी ट्रेजेडी तथा तलछट का कोरस!

ललित की कहानियों के पात्र बेहद जमीनी टूटते-जूझते, समाज की अमानवीयता से त्रस्त। व्यर्थता का बोझ ढोते। बाजारवादी सोच से अभिशप्त। 'तलछट का कोरस' ललित कार्तिकेय का एकमात्र कहानी संग्रह है जो अपनी तरह का अनूठा संग्रह है। तलछट का कोरस कहानी ने न केवल नई बहस को जन्म दिया। यह अहसास भी कराया कि कथाकार में साहसिक इच्छा शक्ति हो तो नए प्रयोग भी किए जा सकते हैं।

भगवान दास मोरवाल काला पहाड़ जैसे उपन्यास से राष्ट्रीय फलक पर उभरकर आए। फिर उसके बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। उन्होंने कहानियां भी लिखी। एक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ।

इस दौरान हरियाणा के कुछ और कहानीकारों के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता। अमृतलाल मदान जो नाटक और उपन्यास में यश अर्जित कर रहे थे, वहीं कहानी के क्षेत्र में भी सुक्खू जैसी वंचित के पक्ष में यादगार कहानी लिखीं। ओमसिंह अशफाक ट्रेड यूनियन से जुड़े रहे। आलोचना और अन्य साहित्यिक गतिविधियों में शरीक रहे। कहानियां भी लिखी। 'अथ नव दैत्य कथा' बाजारवादी छद्म और कार्पोरेट जगत के विसंगत पर प्रहार करती बेमिसाल कहानी है। राम कुमार आत्रेय लघुकथाएं लिखते रहे। एक कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुआ। 'पिलूरे' उनकी सशक्त कहानी है। सरबजीत के पास कहानी का नया संज्ञान था। टूटते मूल्यों और मन के अन्तर्द्वन्द्व को केंद्र में रखकर कुछेक ताजादम कहानियां लिखी। इसी दौर में मधुकांत, विकेश निझावन, सुभाष रस्तोगी जैसे कहानीकारों ने एक विषय को बार-बार दोहराया। उनकी 'टाइप्ड' और 'कटपीस' कहानियां, हरियाणा के कथा लेखन में कोई हलचल पैदा नहीं कर सकीं।

माधव कौशिक मूलत: ग़ज़लकार हैं। लेकिन उन्होंने समय-समय पर जितनी कहानियां लिखीं, उनमें अपने समय का यथार्थ, तीव्रता और तीक्ष्णता से मिलता है। वो इस नकार का भी प्रतिवाद करते हैं जो सामाजिक रूढ़ियों और जड़ हो चुकी रीतियों के रास्ते से होकर आता है। उनके पास स्मृतियों को कलात्मक रूप से व्यक्त करने की तौफ़ीक हासिल है। मसलन रोशनीवाली खिड़की। इस कहानी में स्मृतियों की अपनी जगह है। इसके साथ दो संस्कृतियों (चंडीगढ़ और भिवानी) जैसे शहरों का द्वंद्व भी सशक्त रूप से व्यक्त हुआ है। उनकी कहानी आफिसर्ज क्लब नए समाज और उसके द्वारा गढ़े गए नए मूल्यों की कहानी है। यहां जो संस्कृति है। दरहक़ीक़त वो अपसंस्कृति ही है। यहां उच्चाधिकारियों का रूमानियत, ठाठ बाट, रंगीनी, रस रंजन और भ्रष्टाचार से कमाए पैसे का बंटवारा। तथा सौंदर्य प्रतियोगिता। यह सौंदर्य प्रतियोगिता, स्त्री देह तक पहुंचने की वाली सुरंग है। माधव कौशिक की यह बेहद सशक्त कहानी है, जिसे उन्होंने नई कथाभाषा में व्यक्त किया है।

हरियाणा कथा लेखन में महिला लेखिकाएं भी सक्रिय रही हैं, लेकिन उनका कोई महत्वपूर्ण योगदान दिखाई नहीं देता।

हरियाणा के युवा कथाकारों की ताज़ादम उपस्थिति आश्वस्त करती है। हरियाणा ही नहीं राष्ट्रीय फ़लक पर भी उन्होंने कहानियों के जरिए दस्तक दी है। इन युवा कथाकारों ने बदलते समाज के बिगड़ैल मूल्यों और विखंडित विश्वासों के तलघर में झांकने की जरूरी कोशिश की है। यहां नए प्रयोग का साहस तथा कहानी के प्रति गहरा लगाव भी दिखाई देता है। हरभगवान चावला, नवरत्न पाण्डेय, ब्रह्मदत्त शर्मा, अमित मनोज, विपिन चौधरी, अमित ओहलाण तथा सुरेश घनघस अपने समय का संज्ञान ले रहे हैं।

हरभगवान चावला के पास आंचलिकता के गाढ़े अनुभव हैं तो लोक जीवन की अनेक छवियां भी उनके कथा लेखन में मौजूद हैं। कहानी लेखन में जिस धैर्य, ताप और संयम की जरूरत होती है, वो हरभगवान के पास मौजूद है। वो महज कहानियां नहीं लिखते, कहानियों में लोक जीवन की आख्यान रचना भी करते चलते है। मसलन उनकी कहानी रोज़रूखाला (रखवाली करने वाला) यह शब्द संभवत: उन्होंने खुद ईजाद किया है। यहां रोज़रूखाला का मेहनतकश जीवन, कठिनाइयां हैं वो तो हैं लेकिन कहानी को जिस शिल्प में व्यक्त किया गया है, वो अद्भुत है। रोज़रूखाला का गाढ़ा दुख, इस निस्संग समय में अपना एक प्रतिसंसार रचता है। बिल्कुल इसी तरह की कहानी बीरबहूटी और पता-ठिकाना कहानियां हैं। इन कहानियों का वातावरण हैरान करता है तो कथा शैली विस्मित करके रख देती है।

हरभगवान चावला की कहानियों

के पात्र ठेठ देहाती, लोकजीवन से जुड़े, दीन हीन दलित, उपेक्षित, वंचित, संघर्षशील, टूटकर भी हार न मानने वाले होते हैं। हरभगवान चावला शहरी मिज़ाज की कहानियों के बरअक्स अपनी जमीनी लोक रंग तथा लोक हकीकतों की कहानियां लिखते चले आ रहे हैं। इसीसे उन्होंने हरियाणा के कहानी परिदृश्य को समृद्ध किया है। बेशक अप्रैल-2016 में कथा देश में प्रकाशित एक तन्हा शजर उनकी साधारण कहानी है। पिता द्वारा बेटी का बलात्कार - इसे कहानी का विषय बनाना इतना सरल नहीं था कि अखबार की खबर को एक विस्तृत खबर में बदल दिया जाए। कहानी का अंत पहले से तय था।

इसके बावजूद हरभगवान चावला हरियाणा के सचेत, अनुभव सम्पन्न तथा ग्रामीण अनुभूतियों के विरल कथाकार हैं।

बिल्कुल नए समय के युवा कवि, सम्पादक और कथाकार अमित मनोज ने हरियाणा के कथा परिदृश्य में जरूरी हस्तक्षेप पैदा किया है। वो ग्रामीण परिवेश से आते हैं। वो एक बेचैन युवा कवि और कथाकार हैं ग्रामीण जीवन उनकी कहानियों (और कविताओं) में कथ्य का रूप अख़्तियार करता है। अमित मनोज ने पिछले वर्ष 'रेतपथ' पत्रिका का कविता विशेषांक छापकर यह अहसास कराया कि हरियाणा में सृजन शक्तियां, प्रबल भावना के साथ काम कर रही हैं।

वो कहानी के लिए कोई कृत्रिम शिल्प नहीं गढ़ते। सहजभाव से कहानी लिखते हैं जो विश्वास पैदा करती है जैसे कि सपने, चूड़ियां, सूखे पर फोटो तथा नकचूटी कहानियां हैं। 'घास, भैंस और कलावती' कहानी में एक सादगी से भरपूर, संघर्षशील, निर्धन ग्रामीण महिला की मार्मिक कहानी है। एक तरह से यह संघर्ष, निर्धनता और स्त्री के दुख की आख्यान रचना भी है। वंचित की पीड़ा, उम्मीद का टूटना क्या होता है वो इस कहानी में तहेदिल से तहरीर हुआ है।

विपिन चौधरी सशक्त कवयित्री, अनुवादक और कथा लेखिका है। उनमें बेचैन कर देने वाली जिज्ञासाएं हैं। ये जिज्ञासाएं, नए बनते समाज की कंद्राओं तक ले जाती हैं। अनुभवों की पुनर्रचना करना और पात्रों के मनोविज्ञान को कथानक में तबदील करने का हुनर उनमें है। आक्टोपस की मुख्य पात्र 'दीदी' का कम्पलैक्स और जटिल चरित्र की संरचना! यह महानगरीय नई तहज़ीब की विडम्बनामूलक कहानी है, जिसमें मैं पात्र की दीदी, किसी उलझे हुए धागे का गुच्छा प्रतीत होती है। विपिन ने थोड़े समय में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। हिन्दी काव्य जगत में उनकी संवेदन लय को सुना जाने लगा है। तो कहानियों में उन्होंने अपनी एक युवा कथा लेखिका के रूप में शिनाख्त अर्जित की है। उनकी कहानियां हंस, कथादेश, पाखी परिकथा पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित हुई हैं।

विपिन, कहानी के आसान रास्ते नहीं चुनतीं। वो अपनी कहानियों में पात्रों के जटिल व्यवहार को कहानी का कथ्य बनाती हैं। इसके लिए वो नया शिल्प और शैली ईजाद करती है। वो आधुनिक कथाबोध की कहानी लेखिका हैं। हंस में प्रकाशित उनकी कहानी - प्रेम की इबारत पर परकाया प्रवेश और चमकीला फ़रेब - नए समय के प्रेम और उसके अहसास, द्वंद्व और ख़लिश की 'स्टाइलिश' कहानी है। बिल्कुल इसी तरह उनकी पाखी अगस्त अंक में प्रकाशित वॉकआऊट कहानी की रेणु जो प्रेम और अकेलेपन के बीहड़ में आत्मनिर्वासित जैसी। ऐसी कहानियां लिखने के लिए जिस हांट करती शैली और भाषा की ज़रूरत होती है, विपिन चौधरी के पास वो सब है।

ब्रह्मदत्त शर्मा हरियाणा कथा साहित्य में तेजी से उभर कर आए हैं। उनके कहानी संग्रह-'चालीस पार' और 'मिस्टर देवदास' प्रकाशित हो चुके हैं। उत्तराखंड त्रासदी पर उन्होंने उपन्यास भी लिखा है। उनकी कहानियों के पात्र मध्य वर्ग से आते हैं। ब्रह्मदत्त मध्यमवर्गीय समाज की जीवन शैली और साइकी को खूब समझते हैं। उसी मिजाज को कहानी के शिल्प में गढ़ते हैं। मसलन फैसला कहानी (देस हरियाणा अंक एक) यहां धन का वर्चस्व, बाजारवादी संस्कृति, संबंधों में जड़ता और यांत्रिकता का प्रवेश! मीशेल फूको ने कहा है- पदार्थीकरण और यांत्रिकता संबंधों को विखंडित कर देगी। वो हो भी रहा है। बड़ा भाई अपनी जमीन बेचकर शहर में घर बनाने चला जाता है। यहां द्वंद्व भी है। कशमकश, स्मृतियां - कहानी के भीतर पात्र के मनोविज्ञान को प्रखर रूप से व्यक्त करती हैं।

ब्रह्मदत्त कथातनाव को बरकरार रखते हैं। उसे अंत तक टूटने नहीं देते जैसे कि आ अब लौट चलें और प्लॉट कहानियां। कारपोरेट जगत का चातुर्य और उसके बरअक्स सीधे सरल लोग! ताकतवर लोगों का समाज साधारण की उपेक्षा करता है। मिस्टर देवदास - यह नए समय के नए प्रेम प्रसंगों की कहानी है। नए समय और बदलते मूल्य। खारिज होती संवेदना। व्यर्थ होती भावना। मन की बेचैनी। उथल पुथल। द्वंद्ध और क्षोभ। यह कहानी हमारे नए समाज का चेहरा रिफ़्लैक्ट करती है। चेहरे जो टाइमटेबल के बोर्ड से होकर रह गए हैं।

कहानी लिखते हुए कथाकार उस लोक को उद्घाटित करता है, जिसे संसार नहीं जानता। ऐसा भी हो सकता है संसार उन अनुभवों को जानता हो जिस पर कथाकार अपनी कहानी का निर्माण करना चाहता हो। ऐसे में वो बिल्कुल नए शिल्प से अनुभवों को तहरीर करता है।

अमित ओहलाण ने यही किया है। यह उनकी पहली कहानी है - बूंदें गिरती रहेगी लेकिन....पाखी-जून 2016 में प्रकाशित। यहां जो इमेजिज की रचना है, वो चकित करती है। यह एक प्रेम कहानी है। यह कहानी किसी पाठ की तरह है कि प्रेम कहानी इस तरह भी लिखी जा सकती है। प्रेमी 'मैं पात्र' शिद्दत की गर्मी में, जामुन के पेड़ के बीच बैठी प्रेमिका तक पहुंचता है। उसका वहां तक पहुंचना, कल्पनालोक की रचना है। ठेठ देहाती यथार्थ लेकिन कल्पना की शक्ति से तिलिस्म की रचना। गांव के भीतर युवा प्रेमी प्रेमिका का एक निजी, भावनाओं से लबरेज गांव। जलती दोपहर, गांव के कुत्ते, गायें, देसी कीकरों की बणी, खेत, ट्रैक्टर, चप्पल! प्रेमिका तक पहुंचना। संवादों की अनोखी जमीन का तैयार होना। प्रेम कहानी जैसे कोई स्मृति आख्यान हो और इस बीच चिड़ी चिड़े की लोककथा - प्रेम के व्याकुल प्रश्न। और गाढ़े होते हुए।

सांपला में रहने वाले युवा कथाकार अमित ओहलाण की यह पहली कहानी है। बेहद सफल कहानी। भाषा से खेल खेलना बहुत बाद में हासिल होता है।

लेकिन अमित ओहलाण यह खेल अपनी पहली कहानी में खेलते हैं। बिम्ब रचते हैं। रूपक गढ़ते हैं। हर पल नई कथाभाषा से तआरूफ़। खेत, मुंडेर, पगडंडियां, चीटियां, आकाश, घास, धूप, जोहड़ – केवल शब्द नहीं रहते। प्रतीक बनकर उभरते हैं। ऐसा महसूस होता है जैसे कहानी के भीतर कविता लिखी जा रही हो।

नवरत्न पाण्डेय प्रयोगधर्मी कहानीकार, कवि, रंगकर्मी हरियाणा की मिट्टी से वाकिफ, हवा का रूख समझने वाले, कहानी के बदलते सरोकारों की संचेतना और शऊर रखनेवाले रचनाकार हैं। उनके पास जदीद सोच है और नया कहने की बेताबी। नए शिल्प के लिए वो उदग्र और नए कथ्य की तलाश में व्याकुल रहते हैं। वो कहानियां, कविताएं लिखते कम हैं। नया क्या लिखा जा रहा है – उसे जानने समझने और पढ़ने के लिए वो अधीर रहते हैं। वो नाटक करते रहे हैं। नाटक का वातावरण, जीवंतता, एकाग्रता और संतुलन उनकी कहानियों में भी देखा जा सकता है। मसलन हंस जुलाई–2016 में प्रकाशित उनकी कहानी–एक और दिन तुम्हारे बिना। इस कहानी में कहानी तो है ही, स्मृतियों का आखेट है और नाटक की छाया भी। संवाद। पात्रों की कशमकश। प्रेम की अटूट चाहत। अनुपस्थिति का उदास राग और स्मृतियों की व्याकुल करती, ख़ामोश–सी धमनियां–जिन्हें कान लगाकर सुना जा सकता है। उनकी कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे जिन्दगी एक काठ का मंच हो और उस पर नए वक्त के मुंसिफ अपनी आहटें बिछा रहे हों। उनकी एक कहानी है – कहानियां पेड़ों पर नहीं उगतीं। (इसी शीर्षक से उनका कहानी संग्रह भी है।) कहानी में कहानी नहीं, कहानी की खोज है और इसी में कहानी है। कहानी के स्तर पर यह एक प्रयोग है।

नवरत्न पाण्डेय की खूबी यह भी है कि वो कहानी के लिए नए मुहावरे की तलाश करते हैं। कहानी ऐसे लिखते हैं जैसे कोई किस्सागो, किस्से का बयान कर रहा हो। कई बार तो उनकी कहानियां, बतकही के अंदाज में बेहद अनौपचारिक। इसके विपरीत, उनकी कुछ कहानियां, समाज के कड़ियल यथार्थ से शाना–बन–शाना टकराती हुई, मसलन – एक कतरा सच – जो व्यवस्था की जड़ता की कहानी है। नवरत्न की कहानियों का 'मैं' पात्र बाजारवादी संस्कृति से टकराता, टूटता उसका उपहास उड़ाता, विडम्बनाओं को तोड़ता जुझारू पात्र है। कहानियों में नवरत्न पाण्डेय, समाज के निरीह पात्र के लिए, सत्ता के ताकतवर प्रतिष्ठानों से प्रतिवाद रचते हैं।

चीन के दार्शनिक लिन यू टांग की पुस्तक है बिटवीन टीयर्स एंड लाफ्टर! आंसू और हंसी के बीच जो जीवन है – हरियाणा के कथाकार उस जीवन पर, यथार्थवादी कहानियां लिख रहे हैं। यहां प्रेम कहानियां भी लिखी जा रही हैं, लेकिन उसमें भी भय है जो समाज के अहंकार से छनकर आया है।

फाकनर ने कहा था कि कहानी लिखना अंधेरे जंगल में रोशनी की लकीर ढूंढने जैसा है। लेकिन यह रोशनी की लकीर आखिर है क्या?...मनुष्यता, रोशनी की लकीर ही तो है।

हरियाणा के कथाकार उस मनुष्यता की तलाश में व्याकुल होकर कहानियां लिख रहे हैं। कथा परिदृश्य के लिए यह शुभ संकेत है।

सम्पर्क : 098134-91694

लू-शुन

क्रांतिकालीन साहित्य

एक महान क्रांति के पूर्व लगभग सम्पूर्ण साहित्य सामाजिक उत्पीड़न और आक्रोश को मुखरित करता है, सामाजिक स्थितियों के प्रति दुख और असंतोष व्यक्त करता है। विश्व में इस तरह की रचनाएं बहुत हैं। मगर पीड़ा तथा आक्रोश की ये अभिव्यक्तियां क्रांति पर कोई असर नहीं डालतीं, क्योंकि महज शिकायतें शक्तिहीन होती हैं। वे जो आपका दमन कर रहे हैं, शिकायतों की उपेक्षा करेंगे। चूहा केवल चीख सकता है, फिर भी बिल्ली किसी तरह का लिहाज किए बगैर उसे खा जाएगी। अत: जिस मुल्क के पास महज शिकायतों का साहित्य है, वह बेकार है, क्योंकि वह वहीं रूका रहता है। जैसा कि एक मुकद्दमें में पराजित पक्ष तब अपनी शिकायतों का हवाला देना शुरू करता है, जब उसका प्रतिपक्ष समझ जाता है कि वह इसे आगे जारी रखने की स्थिति में नहीं है और जल्द ही मामला निपट जाएगा। अत: शिकायतों का साहित्य, किसी व्यक्ति की शिकायतों की तरह, दमन करने वाले को सुरक्षा का बोध कराता है। जब कुछ मुल्क देखते हैं कि शिकायत करना बेकार है, तो शिकायत करना बंद कर देते हैं और अधिकाधिक पतनशील होते चले जाते हैं। मिश्र, अरब, फारस तथा भारत सभी इस बात के गवाह हैं। उनके पास कोई आवाज नहीं है। मगर जिन तमाम मुल्कों के पास ताकत है, जो विद्रोह करने का साहस कर सकते हैं, जब शिकायतें बेकार साबित होती हैं, वे सच का सामना करते हैं और उनका विलाप गुस्सैल दहाड़ में बदल जाता है। जब ऐसा साहित्य आता है, वह विद्रोह की अगुवाई करता है और चूंकि लोग पहले से गुस्से से भरे रहते हैं, क्रांति फट पड़ने के पहले के साहित्य में अक्सर उसका प्रतिरोध करने का निर्णय तथा बदला लेने की ख्वाहिश प्रकट होती है। इस तरह के साहित्य ने अक्तूबर क्रांति के अग्रदूत का काम किया। मगर इसके अपवाद भी हैं, जैसा कि पोलैंड में लंबे अर्से से बदले का साहित्य था, हालांकि मुल्क के मामले में वह युरोप के महासमर के प्रति आभारी रहा।

हरियाणा में फलती-फूलती हिन्दी गज़ल

□विपिन सुनेजा 'शायक़'

ग़ज़ल काव्य की बड़ी ही सुंदर विधा है। ग़ज़ल शेरों की एक लड़ी होती है। जिसके शे'र में सूक्ष्म मनोभावों की आलंकारिक अभिव्यक्ति होती है। इतिहास बताता है कि हिन्दी ग़ज़ल तो तेरहवीं शताब्दी में लिखी जाने लगी थी, उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी कवियों का ध्यान फिर ग़ज़ल की ओर गया, लेकिन सफलता मिली बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में। गत चालीस वर्षों से हिन्दी ग़ज़ल ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। पत्र-पत्रिकाओं तथा कवि-सम्मेलनों में हिन्दी ग़ज़ल को अच्छा-ख़ासा स्थान मिला है और धीरे-धीरे हिन्दी ग़ज़ल भी उर्दू ग़ज़ल से स्पर्धा की तैयारी में है। देश के जिन कवियों ने हिन्दी ग़ज़ल के विकास में अपना योगदान दिया है उनमें से एक बहुत बड़ा प्रतिशत हरियाणा के कवियों का है। आइए, हरियाणा के इन ग़ज़लकारों के बारे में जानें, एक-एक बानगी के साथ। सबसे पहला नाम आता है हिसार निवासी राज्यकवि उदयभानु हंस का जिन्होंने बड़ी सरल भाषा में जीवन के यथार्थ को शब्दबद्ध किया है-

जी रहे हें लोग कैसे आज के वातावरण में।
सोच में दिन डूब जाता, रात कटती जागरण में।
बेशरम जब आंख हो तो कोई घूंघट क्या करेगा,
आदमी नंगा खड़ा है सभ्यता के आवरण में।

गन्नौर से सम्बद्ध रखने वाले राणा गन्नौरी अनेक भाषाओं के विद्वान हैं। सहजता उनकी ग़ज़लों की सबसे बड़ी विशेषता है।

ज़ख़्मे-दिल मैं दिखाते-दिखाते थका।
दर्द अपना सुनाते-सुनाते थका।
आप आए न आने का वादा किया,
आपको मैं बुलाते-बुलाते थका।

पंचकूला के बी.डी. कालिया 'हमदम' भी उस्ताद शायर हैं। उर्दू के साथ-साथ हिन्दी को अपनी ग़ज़लों में समुचित स्थान देते हैं।

कभी शब्द को कभी बिम्ब को कभी भाव को भी सुना करो।
जो पढ़ा नहीं वो लिखा करो, जो लिखा नहीं, वो पढ़ा करो।
ये तो पत्थरों की हैं बस्तियां, यहां टूटने का रिवाज है,
जो है दर्पणों सा स्वभाव तो कहीं और जा के बसा करो।

अम्बाला के महेंद्र प्रताप चांद की ग़ज़लों में गंगा-जमनी रंग नज़र आता है।

मजबूरी लाचारी लिख। हां रूदाद हमारी लिख।
मात-पिता को दे बनवास, खुद को आज्ञाकारी लिख।

भिवानी के विजेन्द्र 'गाफ़िल' की शैली तो पारम्परिक है, पर बात नई होती है-

मैं एक दर्द कहीं से चुरा के लाया हूं।
बड़े जतन से इसे घर बुला के लाया हूं।
सुना है वक्त ने तेवर बदल लिए अपने,
ये एक ख़ास ख़बर मैं उड़ा के लाया हूं।

रोहतक से सम्बध रखने वाले दरवेश भारती अपनी पत्रिका के माध्यम से ग़ज़ल के छन्द-विधान के बारे में युवा पीढ़ी को मार्गदर्शन देते हैं। स्वयं बड़ी सुगठित ग़ज़लें कहते हैं-

बीच मंझदार के वो फंसा रह गया।
जो किनारों को ही देखता रह गया।
चुप्पियां-चुप्पियां ही थीं दोनों तरफ,
हाले-दिल अनकहा अनसुना रह गया।

जींद के महावीर सिंह दुखी के शे'र देखिए-

हर तरफ गहरे अंधेरे, रोशनी है दूर यारो।
क्यों उजालों से अभी तक आदमी है दूर यारो।
बांटते हैं लोग खंजर अब तिलक-चन्दन लगाकर,
मौत हरदम सामने है, ज़िन्दगी है दूर यारो।

हिसार के राधेश्याम शुक्ल अपनी ग़ज़लों में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रतीकों का खूब प्रयोग करते हैं-

चारणों की भीड़ में मिल जाएगा कोई कबीर।
ढूंढ चांदी के शहर में कोई तो होगा फ़क़ीर।
अब पराये दर्द से कोई पिघलता ही नहीं,
हर हृदय इस्पात का है और संगमरमर का शरीर।

कैथल के विजय कुमार सिंघल ने ग़ज़ल को नए तेवर दिए हैं-

जंगल-जंगल ढूंढ रहा है मृग अपनी कस्तूरी को।
कितना मुश्किल है तय करना खुद से खुद की दूरी को।
इसको भावशून्यता कहिए चाहे कहिए निर्बलता,
नाम कोई भी दे सकते हैं आप मेरी मजबूरी को।

दुष्यंत कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल का जो नया मुहावरा गढ़ा था, उसी परंपरा के हैं बहादुरगढ़ के ज्ञान प्रकाश 'विवेक'-

तमाम घर को बयाबां बना के रखता था।
पता नहीं वो दिये क्यों बुझा के रखता था।
बुरे दिनों के लिए तुमने गुल्लकें भर लीं,
मैं दोस्तों की दुआएं बचा के रखता था।

कुछ ऐसा ही अंदाज चंडीगढ़ निवासी माधव कौशिक का भी

है, जो संवेदनाओं के अनुरूप शब्द-चयन करने में निपुण हैं-

बस एक काम यही बार-बार करता था।
भंवर के बीच से दरिया को पार करता था।
अजीब शख्स था खुद अलविदा कहा लेकिन,
हर एक शाम मेरा इन्तजार करता था।

चंडीगढ़ के ही चंद्र त्रिखा आधुनिक परिवेश से शब्द उठाकर लयात्मक ग़ज़लें लिखते हैं-

मन का बोझीलापन धो लें।
चलो नई वैब्साइट खोलें।

सारस्वत मोहन मनीषी की ग़ज़लों में राष्ट्र के प्रति प्रेम और सांस्कृतिक प्रदूषण की चिन्ता उजागर होती है-

हिल उठी पूरी इमारत नींव के पत्थर बदल दो।
हो गई तेज़ाब लहरें, नाव के लंगर बदल दो।
अणुबमों की दौड़ अंधी, बांटता दुर्गन्ध गन्धी,
बांझ धरती हो न जाए, विष भरा अम्बर बदल दो।

फरीदाबाद के दिनेश रघुवंशी की ग़ज़लों में उग्र स्वर सुनाई देते हैं-

समय हर बार देता है गवाही।
फ़क़ीरी ने झुका दी बादशाही।
मिलेंगे ख़्वाब उन आंखों में तुमको,
वो जिन आंखों ने देखी हो तबाही।

सोनीपत के ए.वी. भारती 'आदिक' घुटन भरे वातावरण में भी खुलकर जीने की प्रेरणा देते हैं-

यूं न होटों में गुनगुना मुझको।
जिन्दगी थोड़ा खुलके गा मुझको।
मुझको मेरे ही साथ रहने दे,
मुझसे मत छीन ए अना मुझको।

नफ़स अम्बालवी की ग़ज़लों में रोमांटिक तत्व अवश्य विद्यमान रहता है, जो ग़ज़ल का अनिवार्य अंग है-

सारा आलम बुझा सा लगता है।
वक्त कितना थका सा लगता है।
तूं अगर छू भी ले, छलक उट्ठे,
शाम से दिल भरा सा लगता है।

कुरुक्षेत्र के कुमार विनोद की ग़ज़लों में कल्पना की नई उड़ान दिखाई देती है-

कोई सपना हकीकमत में बदल जाए तो क्या कीजे।
किसी दिन चांद धरती पर उतर आए तो क्या कीजे।
क्षितिज को मानकर सच तुम चले जाओ कहीं तक भी,
मरूस्थल में भरम पानी का हो जाए तो क्या कीजे।

कुरुक्षेत्र के ही दिनेश दधीचि की ग़ज़लों में कोमलता भी है और नवीनता भी-

फ़ितरतन कुछ तो हुआ करती हैं कोमल परियां।
और कुछ गर्म हवा से हुई बेकल परियां।
देखकर ताल-तलैया कहीं फूलों का हुजूम,
यूं ही रूक जाती हैं, कैसी हैं ये पागल परियां।

युवा ग़ज़लकारों में सोनीपत के विकास शर्मा 'राज़' ने ग़ज़ल के कलात्मक सौष्ठव पर पूरा ध्यान दिया है-

बोझ पलकों पे रखा हो जैसे।
शाम का वक्त सज़ा हो जैसे।
इस अंधेरे में दिये का बुझना,
ज़ख्म पर ज़ख्म लगा हो जैसे।

भिवानी के श्याम वशिष्ठ 'शाहिद' की मधुर ग़ज़लें उनके मधुर स्वर में सुनने को मिलती हैं-

जो आंसू आ गए चलकर, दृगों के द्वार क्यों रोकूं।
तेरी नफ़रत नहीं रूकती, मैं अपना प्यार क्यों रोकूं।
मैं बलि का एक बकरा हूं, तेरे हाथों में है खंजर,
ज़रा से सर की खातिर मैं तेरा त्यौहार क्यों रोकूं।

इनके अतिरिक्त सुरेन्द्र वर्मा, राकेश वत्स, अमरजीत अमर, शमशेर सिंह दहिया, राजेंद्र चांद, हरेराम समीप, सतीश कौशिक, राज कुमार निजात, महेंद्र जैन, सरदारी लाल कमल और लोक सेतिया तन्हा ने ग़ज़ल का कारवां बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अब कुछ ऐसे ग़ज़लकार जिनके ग़ज़ल संग्रह तो प्रकाशित हुए ही हैं, संगीत-एलबम भी जारी हुए हैं। ऐसे ही एक ग़ज़लकार हैं महेंद्रगढ़ के सुरेश मक्कड़ 'साहिल'-

तितलियां भंवरे तो शायद उनपे मंडराते नहीं।
फूल कागज के मगर ऐ दोस्त मुरझाते नहीं।
पनघटों की रौनकें, वो सांग-मेले गांव के,
याद रख, गुज़रे ज़माने लौट के आते नहीं।

आजकल करनाल में रह रहे गुलशन मदान की ग़ज़लों को भूपेंद्र और मीताली ने स्वर दिया है-

बन के मेरा हमक़दम तू साथ चल।
कुछ तो हो तन्हाई कम तू साथ चल।
ये सफ़र जनमों से लम्बा है अगर,
आरज़ू है हर जनम तू साथ चल।

रेवाड़ी के रमेश सिद्धार्थ की ग़ज़लों को हरियाणा के ही युवा गायक रोहित चतुर्वेदी ने गाया है-

निभाना फ़र्ज हो तो बस ज़मीर काफी है।
डगर दिखाने को तो इक फ़क़ीर काफ़ी है।
ये जात-पात की दीवारें गर गिरानी हों,
पढ़ो न पोथियां, पढ़ लो कबीर काफ़ी है।

रेवाड़ी के विपिन सुनेजा 'शायक़' ने एलबम 'तरन्नुम' में अपनी आठ ग़ज़लें स्वयं संगीतबद्ध करके स्वयं गाई हैं। उन्हीं में से एक ग़ज़ल है-

दिल धड़कते हैं अभी पर भावनाएं मर गईं।
वेदनाएं बढ़ गईं, संवेदनाएं मर गईं।
देह की चादर को ताने सो रही हर आत्मा,
ज्ञान बेसुध सा पड़ा है, चेतनाएं मर गईं।
कोई भी नायक नज़र आता नहीं इस भीड़ में,
क्रांति होने की सभी संभावनाएं मर गईं।

यदि ग़ज़ल को संगीतबद्ध किया जाएगा, वह जन-जन तक पहुंच सकती है। इस दिशा में हरियाणा के कलाकार आगे आएंगे, ऐसी आशा है।

सम्पर्क - 09991110222

हरियाणा में पंजाबी भाषा

❐डा. हरविन्द्र सिंह

'पंजाबी' शब्द से तात्पर्य पंजाब का निवासी होने से भी है और यह पंजाब-वासियों की भाषा भी है। पंजाब की यह उत्तम भाषा 'गुरमुखी' लिपि में लिखी जाती है।[1] पंजाबी भाषा की वर्णमाला जो शारदा और टांकरी से निकली है इसमें गुरुओं के मुख-वाक्य गुरमुखों ने लिखे, जिस कारण नाम 'गुरमुखी' प्रसिद्ध हुआ। पंजाब प्रदेश की शुद्ध भाषा इन्हीं अक्षरों में लिखी जा सकती है। कई लेखकों ने लिखा है कि गुरमुखी अक्षर गुरु अंगद देव जी ने रचे हैं, परन्तु यह भूल है। श्री गुरु अंगद स्वामी ने सिर्फ प्रचार किया है। गुरु नानक देव जी की लिखी वाणी 'पट्टी' जो राग आसा में है, उसके पाठ से यह संशय दूर हो जाता है कि पैंतीस अक्षरों की वर्णमाला उस समय मौजूद थी और 'ड़ाड़ा' अक्षर, जो बिना पंजाबी के और किसी भाषा में नहीं (उस समय तक), 'पट्टी' में दिखाई पड़ता है।

जब हम शारदा व टांकरी के अक्षरों से गुरमुखी के अक्षर मिलाते हैं, तो बहुत सी शक्लें आपस में मिलती हैं। गुरमुखी अक्षर समयानुसार अपना स्वरूप बदलते रहे हैं।[2]

कुछ विद्वान इस मत से अवश्य अपनी सहमति व्यक्त करते हैं कि पैंतीस अक्षरों (पैंती अक्खरी-पंजाबी वर्णमाला का पंजाबी नाम) का वर्तमान क्रम जरूर गुरु अंगद देव जी की देन है। यह एक आम धारणा है कि गुरमुखी लिपि का निर्माण गुरु अंगद देव जी ने किया। श्रद्धालुओं/अनुयायियों का विचार यह भी है कि गुरु के पावन मुख से निकली होने की वजह से इसका नाम गुरमुखी पड़ा। यह एक अटल सच्चाई है कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब को गुरमुखी लिपि में ही लिखित स्वरूप दिया गया है। परन्तु श्री गुरु ग्रंथ साहिब की समस्त वाणी को पंजाबी मानना तथ्यों से मुंह मोड़ना होगा। इस महान ग्रंथ में पंजाबी के साथ-साथ अनेकों और भारतीय आर्यन भाषाओं के साहित्य को भी संग्रहित किया गया है। लिपि में सुधार कर इसको पावन गुरुवाणी और गुरुमत साहित्य के योग्य बनाने में श्री गुरु अंगद देव जी के योगदान की भरपूर प्रशंसा करनी बनती है।

अनेक विद्वानों के शोध ने यह सिद्ध कर दिया है कि गुरमुखी लिपि गुरुओं से पहले मौजूद थी। इसके अनेक अक्षर गुरुकाल से पहले ही निश्चित स्वरूप ग्रहण कर चुके थे। वाणी तो अवश्य किसी महान् व्यक्ति के मुख से उच्चरित होती है, परन्तु लिखित माध्यमों-लिपि चिन्हों-के संबंध में ऐसा नहीं होता। लिपि मुख से नहीं निकलती। इसलिए ऐसा मानना कि गुरुमुख से निकली होने के कारण इस लिपि का नाम गुरमुखी है, उचित नहीं। गुरमुख व्यक्तियों ने गुरुमत साहित्य को लिखित स्वरूप देने के लिए जिस लिपि का प्रयोग किया, उसका नाम गुरमुखी पड़ गया, यह तर्क सार्थक लगता है।[3]

गुरमुखी, शाहमुखी और देवनागरी लिपि में लिखी जा रही इन्डो-आर्यन भाषा परिवार से संबंधित पंजाबी भाषा को भारतीय पंजाब, देश के अन्य क्षेत्रों, पाकिस्तान के निवासियों और अन्य बहुत सारे देशों में रह रहे लोगों ने अपनी बोल-चाल की भाषा में स्वीकृत किया है। लगभग चौदह करोड़ लोगों की यह भाषा विश्व में बारहवें स्थान पर है। पाकिस्तान में पंजाबी बोलने वालों की संख्या 6 करोड़ से ऊपर (कुल आबादी का 44.15 प्रतिशत) है। भारत में तीन करोड़ से ज्यादा लोग पंजाबी बोलते हैं। लाहौर और अमृतसर के क्षेत्रों में बोली जाती माझी उपभाषा को माणक पंजाबी भाषा का दर्जा हासिल है। पोठोहारी, झांगी, पहाड़ी, शाहपुरी, हिंदकी, मलवई, दोआबी, पुआधी, डोगरी, मुलतानी/सरायकी, धानी इत्यादि पंजाबी की और उपभाषाएं हैं। वर्तमान में भारत और पाकिस्तान के साथ-साथ इंग्लैंड, कनाडा, यूएई, अमेरिका, सऊदी अरब, हांगकांग, मलेशिया, दक्षिण अफ्रीका, म्यांमार, फ्रांस, इटली, थाईलैंड, जापान, मॉरीशस, सिंगापुर, ओमान, लीबिया, बहरीन, कीनिया, आस्ट्रेलिया, तनजानिया, कुवैत व जर्मनी समेत लगभग पच्चीस देशों में इस भाषा को बोला जा रहा है। इन देशों में इस भाषा के प्रफुल्लित होने का मुख्य कारण पंजाबियों द्वारा वहां के बहुराष्ट्रीय सभ्याचारों के साथ सकारात्मक संवाद सृजत करना है। उन देशों में पंजाबी भाषा को ज्ञान-विज्ञान और बाज़ार की आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किए जाने के सार्थक प्रयास हुए हैं। बहुत सारे देशों में पंजाबी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के विशेष प्रबंध भी किए गए हैं। इस भाषा के बारे में शोध संबंधी परियोजनाएं भी बहुत से देशों में क्रियान्वित की गई हैं।

भारत में इस भाषा की दशा व दिशा संतोषजनक नहीं है। देश-विभाजन के उपरान्त पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब में खींची गई विभाजन रेखा ने इस भाषा के विकास-रुख को उलट मोड़ देने में भूमिका अदा की है।

पंजाब और चंडीगढ़ में इसको प्रशासनिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। यहां इसकी लिपि गुरमुखी है। दिल्ली में पंजाबी प्रशासनिक दर्जे वाली भाषाओं में एक है। हरियाणा में भी पिछले कुछ अर्से से पंजाबी को राज्य की दूसरी भाषा का दर्जा प्रदान किया गया है। हरियाणा में बहुत सारे पंजाबी इसे लिखते वक्त गुरमुखी के स्थान पर देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं, परन्तु इसे शैक्षणिक/शैक्षिक क्षेत्रों में स्वीकार्यता हासिल नहीं है।

भाषायी विभाजन के आधार पर भारतीय पंजाब को जब (1 नवम्बर 1966) तीन प्रांतों पंजाब, हिमाचल और हरियाणा के रूप में अलग-अलग कर दिया गया, तो हरियाणा में इस भाषा की तस्वीर का रंग और भी बेरंग हो गया। हरियाणा के विशेष संदर्भ में बात करते हुए इस तथ्य की ओर ध्यान देना और भी जरूरी बन जाता है कि हरियाणा में पंजाबी भाषी होना और पंजाबी बिरादरी/भाईचारे से संबंधित होना, मूलतः भिन्न पहलू हैं। भाई काहन सिंह नाभा की पंजाबी के बारे में यहां शुरू में दर्ज परिभाषा इस संदर्भ विशेष में खरी नहीं उतरती। पाकिस्तान की धरती से दर-बदर होकर

हरियाणा में आकर बसे पंजाबी भाईचारे को यहां की स्थानीय मानसिकता ने कभी भी स्वीकृत नहीं किया, बल्कि इस बिरादरी के प्रति विशेष दूरी बनाए रखते हुए बेगानगी का व्यवहार भी अपनाए रखा है। यह बिरादरी भी अहीर, अरोड़ा, बणिया, भाटिया, ब्राह्मण, महाशा, गुज्जर, कलाल, खाति (तरखान), आहलूवालिया, कम्बोज, खत्री, लबाणा, जट्ट, राजपूत, सैणी, सूद इत्यादि बिरादरियों में बंटी हुई है। इनसे आगे और भी उप दर्जे-बन्दियां विद्यमान हैं।

पंजाबी भाषी और पंजाबी बिरादरी के साथ भावुक रूप से जुड़े वह लोग जो पंजाबी जुबान और पंजाबी साहित्य के प्रति समर्पित हैं। उनका व्यवहार भी हरियाणवी जीवन-शैली, हरियाणवी संस्कृति और हरियाणा में बस रहे अन्य लोगों के मानसिक अन्तः द्वंद्वों/अन्तः विरोधों और संबंधों के प्रति उदासीन ही रहा है। दोनों पक्षों की एक-दूसरे के प्रति उदासीनता ने हरियाणा में बहु-सभ्याचारों के आपसी संवाद के हालात पैदा ही नहीं होने दिए। सिक्ख पंजाबी, नामधारी सिक्ख, हिन्दू पंजाबी, रिफ्यूजी/शरणार्थी या पाकिस्तानी के लक़ब से संबोधित किए जाने वाले यह पंजाबी अलग-अलग दायरों में बंटे/सिमटे हुए हैं। इनके सामने बुनियादी संकट अपनी आत्म-पहचान का है। यह अपने-अपने धार्मिक दायरों में सिमटे रहने, पंजाबियत की मुख्यधारा के संकल्प के साथ जुड़े रहने या किसी सांझा हरियाणवी पंजाबी-शैली को सृजत करने जैसे अन्तः द्वंद्वों का शिकार यह पंजाबी खण्डित मानसिकता के संताप को भोग रहे हैं।

तथ्यों का तथ्य यह भी है कि हरियाणा की धरा पर रचा जा रहा पंजाबी साहित्य पंजाबियत की मुख्यधारा के प्रति तो हल्की सी सहमति व्यक्त करता प्रतीत होता है, परन्तु इसमें से हरियाणवी मिट्टी की महक वाला सार/वस्तु मूलतः गायब है। हरियाणा अंदर रचे जा रहे साहित्य को दोयम दर्जे का साहित्य मानने वाली पंजाबी साहित्य की मुख्यधारा ने भी इसे नज़रअंदाज किया हुआ है।

हरियाणा पंजाबी साहित्य की स्थापना हुई है, पंजाबी में अकादमी ने 'शब्द बूंद' नाम की मासिक पत्रिका शुरू की है और राज्य में पंजाबी को दूसरी भाषा का दर्जा भी हासिल है, परन्तु इसका हरियाणा में पंजाबी भाषा की स्थिति, इसके अध्ययन-अध्यापन पर कोई जादूई प्रभाव पड़ा हो, ऐसे कोई प्रमाण सामने नहीं आ पा रहा है। कुछ एक साहित्यकारों को इसका प्रतिफल अवश्य मिला है। सभी सम्मानित साहित्यकारों के बारे में कोई अति सरलीकृत राय तो नहीं बनाई जा सकती, परन्तु यह जरूर कहा जा सकता है कि यदि पहले कुछ नामवर साहित्यकार नजरअंदाज होते जा रहे हैं, तो अब कुछ एक अनाधिकृत भी इन सम्मानों पर अधिकार जताते हुए देखे जा सकते हैं।

हरियाणा में रचित पंजाबी साहित्य अपनी भिन्न एवं विलक्षण हरियाणवी पहचान बनाने में असमर्थ रहा है। हरियाणा का पंजाबी साहित्यकार स्थानीय हरियाणवी सरोकारों के प्रति उदासीन रहा है। वह हिन्दी, उर्दू या हरियाणा प्रांत के और भाषाओं के साहित्यकारों से संवाद सृजित किए जाने के प्रति सचेत नहीं हो पाया।

शैक्षणिक क्षेत्रों में भी पंजाबी शिक्षकों को ऐसे ही खतरों एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। शिक्षक को हर समय उसकी नौकरी खतरे में होने का डर ही बना हुआ हो तो उसके लिए अध्यापन एवं चिंतन जैसे मुद्दों का गौण हो जाना स्वाभाविक जान पड़ता है। सकारात्मक सुखद शैक्षणिक वातावरण का निर्माण न हो सकना, आवश्यक साधनों/संसाधनों की अल्पज्ञता, पाठ्य-पुस्तकों एवं उच्च स्तरीय समीक्षात्मक ग्रंथों की कमी भी अध्ययन एवं अध्यापन के रास्ते में बड़ी बाधा है।

हरियाणा के अधिकांश विद्यालयों में पंजाबी विषय की पढ़ाई का विशेष प्रबंध नहीं है। यही मुख्य वजह है कि घरेलू पंजाबी पृष्ठभूमि का विद्यार्थी भी महाविद्यालय में आकर भी पंजाबी भाषा को हिन्दी के जरिए ही सीखने का प्रयास करता है। यह परिस्थितियां अत्यंत शोचनीय व दयनीय हैं। उसकी बोली, उसकी शैली, उसके उच्चारण का खण्डित होना स्वाभाविक है। पंजाबी भाषा या पंजाबी साहित्य के प्रति ऐसे विद्यार्थी का व्यवहार सहज नहीं हो सकता।

हरियाणा के कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अलावा किसी और विश्वविद्यालय में पंजाबी विभाग ही नहीं है। दो सौ से भी अधिक निजी/सरकारी सहायता प्राप्त/अर्द्ध सरकारी/सरकारी महाविद्यालयों में पंजाबी विषय नहीं पढ़ाया जाता। प्राथमिक/मिडल/उच्च/हायर सैकेण्डरी विद्यालयों में भी बहुत कम में पंजाबी विषय के अध्यापन का प्रबंध है।

हरियाणा में पंजाबी अध्ययन-अध्यापन की एक बड़ी समस्या/चुनौती यह भी है कि एक ही कक्षा में अलग-अलग भाषायी/उपभाषायी व अलग-अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थी मौजूद रहते हैं। जो शब्द-जोड़ों के वास्तविक पंजाबी सार-तत्व को समझने से असमर्थ होते हैं। उदाहरण के तौर पर 'संग-संघ' शब्द समूह का जिक्र किया जा सकता है। पंजाबी पृष्ठभूमि वाला विद्यार्थी इसके अर्थ 'शर्म-गला' के रूप में करेगा और गैर-पंजाबी पृष्ठभूमि वाला इनको 'गैल-गैल जाना व यूनियन या संगठन' के रूप में ग्रहण करेगा।

पंजाबी भाषा को अन्य विषयों की पढ़ाई का माध्यम बनाए जाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। विज्ञान, तकनीक, दर्शन, सूचना प्रोद्योगिकी, मैडिकल, इंजीनियरिंग, स्पोर्टस इत्यादि की पढ़ाई का इस भाषा में कोई प्रबंध नहीं है। बाज़ार या मंडी की आवश्यकताओं से भी इसको जोड़ा नहीं गया है। किसी भी भाषायी प्रबंध को जिन्दा रखने के लिए ऐसे प्रयास अनिवार्य हैं।

हरियाणा में पंजाबी भाषा के विकास के लिए सरकारी संरक्षण की सख्त अनिवार्यता है। इसके लिए सभी पंजाबियों को और कौमियतों/बिरादरियों/भाईचारों/अन्य भाषाओं के साहित्यकारों/चिंतकों/बुद्धिजीवियों के साथ जुड़कर सार्थक संवाद का सृजन करते हुए बहु-कौमी सांझा सभ्याचार निर्मित करने के लिए ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। इससे अन्य भाषाओं की समृद्धि व विकास के रास्ते भी खुलेंगे और सुखद परिस्थितियां निर्मित होंगी और ऐसे में ही पंजाबी भाषा हेतु सुखद वातावरण का सृजन संभव हो सकेगा। स्वस्थ और सचेत कोशिशों से ही हरियाणा में पंजाबी भाषा से जुड़े प्रश्नों के स्थायी समाधानों की तलाश की जा सकेगी।

संदर्भ :

1. भाई काहन सिंह नाभा कृत महान कोश, पृ. 793
2. वही, पृ. 418-419
3. डा. एस.एस. जोशी, 'गुरमुखी लिपि अते पंजाबी भाषा', खोज पत्रिका, अंक 56, सितम्बर 2002

सम्पर्क: 94162-53570

हरियाणा में उभरता रंगमंच

❑गुरनाम कैहरबा

आर्थिक रूप से समृद्ध माने जाने वाले हरियाणा प्रदेश में नाटक-रंगमंच व कला का क्षेत्र लगातार उपेक्षित रहा है। जिस वजह से यहां पर कलात्मक पिछड़ापन देखा जा सकता है। हरियाणा में कोई समृद्ध परम्परा नही रही। मगर वर्तमान में हरियाणा में रंगमंच के नए अंकुर फुट रहे हैं जो हरियाणा में बड़े सांस्कृतिक बदलाव का संकेतक है। समकालीन हिंदी रंगमंच में हरियाणा अब जाना जाने लगा है। यहां रंगमंच का भविष्य काफी समृद्ध दिखाई पड़ता है।

पिछले कई वर्षों से हरियाणा में लोक सम्पर्क विभाग द्वारा निरंतर टैगोर थिएटर चंडीगढ़ में नार्थ जोन कल्चरल सेंटर पटियाला के सहयोग से नाट्य महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है जोकि रंगमंच की दृष्टि से बहुत बड़ी पहल है। कुरुक्षेत्र में बने मल्टी आर्ट कल्चरल सेंटर को हरियाणा में एक उभरते हुए कलाकेंद्र के रूप में देखा जा सकता है। यहां लगातार हो रहे नाटक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों से एक कलात्मक माहौल तैयार करने की कोशिश की जा रही है ।

हरियाणा ज्ञान विज्ञान समिति के मार्गदर्शन में हरियाणा के करनाल, कुरुक्षेत्र ,पानीपत ,रोहतक ,हिसार , जींद , कैथल ,सिरसा ,भिवानी में नाटक टीमों का गठन हुआ। इन नाटक टीमों ने गांव में जाकर लोगों को जागरूक करने का काम किया और रंगमंच के लिए उपजाऊ जमीन तैयार की। हरियाणा के विश्वविद्यलयों द्वारा आयोजित युवा महोत्सवों में नाट्य प्रस्तुतियों से नाटक के एक नयी बिरादरी सामने आयी है ।

हरियाणा में करनाल के आस पास व्यक्तियों और संस्थाओं ने रंगमंच को स्थापित करने में रुचि ली है। हरियाणा ज्ञान विज्ञान समिति , सार्थक कला मंच, शहीद सोमनाथ स्मारक समिति,एंडोवर्ट ग्रुप काम कर रहे है। ज्ञान विज्ञान समिति ने करनाल में महिला बाल-विकास ,कन्या-भ्रूणहत्या ,जातीय संकीर्णता और शिक्षा से जुड़े नाटक किये। जिनमें 'एक नयी शुरुआत', 'हिंसा परमो धर्म' , 'लड़की पढ़कर क्या करेगी' ,'मेरी जात', 'हम लेंगे ऐसा बदला उनसे' और 'नयी पहल' जैसे नाटक करके लोगों में जागरूकता का काम किया है।

सार्थक कला मंच पिछले कई सालों से करनाल में रंगमंच के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। इसके निर्देशक संजीव लखनपाल हैं। इन्होंने प्रेमचंद की कहानियों का रंगमंच किया है जिसमें 'बड़े भाईसाहब', 'गुल्ली डंडा', 'सवा सेर गेहूं' हैं। पीयूष मिश्रा लिखित नाटक 'गगन दमामो बाज्यो' के दस से ज्यादा प्रदर्शन कर चुके हैं।

करनाल में अर्पणा ट्रस्ट भी अपने आध्यात्मिक लाइट एंड साउंड शो करते रहे हैं। अब वो लगभग बंद हो चुका हैं ।एंडोवर्ट ग्रुप के निर्देशक सुमेर शर्मा हैं जो कि ज्यादातर सांग और नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से लोगों को जागरूक करने काम कर रहे हैं।

शहीद सोमनाथ स्मारक समिति ने इंद्री में नाटक की प्रस्तुतियां दी हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से शिक्षा ग्रहण कर चुके इंद्री निवासी नरेश नारायण ने यहां पहला स्टेज नाटक 'मरदूद -ए-हरम' का निर्देशन किया। समिति ने प्रसिद्ध नाट्य अभिनेत्री ज्योति डोगरा के द्वारा निर्देशित नाटक 'तोये' के मंचन के लिये इंद्री में आमन्त्रित किया।

हरियाणा में बढ़ते बाजारवाद के बीच एक सांस्कृतिक बहार बनाने की कोशिश की गयी हैं। इन प्रयासों में श्री अनूप लाठर का योगदान भी सरानीय रहा हैं जिन्होंने डिपार्टमेंट ऑफ़ इंडियन थिएटर, चंडीगढ़ से नाट्य विद्या में प्रशिक्षण लेकर कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी के यूथ एंड कल्चरल अफेयर निर्देशक के तौर पर कार्य किया हैं। युथ फेस्टिवल में अलग-अलग सांस्कृतिक विधाओं को शामिल किया और इन प्रतियोगताओं को नयी दिशा देने की कोशिश की।

मल्टी आर्ट कल्चरल सेंटर, कुरुक्षेत्र पूर्व सयोंजक श्री दीपक त्रिखा भी निरन्तर नाट्य प्रस्तुतियों और कार्यशालाओं से जुड़े रहे हैं और मल्टी आर्ट सेंटर को कलात्मक केंद्र बनाने के लिए लगातार नाट्य प्रस्तुतियों का आयोजन किया गया। जिसमें देश के विभिन्न हिस्सों की नाट्य मंडलियों ने प्रस्तुतियां दी हैं ।

कुरुक्षेत्र का जन नाट्य मंच पिछले 25 वर्षों रंगमंच के क्षेत्र में काम कर रहा है। जन नाट्य मंच ने नुक्कड़ और स्टेज नाटकों का मंचन किया है। 'रजिया की डायरी' तथा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के सहयोग से नाटक 'रह जायेगा ढाई आखर' का मंचन किया है। रह जायेगा ढाई आखर नाटक ऑनर किलिंग पर कड़ा प्रहार करता हुआ हरियाणा जैसे प्रदेश में कला की संभावनाएं और कला के दायित्व को निभाता दिखाई देता है। जन नाट्य मंच ने प्रदेश में कला और कलाकारों की संभावनाओ को जनम दिया। बाल रंगमंच से बढ़कर केशव कुमार,अमनदीप,स्नेहा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से नाट्य विद्या में प्रशिक्षण प्राप्त कर रंगमंच और फिल्म के क्षेत्र में काम कर रहे हैं।

हरियाणा के हिंदी नाटककार स्वदेश दीपक जी अम्बाला से थे। इन्होंने 'कोर्ट मार्शल' , 'सबसे उदास कविता', 'बाल भगवान', 'जलता हुआ रथ' और 'काल कोठरी' नाटक लिखें हैं। इनका नाटक कोर्ट मार्शल में दलितों की मुखर अभिव्यक्ति करता है और साथ ही साथ नौकरशाही की आलोचना करता है। 'जलता हुआ रथ' पंजाब के एमरजेंसी के दौर की वीभत्स तस्वीर पेश करता है और हमारे देश की राजनीति को कटघरे में खड़ा करता है। 'काल कोठरी' नाटक रंगमंच के कलाकारों की हालात बयान करता है।

अम्बाला में आदि मंच नाट्य ग्रुप 'कोर्ट मार्शल' और 'सबसे उदास कविता' नाटकों का मंचन करता रहा है। ये हरियाणा के क्षेत्र में सांस्कृतिक परिदृश्य के निर्माण में भूमिका निभा रहा है ।

यमुनानगर के रंगकर्मी कमल नयन कपूर, राजिंदर शर्मा नानू, गीता अग्रवाल, गौरव पराशर, रमेश सपरा, संजीव चौधरी रंगमंच को आगे बढ़ा रहे है । राजिंदर शर्मा नानू व गीता अग्रवाल ने लगातार बॉबी ब्रेकर नाटक की प्रस्तुति कर रंगमंच को नयी दिशा दी है। डी.ए.वी. गर्ल्स कॉलेज यमुनानगर ने युवा महोत्सव में कई बार प्रथम स्थान प्राप्त किया है और रंगमंच की गतिविधियों में सक्रिय रहा है । कॉलेज ने हरियाणा फिल्म फेस्टिवल के आयोजन कर एक नयी संस्कृति निर्माण का कार्य किया है। यह कॉलेज यमुनाननगर में रंगमंच के केंद्र के रूप में उभरा है।

कैथल के अमृतलाल मदान ने हिंदी नाटक लिखे हैं। 'लाल धूप' इनका मुख्य नाटक है। कैथल में हरियाणा ज्ञान विज्ञान समिति और जनवादी नोजवान सभा ने नुक्कड़ नाटक करते रहे हैं।

हरियाणा कला परिषद के चेयरमैन सुदेश शर्मा ने चंडीगढ़ में थिएटर फॉर थिएटर ग्रुप बनाकर स्वदेश दीपक द्वारा लिखे नाटक कोर्ट मार्शल के 400 से ज्यादा शो किये हैं। लगातार चंडीगढ़ में अपने ग्रुप में नाटक शो और थिएटर फेस्टिवल का आयोजन करते रहते हैं।

फरीदाबाद के रंगकर्मी रामजी बाली और महेश सैनी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से स्नातक कर चुके हैं और फरीदाबाद, दिल्ली में रंगमंच और फिल्म निर्माण से जुड़े रहे हैं। थिएटर वाला ग्रुप ने निर्देशक के तौर पर कार्य कर रहे है ।

रोहतक में जतन नाट्य केंद्र और हरियाणा ज्ञान विज्ञान समिति लगातार नाटक कर रहे हैं। कवि मनमोहन, कवयित्री शुभा, नरेश प्रेरणा, दीप्ति, राजकुमार, प्रशांत, सतनाम, मीनाक्षी लगातार रंगकर्म से जुड़े है। एक नयी शुरुआत नाटक के हरियाणा में 1000 से ज्यादा शो किये गए हैं। इसके अलावा 'हिंसा परमो धर्म', 'हम लेंगे ऐसा बदला उनसे', 'लड़की पढ़कर क्या करेगी', 'मेरी जात' जैसे कई नाटकों का मंचन करते रहे हैं।

हरियाणा युवा महोत्सव और विभिन्न नाट्य आंदोलन या नाट्य संस्थाओं का हिस्सा रहे युवा लड़के और लड़कियां रंगमंच की शिक्षा ग्रहण करके रंगमंच में अध्यापन , नाट्य निर्देशन और नाट्य मंचन करते हुए रंगमंच को व्यावसायिक रूप से अपना रहे हैं। जिनमे करनाल से अमितोष नागपाल, आशीष शर्मा, नरेश नारायण,गुरनाम कैहरबा, कुरुक्षेत्र से केशव कुमार, स्नेहा, अमनजीत , विरेन्द्र सरोहा, राजवीर राजू, रोहतक से दुष्यंत कुमार, सविता रानी(बिन्नू), दीप्ति, नरेश प्रेरणा, मदन भारती, कृष्ण नाटक, दीप्ति, राजकुमार फरीदाबाद से रामजी बाली, महेश सैनी, सोनीपत से सत्येंद्र मलिक, अशोक धर्मशोत, सुनील कुमार, हिसार से बलजिंदर कौर, यशपाल शर्मा, भारत, बृजेश कुमार, रवि चौहान, मनीष जोशी, जींद से रमेश ड्रामा, हनीफ, पवन तोमर राजिंदर शर्मा नानू,रवि मोहन बाठ, कौशलेश, कुशल कुमार के अलावा अनेक कलाकार (सभी के नाम देने संभव नहीं)रंगमंच में सक्रिय हैं।

हरियाणा में रंगमंच के अंकुर अब एक पौध के रूप में सामने आ रहे हैं जो भविष्य में काफी सुनहरे परिणाम देंगे। हरियाणा के नाट्य ग्रुप जिंदगी के सवालों को नाटक का हिस्सा बनाते हुए सांस्कृतिक परिवेश के निर्माण की कोशिश कर रहे हैं। कह सकते हैं कि हरियाणा में रंगमंच की नयी परम्परा कायम की जा रही है ।

सम्पर्कः 94679-64142

तर्कशील सोसाईटी
वैज्ञानिक विचारों से लैस

अजायब जलालाना

पंजाब में जब आंतकवाद का दौर शुरू होता है। तब साथ ही वैज्ञानिक विचारों से लैस तर्कशील सोसाईटी का जन्म भी होता है। डा. इब्राहिम थॉमस कावूर की पुस्तक 'देव और दानव' तथा 'देव पुरुष हार गए' का कुछ अध्यापकों ने पंजाबी और हिंदी में जैसे ही अनुवाद किया इन पुस्तकों को लोगों ने हाथों हाथ लिया। तभी तर्कशील सोसाईटी पंजाब नाम की संस्था स्थापित हुई और साथ ही हरियाणा में तर्कशील सोसाइटी हरियाणा बनी। सिरसा जिला में 1987-88 से ही मुख्यत: दो ईकाइयां कालांवाली व डबवाली जो तर्कशील सोसाईटी पंजाब से सम्बंधित है और जिनका कार्यक्षेत्र हरियाणा ही है।

सोसाईटी समाज में फैले विभिन्न प्रकार के अन्धविश्वासों को दूर कर तार्किक वैज्ञानिक विचारों का प्रचार-प्रसार करती है। स्कूलों, कॉलजों, युनिवर्सिटियों और गांवों तथा शहरों में विभिन्न प्रकार के तर्कशील प्रोग्राम पेश किये जाते हैं। जिनमें बड़े तर्कशील नाटक मेले, सैमीनार, जादू के ट्रिक्स, प्रदर्शनियाँ, बुक स्टाल, मैगजीन, पम्प्लेंट, गीत, साहित्य, फ़िल्मों, आदि के माध्यम से प्रचार करके लोगों को वैज्ञानिक विचारों से जोड़ती है।

अगर केवल सिरसा जिला की गतिविधियों की बात करें तो यहां बड़ी संख्या में बड़े बड़े तर्कशील नाटक मेलों का सफल आयोजन करवाया जा चुका है। स्कूलों कॉलजों में आये दिन कोई न कोई गतिविधि सोसाईटी द्वारा की जाती है। जादू,वैज्ञानिक सिद्धांतों के माध्यम से स्कूली विद्यार्थियों को विज्ञान से जोड़ा जाता है। तर्कशील पुस्तक प्रदर्शनी भी लगाई जाती है।

तर्कशीलों द्वारा भूत-प्रेत,जिन्न-चुड़ैल, आत्मा, पुनर्जन्म, ज्योतिष, ओपरी-पराई आदि में विश्वास नहीं किया जाता। किसी भी प्रकार की दैवीय शक्तिओं से अपने आपको सम्पन्न कहने वाले और चमत्कारों के दावे को प्रदर्शित करने वाले ढोंगी बाबाओं, तांत्रिकों, सयानों,भाई जी, मुल्ला मौलवियों, पण्डित और ज्योतिषियों द्वारा फैलाये जा रहे पाखण्डों का पर्दाफाश भी करती है। जो लोग ओपरी पराई कसरों (मानसिक समस्यायों)से ग्रस्त होते हैं यहां हजारों की संख्या में ऐसे केसों का सही मार्गदर्शन किया गया है।

सिरसा जिला व आस-पास के क्षेत्रों में समय समय पर फैले अंधविश्वासों का पर्दाफाश करते रहते हैं। चाहे वो बिज्जू की अफवाह हो या ट्यूबेल से नहाने से बीमारियां ठीक होने का दावा हो। बन्द अलमारी में कपड़ों का कट जाना या आग लगनी, घरों में ईंट पत्थर गिरना, खून के छींटें गिरना, घर से वस्तुएं गायब होना, किसी स्कूल किसी घर में भूत प्रेतों के साये का होना,कहीं पुनर्जन्म की अफवाह,कहीं चमत्कारी घटनाओं का घटित होना आदि सैंकड़ों केसों को फील्ड में जा कर लोगों के सहयोग से सफलता पूर्वक हल किये हैं।

मुख्य तर्कशील मैगजीन जिसकी गिनती पंजाबी हिंदी में 20000 हजार से भी ऊपर है। ये डोर टू डोर व दूर दराज के क्षेत्रों में डाक के माध्यम से पहुंचाए जाते हैं।

मो. 9416724331

हरियाणा में मीडिया

❑डॉ. अशोक कुमार

हरियाणा बनने के बाद पिछले 50 वर्षों में हरियाणा में बड़े बदलाव हुए हैं। हरियाणा व इसके समाज को सशक्त बनाने में संचार माध्यमों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। देश के अन्य हिस्सों की तरह नई सूचना एवं संचार तकनीक के कारण मीडिया के उपभोग व उत्पादन दोनों स्तरों पर बड़ा परिवर्तन इस प्रदेश में भी हुआ है।

समाचार पत्र-पत्रिकाओं, टीवी कार्यक्रमों, हरियाणवी फिल्मों की उत्पादकता व उपभोग दोनों बढ़े हैं। प्रदेश में सूचना एवं संचार माध्यमों के विकास व विस्तार ने कई नए मीडिया नगर, मीडिया मालिक, समाचार चैनल, कलाकार देश व हरियाणा को दिए हैं। हरियाणा औद्योगिक क्रान्ति, हरित क्रान्ति श्वेत क्रान्ति, तकनीकी क्रान्ति के बाद सूचना क्रान्ति के प्रयोग में भी सफल रहा है।

मीडिया के विकास के नजरिए से पंचकूला, पानीपत, रोहतक, हिसार, अम्बाला, रेवाडी, गुडगांव व फरीदाबाद हरियाणा के नए मीडिया नगर बनकर उभरे हैं। गुडगांव, रोहतक व पंचकूला से कई समाचार चैनलों का प्रसारण हो रहा है।

गुडगांव, फरीदाबाद, पानीपत, रोहतक, सोनीपत में हुए औद्योगिकरण, एनसीआर में रीयल एस्टेट के कारोबार से बढ़े जमीन के भाव ने हरियाणा में एक नया मध्यवर्ग तैयार हुआ है। यह ऐसा वर्ग है जो अब पहले से अधिक अखबार पढ़ता है। टीवी देखता है। फिल्में देखता है। सोशल मीडिया का इस्तेमाल करता है। सुविधाभोगी है। जिसकी मनोरंजन व सूचनाओं की भूख को पूरा करने के लिए भी हरियाणा में मीडिया का विस्तार हुआ है।

मध्यवर्ग के उभार के कारण हरियाणा में पाठकों, दर्शकों व श्रोताओं की एक नई पीढ़ी तैयार हुई है जो मीडिया का प्रयोग व उपभोग करने की आदी है। दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण व अमर उजाला हरियाणा के हर हिस्से में फैल चुके हैं।

हिंदी अखबारों की तरह अंग्रेजी अखबारों के पाठक बढ़े हैं, जिसका सबसे अधिक फायदा हिन्दुस्तान टाईम्स, टाईम्स आफ इंडिया व दि ट्रिब्यून को मिला है। अंग्रेजी समाचार पत्रों में हरियाणा के स्थानीय मुद्दों पर संवाद करने के लिए क्षेत्रीय पुलआउट निकल रहे हैं।

देश व दुनिया में हाईपर लोकलाईज होते मीडिया का लाभ हरियाणा को भी मिला है। हरियाणा के जिलों से समाचार चैनलों का प्रसारण व अखबारों का प्रकाशन हो रहा है। रजिस्ट्रार न्यूज पेपर आफ इंडिया के रिकार्ड में हरियाणा से करीब पांच हजार से अधिक पत्र व पत्रिकाएं पंजीकृत हैं।

दैनिक ट्रिब्यून व पंजाब केसरी हरियाणा बनने से पहले से हैं। इसके बाद पानीपत, हिसार व रोहतक से क्रमश दैनिक भास्कर, जागरण व हरिभूमि छपने लगे और कहने को हरियाणा व उसकी भूमि के अखबार लोगों को मिलने लगे। गांव-गांव तक अखबार को पहुंचाने व अपने उत्पाद को बेचने की ललक में हरियाणा में अखबारों के बीच ऐसी जंग शुरू हुई जिसे शायद ही देश के किसी अन्य हिस्से में देखी गई हो। अखबार तैयार करने वालों को न केवल घर-घर जाना पड़ा बल्कि लोगों में समाचार-पत्र पढ़ने की रूचि भी पैदा करनी पड़ी। बड़े-बड़े अखबारों के अलावा लघु समाचार पत्र भी खूब निकलने शुरू हुए।

हरियाणा में रेडियों की विकास यात्रा में आकाशवाणी रोहतक व कुरुक्षेत्र की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही है। कुरुक्षेत्र व रोहतक के आकाशवाणी केन्द्रों ने शुरू से ही हरियाणा की सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाने का काम किया है। आज भी सांग, रागनियां व हरियाणा की झलक इन कार्यक्रमों में नजर आती हैं। अम्बाला, फरीदाबाद, गुडगांव, हिसार, करनाल, कुरुक्षेत्र, मेवात, रोहतक व सिरसा में नए रेडियो स्टेशन बने हैं।

हरियाणा में टेलिविजन की विकास यात्रा दूरदर्शन हिसार से शुरू होकर असंख्य प्राईवेट टीवी चैनलों से होकर गुजरती है। स्थानीय समाचार चैनलों के विकास में हरियाणा में टीवी पत्रकारिता को एक नई दिशा दी है। टेलिविजन समाचार चैनलों की विकास यात्रा में हरियाणा में टोटल टीवी, सहारा समय, एवन तहलका, इंडिया न्यूज हरियाणा, डे एड नाइट, हरियाणा न्यूज, पीटीसी, फोकस हरियाणा खबरें अभी तक, खबर फास्ट जैसे स्थानीय चैनल शामिल हैं।

हरियाणा के मीडिया उद्योगपति मीडिया एवं मनोरंजन उद्योग में भी अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं। जी ग्रुप के मालिक सुभाष चंद्रा हरियाणा से हैं। नवीन जिंदल ,इंडिया न्यूज ग्रुप के सीईओ कार्तिकेय शर्मा इंडिया न्यूज, न्यूज एक्स, आज समाज समाचार पत्र सहित कई अन्य समाचार माध्यमों के मालिक हैं। हरियाणा के पूर्व गृह मंत्री गोपाल कांडा भी हरियाणा न्यूज के मालिक हैं। हरियाणा कई राजनेता समाचार पत्र पत्रिकाओं व समाचार चैनलों के स्वामित्व से संबंध रखते हैं।

यह बात भी सही है कि हरियाणा में अपने राजनैतिक एजेंडे को पूरा करने के लिए कुछ राजनेताओं ने अपने चैनल शुरु किए। कुछ चैनल सफल रहे, लेकिन कुछ हरियाणा की आया राम गया राम राजनीति की तरह कुछ दिनों तक टिके और चले गए। राष्ट्रीय मीडिया में विजुअली हरियाणा के लिए समय व स्थान दोनो बढ़े हैं। मीडिया के इस विस्तार का फायदा तो मिला, लेकिन इससे मीडिया में विकृतियां भी बढ़ी हैं।

हरियाणा की पत्रकारिता ऐसे सैकड़ों उदाहरणों से भरी पड़ी है जब सरकार व नौकरशाहों ने अपने मनमाफिक इसका इस्तेमाल किया। मीडिया में खबरों की जो खरीद फरोख्त हुई है हरियाणा इस मामले में सबसे आगे रहा है। पैकेज के लिए राजनैतिक पार्टियों व नेताओं के समाचार

को बैन करना व विज्ञापन मिलने के बाद उसे हटाना इसका चलन यहां पर हमेशा रहा है। नेताओं, अफसरों व सरकारों से हरियाणा के पत्रकारों की दोस्ती किसी से छिपी नहीं है। पत्रकारिता को सत्ता हासिल करने के यंत्र की तरह हमेशा इस्तेमाल किया गया। हवा के विपरीत बहने वाले पत्रकार इस माटी में विरले ही हुए हैं। अपनी राजनैतिक महत्वकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कई राजनैतिक पार्टियों ने अपने अखबार भी निकाले। हरियाणा के लोगों ने तो उन्हें रिजेक्ट किया लेकिन वे हरियाणा में पत्रकारिता की जमीन को खोखला कर गए। हरियाणा की पत्रकारिता में विश्वसनीयता का संकट ऐसे समाचार पत्र -पत्रिकाओं के आने से ही बढ़ा।

बाबू बाल मुकुन्द, माधव प्रसाद मिश्र, विष्णु प्रभाकर व गिरिलाल जैसे कई नाम हैं जो हरियाणा की पत्रकारिता के आधार स्तंभ रहे हैं। इन गिने-चुने हस्ताक्षरों के बाद हरियाणा की पत्रकारिता में कुछ याद करने लायक आज भी नहीं है। अंग्रेजी अखबारों के स्थानीय संस्करण भी शुरू हो गए हैं, लेकिन हरियाणा से कोई भी बड़ा सम्पादक, विचारक नहीं है। विचार का संकट हरियाणा की पत्रकारिता में बना हुआ है। तकनीकी विकास व विस्तार के बाद भी हरियाणा की माटी देश को बड़े पत्रकार व राष्ट्रीय स्तर पर पत्रकारिता को दिशा देने में असफल रही है।

हरियाणा में नए मीडिया का विस्तार भी बड़ी तेजी से हुआ है। स्मार्ट फोन क्रांति के कारण अब हर हाथ में मोबाइल है। वट्सअप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, टविटर, यू टयूब जैसे सोशल मीडिया का हरियाणा के युवा प्रयोग कर रहे हैं। केरल, हिमाचल व पंजाब के बाद हरियाणा में इंटनेट उपभोक्तओं की संख्या में देश में तेजी के साथ बढ़ रही है।

हरियाणा में चन्द्रावल, गुलाबो, लाडो जैसी फिल्में बनने के बाद इस दिशा में कोई काम नही हुआ। फिल्म निर्माण में कुछ नए प्रयोग अभी शुरु हुए हैं। यशपाल शर्मा, मल्लिका सराहवत,अमित अहलावत, रणदीप हुड्डा सहित ऐसे कई नाम हैं जिन्होंने हिन्दी सिनेमा में अपनी एक अलग पहचान बनायी है। पंजाबी, भोजपुरी, तमिल व तेलगु फिल्मों की तरह हमारे क्षेत्रीय हीरो नहीं है। रोहतक में बनाए गए फिल्म इंस्टीच्यूट से लोगों को कुछ उम्मीदें थी, लेकिन वहां भी कुछ नया कर नहीं पा रहे हैं।

हरियाणा बनने के बाद राज्य के विश्वविद्यालयों में पिछले तीन दशकों से पत्रकारिता का पठन-पाठन का कार्य भी जारी है। हर वर्ष करीब एक हजार से अधिक विद्यार्थी पत्रकारिता की डिग्री लेकर हरियाणा से निकल रहे हैं। पत्रकारिता शिक्षण संस्थान प्रदेश में पत्रकारिता को नयी दिशा देने में असफल साबित रहे हैं। हमारे पत्रकारिता शिक्षण संस्थान उद्योग व अकादमिक क्षेत्र के बीच की दूरी को नाप नहीं पाए हैं, परंतु समाचार पत्रों व टैलीविजन चैनल के न्यूज रूम में यहाँ के विश्वविद्यालयों से निकले युवा पत्रकार नजर आने लगे हैं।

अच्छी बात यह है कि मीडिया ने हरियाणा के रूढिवादी समाज की जड़ता तोड़ने में सराहनीय काम किया है। ऐसे माहौल में भी ऑनर कीलिंग, भ्रूण हत्या, लड़कियों की खरीद-फरोख्त, जातिगत झगड़े, भ्रष्टाचार व मौकापरस्त राजनीति को बेनकाब करने में मीडिया सफल रहा है।

सम्पर्क : 98131-55366

इब्ने इंशा की कविता

अख़बार

यह कौन-सा अख़बार है?
यह रोजनामा 'बागो बहार' है।
इसकी क्या बात है?
मजमूअए मालूमात है।
यह लोगों को सीधी राह भी बताता है।
ताकत की अकसीरी दवाएं भी बिकवाता है।
इसमें फिल्मी सफ्हा भी होता है।
इसमें इस्लामी सफ्हा भी होता है।
गाजियों की तकबीरें भी होती हैं।
हसीनों की तस्वीरें भी होती हैं।
दुनिया भी चुस्त रहती है।
आकेबत भी दुरुस्त रहती है।
अख़बार के बड़े फायदे हैं
अख़बार न हो तो कौम की रहनुमाई कैसे हो?

ऐक्ट्रेसों की रूनुमाई कैसे हो?
लीडर अपनी हवा किसमें बांधें?
हकीम कब्ज की दवा किसमें बांधें?
पंसारी मिरचों का पुड़ा किसमें बांधे?

यह अख़बार वाला बड़ा निडर है।
बातिल (झूठ) से नहीं डरता।
लोगों से नहीं डरता।
कभी-कभी खुदा से नहीं डरता।
बस सरकार से डरता है।
बड़ा अच्छा करता है।

जब तक खुशनूदिए-सरकार है, अख़बार है।
रोजगार है, कोठी और कार है।
पुराने लोग ऐसा नहीं करते।
पुराने लोग भूखे भी तो मरते हैं।

फिर भी मियां अख़बार वाले।
अख़बार काला कर।
अपना किरदार काला मत कर।
सिर्फ अख़बार बेच-ईमान मत बेच।

मीडिया में हरियाणवी महिला की छवि

❏सहीराम

मीडिया में हरियाणवी महिला की छवि क्या है? जैसे हरियाणवी पुरुष जिसे आमतौर पर हाळी-पाळी कहा जाता है, की छवि खेतों में खटनेवाले एक मेहनतकश किसान की छवि है या फिर खड़ी और थोड़ी लठमार सी जुबान बोलनेवाले और एक हद तक मुंहफट तथा उज्जड, लेकिन साथ ही हाजिर जवाब और कुछ-कुछ मजाकिया-विटी-किसान की छवि है या फिर एक थोड़े खाते-पीते और दबंग टाइप के किसान की छवि है,क्या वैसी ही कोई छवि हरियाणवी महिला की भी है?

क्योंकि हरियाणवी अर्थव्यवस्था अभी भी काफी हद तक एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था ही है और हरित क्रांति के बाद के सारे पूंजीवादी विकास के बावजूद हरियाणा में मध्यवर्ग, जिसे क्लासिक अर्थ में मध्यवर्ग कहा जाता है, अभी भी नहीं है, इसलिए हरियाणवी पुरुष का,हरियाणवी किसान और कई बार तो एक जाति विशेष के रूपक में ही, सामान्यीकरण किया जाता है, इसलिए यहां भी इसी रूपक का सहारा लिया जा रहा है। हालांकि यह थोड़ा खाता-पीता दबंग सा, एक हद तक मुंहफट और उज्जड सा किसान, एक माने में बेहद चतुर-चालाक, मौकापरस्त, मतलबी और स्वार्थी इंसान है जो सामाजिक व्यवहार, पारिवारिक झगड़ों, कचहरी में और प्रशासन के सामने और अपने राजनीतिक व्यवहार में तो खासतौर से इसी रूप में सामने आता है और आज तो कृषि के गंभीर संकट के चलते तो वह बेचारगी की इस अवस्था में है कि आत्महत्या करने तक को मजबूर है। बहरहाल, इस सामान्यीकरण से भिन्न दलित, कामगार और कारीगर जातियों से जुड़े लोग हैं, जिनकी बोली-भाषा, खान-पान, आचार-विचार भले ही उसी तरह के हों, पर वे उस माने में न तो दबंग हैं और न ही खाए-पीए अघाए लोग हैं।

असल में कुछ छवियां लोकाचार से बन जाती है। यह परंपरागत छवियां होती है। रहन-सहन, खान-पान, पहनावे, बोली-भाषा, सामाजिक संबंधों, कहावतों-लोकोक्तियों, किस्से-कहानियों, चुटकलों-जो अक्सर विभिन्न जातियों से भी जुड़े होते हैं, किस्सागोई और स्थानीय लोक गायकों की प्रस्तुतियों आदि के चलते दीर्घावधि में बनी यह छवि अंततः संस्कृति का हिस्सा हो जाती है।

लेकिन साथ ही साथ इसके समानांतर एक नयी छवि भी बनती चलती है, जो दीर्घावधि में परंपरागत छवि का स्थानापन्न बनती है। इधर खासतौर पर राजनीतिक स्तर पर छवियां गढ़ी भी जाने लगी हैं, जो अस्थायी और फौरी लाभ के लिए होती हैं। उसके कुछ अंश बेशक दीर्घकाल तक बचे रहते हैं, जो बीच-बीच में उभरकर आते रहते हैं। पर मीडिया और खासतौर से इलेक्ट्रोनिक मीडिया के प्रभावी बनने के बाद ही ऐसा होने लगा हो, ऐसा भी नहीं है। राजनीतिक स्तर पर यह कवायद इतनी नयी भी नहीं है। इतिहास में शासकों की जैसी छवियां हमें देखने को मिलती हैं, वे शायद ऐसे ही गढ़ी जाती रही होंगी।

बहरहाल, क्या ऐसा है कि हरियाणवी पुरुष की तरह हरियाणवी महिला का जिक्र आने पर ऐसी ही कोई छवि उसकी भी सामने आती हो? वैसे ही जैसे बंगाली औरत का जिक्र आने पर उसकी एक शिक्षित,गरिमामय, प्रेम के लिए समर्पित लेकिन मानिनी और कभी अपने प्रेम और कभी अपने परिवार के लिए त्याग करनेवाली और उसके लिए न्यौछावर हो जानेवाली औरत की परंपरागत छवि सामने आती है। यह काफी हद तक शरतचंद्र जैसे साहित्यकारों के साहित्य में महिला पात्रों की छवियों से बनी छवि है, जिसे सिनेमा ने भी काफी पुख्ता किया है। लेकिन इसके साथ ही बंगाली औरत की एक दूसरी छवि भी है - एक लड़ाका, जुझारू और क्रांतिकारी औरत की छवि, जो स्वतंत्रता आंदोलन में बड़े पैमाने पर उसकी भागीदारी से बनी और जिसके चलते चिटगांव विद्रोह की नायिकाएं कल्पना दत्त तथा प्रीतिलता बद्दार और दूसरी क्रांतिकारी महिलाएं इस छवि का प्रतीक बनी।

स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों से ही जन आंदोलनों में बंगाली महिलाओं की बराबर की भागीदारी रही है और इस भागीदारी ने उसकी एक राजनीतिक रूप से जागरूक महिला की छवि भी बनायी है। पर ऐसा भी नहीं है कि बंगाली औरत अपनी छवि के मुताबिक शिक्षित, समर्पित, क्रांतिकारी और राजनीतिक रूप से जागरूक महिला ही है, उसकी एक शोषित तथा पीड़िता की भी छवि भी है। एक बेबस औरत की छवि भी है। मसलन आज ह्युमन ट्रैफिकिंग (औरतों-बच्चों की खरीद-फरोख्त) का शिकार हो रही और देह व्यापार में धकेली जा रही बालिकाओं में एक बड़ी संख्या बंगाली लड़कियों की है, जो एक मायने में बंगाली औरत की एक नयी छवि है। खुद हरियाणा में शादी के लिए बाहर से खरीद कर लायी जा रही लड़कियों में एक बड़ा हिस्सा बंगाली लड़कियों का है। बहरहाल, यह छवि अभी परंपरागत छवि के रूप में तब्दील नहीं हुयी है।

जब कभी एक दक्षिण भारतीय महिला का जिक्र आता है तो उसकी एक शिक्षित और कामकाजी या नौकरीपेशा औरत की छवि सामने आती है जो पढ़ी-लिखी होकर भी अपनी परंपरगत पोशाक में बनी रहती है, साड़ी पहनती है, जूड़े में फूल लगाती है, चाहे वह किसी बड़े वैज्ञानिक संस्थान में या किसी बड़े कार्पोरेट ऑफिस में ही काम कर रही हो, तो क्या ऐसी ही कोई छवि हरियाणवी औरत की भी सामने आती है? जैसे नर्स का जिक्र आने पर फौरन केरल की एक सफेद पोशाकवाली दुबली-पतली सावंली सी लडकी की तस्वीर सामने आ जाती है। क्या वैसी कोई तस्वीर हरियाणवी औरत की भी बनती है?

इस माने में बंगाली महिला या फिर दक्षिण भारतीय महिला की परंपरागत छवि जैसी कोई छवि हरियाणवी महिला की नहीं है। बल्कि इन छवियों में उसकी कोई झलक भी नहीं मिलती। इसकी वजह

एक तो यह रही कि बंगाल और दक्षिण भारत के मुकाबले हरियाणा शैक्षिक रूप से पिछड़ा रहा। हरियाणवी समाज में कायदे का मध्यवर्ग भी नहीं पनपा जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं। यहां न तो ऐसा कोई साहित्य ही रचा गया जैसा बंगाल और दक्षिण भारत में रचा गया जिससे वहां की महिलाओं की एक खास छवि बनकर निकली और न ही सिनेमा से उसकी कोई छवि बनी, जो कि बीसवीं सदी एक बहुत बड़ा माध्यम बनकर उभरा है।

हरियाणा में तो ले-देकर यहां के लोकगायकों की ही कुछ रचनाएं मिलती हैं, जो एक सामंती फ्रेमवर्क में ही यहां की महिला को पेश करती हैं। बंगला साहित्यकारों की तरह महिला की कोई नयी छवि नहीं गढ़ती। पितृसत्तात्मक समाज होने के कारण पुरुष के नजरिए से ही महिला का पक्ष सामने आता है। फिर शिक्षा के अभाव में हरियाणवी महिला वैसी कामकाजी तथा नौकरीपेशा भी नहीं रही जैसी दक्षिण भारतीय महिला रही है।

साहित्य के अलावा सिनेमा में भी हरियाणवी महिला की ऐसी किसी छवि का कोई प्रतिबिंबन नहीं मिलता। एक तो मुंबई सिनेमा में बंगाली लेखकों की अनेक रचनाओं का फिल्मांकन हुआ, जिसकी एक वजह लेखकों-निर्देशकों की एक बड़ी जमात का बंगाली होना भी रहा है। फिर वह साहित्य भी बहुत ही समृद्ध रहा है। इसके अलावा बंगाल तथा दक्षिण भारतीय राज्यों में एक समृद्ध क्षेत्रीय सिनेमा रहा है, जिसने वहां की क्षेत्रीय कहानियों और जनजीवन को कहीं ज्यादा विश्वसनीय ढ़ंग से पेश किया।

हरियाणा को यह सौभाग्य नहीं मिला। न तो बॉलीवुड में हरियाणा केंद्रित फिल्में बनी और न हरियाणा का क्षेत्रीय सिनेमा उतना प्रभावी रहा। हरियाणवी क्षेत्रीय सिनेमा की दो-एक फिल्मों को ही इस माने में प्रतिनिधि माना जा सकता है जिनमें एक अश्विनी चौधरी की 'लाडो' है जिसमें पति के प्रति अपने सारे प्रेम और शादी-ब्याह की संस्था के प्रति अपने पूरे कमिटमेंट के बावजूद एक औरत किसी अन्य व्यक्ति के प्रेम में पड़ जाती है और उससे गर्भवती हो जाती है।

इस फिल्म में उसी संबंध की सामाजिक तथा व्यक्तिगत और भावात्मक जद्दोजहद को दिखाया गया है। लेकिन यहां पूरे रचनात्मक संसार-साहित्य, नाटक और इस माने में सांग, फिल्म आदि-में यह ऐसी अकेली रचना थी और एक अकेली रचना से किसी छवि का निर्माण नहीं होता, वह अपवाद ही बनकर रह जाती है। इसलिए 'लाडो' भी हरियाणवी महिला का सिंबल नहीं बन पाती।

बहरहाल, बंगाली या दक्षिण भारतीय महिला की छवि को अगर छोड़ भी दिया जाए तो हिंदी हार्टलैंड में ही अभी बुंदेलखंड की औरत की एक नयी छवि गुलाब गैंग के रूप में सामने आयी। बुंदेलखंड, मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश में फैला हुआ एक अत्यंत पिछड़ा हुआ इलाका है, जो हाल-फिलहाल के दिनों में अपने बरसों के सूखे, अकाल जैसी स्थिति, भुखमरी और पलायन और इस सबके चलते राजनीतिक सरगर्मी के कारण काफी चर्चित रहा है।

इसी बुंदेलखंड में महिलाओं का एक गुलाब गैंग बनकर उभरा जो महिलाओं के एक थोड़े दबंग किस्म के और सामाजिक मुद्दों पर महिलाओं के पक्ष में हस्तक्षेप करनेवाले संगठन के रूप में चर्चित हुआ है। बल्कि मीडिया में गुलाब गैंग इतना चर्चित रहा कि उस पर बॉलीवुड में एक फिल्म भी बन गयी। इस गुलाब गैंग ने अपना 'खबर लहरिया' के नाम से एक अखबार भी निकाला है। क्या हरियाणवी महिला की ऐसी कोई छवि है?

हरियाणवी महिलाओं का ऐसा कोई विद्रोही संगठन सामने नहीं आया है। अलबत्ता पिछले कुछ अर्से से हरियाणा में जनवादी महिला समिति नामक एक संगठन जरूर चर्चित रहा है जो विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों पर हस्तक्षेप करता रहा है और खासतौर से जो ऑनर किलिंग के मसले पर खाप जैसी ताकतवर संस्था से टकराने में भी नहीं हिचका है। पर जनवादी महिला समिति एक विचारधारा विशेष का अनुसरण करनेवाला संगठन है। उसमें वह धूमकेतुनुमा चमक भी नहीं, जो मीडिया के एक हिस्से को आकर्षित करती रही है।

फिर हरियाणा के आस-पड़ोस को ही अगर देखें तो पंजाबी महिला की एक अलग छवि है। हालांकि हरियाणा वृहत्तर पंजाब का ही हिस्सा रहा है। पर पंजाबी महिला की छवि हरियाणवी महिला को अपने अंदर नहीं समेट पाती। दोनों बहुत ही भिन्न है। पंजाबी महिला की परंपरागत छवि तो हीर की, सोहनी की, सीरीं की छवि है जो लोकलाज के पार जाकर प्रेम में न्यौछावर हो जानेवाली, उसके लिए अपना बलिदान देनेवाली औरत है।

पंजाब के बुल्लेशाह और वारिस शाह जैसे सूफी कवियों और गायकों ने पंजाबी महिला की इस अमर छवि का निर्माण किया है। क्या ऐसी कोई छवि हरियाणवी औरत की है? हालांकि हीर-रांझा का किस्सा वारिस शाह के किस्से से इतर यहां के लोकगायक और जोगी भी गाते रहे हैं। फिर नल-दमयंती, लीलो-चमन, सरवर-नीर, सुलतान-निहालदे और ऐसी ही अनेक प्रेमकथाएं यहां के लोकगायकों ने भी गायी हैं। पर हरियाणवी औरत की वह छवि नहीं बन पायी, जो पंजाबी लोकाख्यानों के चलते पंजाबी औरत की बनी।

फिर थोड़े हल्के अंदाज में देखा जाए तो पंजाबी औरत की छवि एक नृत्यातुर औरत की छवि भी है, जो शादी-ब्याह से लेकर किसी भी मौके पर गिद्दा डालने को उत्सुक पायी जाती है, कुछ-कुछ वैसे ही जैसे गुजराती महिला डांडिया खेलने को तैयार रहती है। इस छवि को खासतौर से मुंबइया फिल्मों ने गढ़ा और पुख्ता किया। हालांकि सारे मुंबइया फिल्मी प्रयासों के बावजूद करण जौहर की फिल्मों की करवा चौथवाली छवि पंजाबी औरत की अभी भी नहीं बन पायी है।

लेकिन पंजाबी औरत की छवि एक खाती-खिलाती जट्टनी की छवि ही नहीं है, एक लड़ाका औरत की छवि भी है और यह छवि भी स्वतंत्रता आंदोलन में उसकी भागीदारी के चलते ही बनी, जैसे बंगाली औरत की बनी। फिर सिखी की बहादुरी तथा खुलेपन ने भी इस छवि को पुख्ता किया।

अलबत्ता आज पंजाबी औरत की एक छवि एक बेबस, लाचार औरत की छवि भी है,एक एन आर आइ दूल्हों द्वारा परित्यक्ता औरत की छवि भी है। क्या इनमें से कोई भी छवि हरियाणवी महिला की है? एक खाती-खिलाती जट्टनी की पंजाबी औरत की छवि में बेशक एक झलक हरियाणवी औरत की भी देखी जा सकती है। लेकिन हरियाणवी औरत की एक लड़ाका औरत की छवि अभी नहीं बन पायी है। फिर पंजाबी औरत की तरह आधुनिक रहन-सहन को भी इतना आगे बढ़कर उसने गले

नहीं लगाया है। आधुनिकता और पश्चिम ने उसे अभी उस हद तक नहीं लुभाया है कि दुष्परिणामों की चिंता छोड़ वह विदेश जाने की ललक से भरी हो।

फिर क्या हरियाणवी औरत की छवि हरियाणा के एक दूसरे पड़ोसी राज्य राजस्थान की औरत की छवि जैसी है। राजस्थानी औरत की मध्यकालीन छवि बेशक जौहर करनेवाली औरत की छवि रही हो लेकिन दिवराला सती कांड के वक्त उसकी छवि एक लाचार औरत की भी बनी, जो अभी भी पुरुष की मध्यकालीन सोच के सामने बेबस है। यूं उसकी छवि हमेशा घूंघट में रहनेवाली, रंगीन ओढ़नी और रंग-बिरंगी पौशाक में सजी-धजी, गीत गाते हुए मेले-ठेलों में जानेवाली या फिर दूर-दूर से पानी ढ़ोकर लानेवाली औरत की छवि है। यह वह छवि है जो पहले किशनगढ़ शैली और बूंदी शैली की पेंटिगों में या शेखावाटी की हवेलियों की चित्रकारी से बनी थी और अब सूरजकुंड के मेले में मिलनेवाली सस्ती किस्म की पेंटिगों से बनती है।

यह मुख्यत: सामंती व्यवस्था के तहत बनी औरत की छवि है, जिसमें खेत-खलिहानों में खटती औरत कहीं नहीं है। पर क्या हरियाणवी महिला की ऐसी कोई छवि है? जहां तक सामंती जकड़बंदी का सवाल है बेशक हरियाणवी महिला भी उसका तकरीबन उतना ही शिकार है पर इसके साथ ही वह खेत-खलिहान में खटती औरत भी है, जो आज पुरुष के मुकाबले कहीं ज्यादा परिश्रम कर रही है।

कई बार जब हम सरकारी फंक्शनों और यहां तक कि स्कूल-कालेज के फंक्शनों में बालिकाओं को रंगबिरंगी चूनड़ियों और भारी-भरकम घाघरों के साथ नृत्य पेश करते हुए देखते हैं तो लगता है कि हां हरियाणवी महिला की छवि कुछ-कुछ राजस्थानी महिला की छवि से मिलती जुलती है।

पर फिर गिद्दा डालती पंजाबी औरतों की परंपरागत पोशाक में भी लंबा कुर्ता और लहंगा शामिल है तो क्या यह मान लिया जाए कि उसकी थोड़ी छवि पंजाबी महिला से भी मिलती है।

लेकिन राजस्थान की मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे सिंधिया तो वार-त्यौहार छोड़िए, वोट मांगने भी रंगीन चूनड़ी ओढक़र निकल जाती हैं, जिससे साबित होता है कि वह राजस्थानी औरत की एक परंपरागत और लुभावनी छवि है, जिसे विदेश में शिक्षा प्राप्त एक महिला नेता अपने राजनीतिक हित के लिए भुनाने की कोशिश कर रही है। लेकिन ऐसी कोई कोशिश हरियाणा में किसी महिला नेता ने नहीं की और इससे यही साबित होता है कि यह हरियाणवी महिला की कोई ऐसी परंपरागत और लुभावनी छवि नहीं है।

हरियाणा के गुडग़ांव, रेवाड़ी और महेंद्रगढ़ के दक्षिणी सीमावर्ती जिलों को अगर छोड़ दिया जाए-जहां रंगीन चूनड़ी और लहंगा-कमीज अभी भी काफी हद तक बड़ी उम्र की महिलाओं की परंपरागत पोशाक बनी हुई है, तो ऐसी कोई छवि हरियाणवी महिला की उभरकर नहीं आती। कम उम्र की लड़कियां और युवतियां इसमें कतई शामिल नहीं हैं। इसी तरह से सिरसा-हिसार के पश्चिमी सीमावर्ती जिलों को छोड़ दिया जाए जहां खासतौर से बिश्नोई समाज की महिलाएं अभी भी परंगरागत राजस्थानी पोशाक पहनती हैं, बाकी हरियाणा में यह पोशाक नहीं रही है। यहां तक कि हरियाणा की उम्रदराज महिलाएं भी सलवार-कमीज में ही रहती हैं।

तो कम से कम पहनावे से तो हरियाणवी महिला की कोई ऐसी छवि नहीं उभरती है, जिसे हरियाणवी महिला की छवि कहा जाए। जैसे पंजाबी औरत की छवि गिद्दा की पोशाकवाली औरत की छवि नहीं है, जैसे राजस्थानी औरत की छवि वहां की महिला मुख्यमंत्री द्वारा चुनाव प्रचार के दौरान धारण की जानेवाली परंपरागत पोशाकवाली औरत की छवि नहीं है, जैसे गुजराती औरत की छवि डांडिया की पोशाक में रहनेवाली औरत की छवि नहीं है या फिर महाराष्ट्रियन औरत की छवि लावणी नृत्य की पोशाक पहननेवाली औरत की छवि नहीं है वैसे ही हरियाणवी औरत की छवि भी रंगीन चूनड़ी और भारी-भरकम घाघरा पहनने वाली औरत की छवि नहीं है।

फिर भी 'न आना इस देश लाडो' नामक, टी आर पी के मानदंड से, बेहद लोकप्रिय हुए टी वी सीरियल की अम्माजी उर्फ भगवानी सांगवान को क्यों घाघरे-कमीज और ओढ़नीवाली महिला के रूप में पेश किया गया। क्यों? क्या हरियाणवी महिला की एक परंपरागत छवि को भुनाने के लिए। उस सीरियल के थीम को अगर फिलहाल छोड़ दिया जाए, जिसकी चर्चा हम बाद में करेंगे और अभी सिर्फ पहनावे की ही बात की जाए तो असल में परंपरागत सोच को दर्शाने के लिए परंपरागत पहनावे का इस्तेमाल एक तरह से प्रतीकात्मक भी होता है।

पर सवाल अब भी वही है कि हरियाणवी औरत की छवि क्या है? बल्कि खासतौर से आज मीडिया में उसकी छवि क्या है? क्या उसकी छवि वही घूंघट में रहनेवाली औरत की छवि है जैसा कि अनेक समाजशास्त्रीय अध्ययनों में अभी तक दिखाया जाता रहा है। आइए थोड़ी इसकी पड़ताल की जाए।

बात थोड़ी पुरानी है। अस्सी का दशक समाप्त हो रहा था। तब तक न तो विश्वीकरण की प्रकिया शुरू हुयी थी और न ही सूचना तकनीक ने इस तरह से जनजीवन को अपनी चपेट में लिया था। टी वी चैनल तो खैर थे ही नहीं। न वेबसाइटें शुरू हुयी थी और न ही सोशल मीडिया था। अंग्रेजी और हिंदी की परंपरागत पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही थी। परंपरागत छवियां टूटती तो खैर हमेशा ही रही हैं पर उनके टूटने की प्रक्रिया इतनी तेज नहीं हुई थी।

यह उन्हीं दिनों की बात है कि अचानक ही तमाम पत्र-पत्रिकाएं पामेला बोर्डेस नामक एक खूबसूरत माताहारी टाइप की युवती के सेक्स स्कैंडल के किस्से-कहानियों से पट गयी थी। ब्रिटेन के टैबलायड्स में छाने के बाद भारत की तमाम पत्र-पत्रिकाओं में इस स्कैंडल के व्यापक ब्यौरे प्रकाशित होने लगे थे। यह स्कैंडल इतने बड़े आयाम का था कि ब्रिटिश संसद हिल गयी थी। अनेक सांसद और नेता इस स्कैंडल की चपेट में आ गए थे।

यह महिला कौन थी? पामेला बोर्डेस नामक इस युवती का असली नाम पामेला चौधरी था। पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए ब्यौरों से पता चला कि वे हरियाणा की रहनेवाली थी। उनके पिता सेना में अधिकारी थे। वे 1982 में मिस इंडिया बनी थी। दिल्ली के प्रतिष्ठित लेडी श्रीराम कालेज में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। बहरहाल, उस सेक्स स्कैंडल के बाद उनके प्रोफाइल में भारी बदलाव आया। आज वे एक प्रतिष्ठित फोटोग्राफर हैं।

हरियाणा के पंरपरागत समाज से निकली एक लडक़ी का इस तरह से सेक्स सिंबल बन जाना, क्या परंपरागत हरियाणवी

महिला की छवि से किसी तरह के शिफ्ट का संकेत था? हालांकि वे उस तरह के परंपरागत हरियाणवी समाज में पली-बढ़ी नहीं थी और न ही उन्होंने उस तरह की शिक्षा पायी थी। वैसे भी हरियाणवी समाज से निकले फौजी अफसरों के बच्चे कम से कम अपने रहन-सहन और आचार-व्यवहार में तो काफी आधुनिक हो ही जाते हैं। यहां आधुनिक होने से अर्थ पश्चिमी रहन-सहन और आचार-व्यवहार को अपनाने से ही है। हरियाणवी समाज का यह एक बेहद अलग-थलग द्वीप है।

इसलिए पामेला बोर्डेस को एक परंपरागत हरियाणवी महिला की छवि में आए किसी शिफ्ट की तरह से नहीं देखा गया। उन्हें किसी भी माने में हरियाणवी युवती का प्रतिनिधि नहीं माना गया। बल्कि इस मायने में वे तो भारतीय युवती का भी प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। पामेला बोर्डेस को हरियाणवी युवतियों की तरह अपनी पहचान बनाने के लिए कोई संघर्ष नहीं करना पड़ा था। यह एक आइसोलेटिड केस था, जो किसी भी माने में हरियाणवी औरत से नहीं जुड़ता था।

हालांकि उसके फौरन बाद ही विश्वीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई और एक के बाद एक अनेक भारतीय सुंदरियों द्वारा विश्व सुंदरी का खिताब जीतने के चलते अंतर्राष्ट्रीय मीडिया में भारतीय नारी का एक तथाकथित आधुनिक नारी के रूप में जबर्दस्त एक्सपोजर हुआ। लेकिन यह विश्वीकरण की जरूरत थी।

और जैसे पामेला बोर्डेस को हरियाणवी महिला तो छोड़िए, भारतीय महिला के सिंबल के रूप में भी नहीं देखा गया वैसे ही फिल्म स्टार मल्लिका सहरावत को भी हरियाणवी महिला के सिंबल के रूप में नहीं देखा गया। जबकि मल्लिका सहरावत भी हरियाणा की रहनेवाली हैं, जिनका असली नाम रीमा लांबा बताया जाता है। उन्होंने भी दिल्ली में शिक्षा हासिल की। पर बॉलीवुडीय फिल्मों में और मीडिया में उनकी छवि एक सेक्सी नायिका की छवि है।

हरियाणवी युवती का प्रतिनिधि उन्हें नहीं माना गया वैसे ही जैसे फिल्म एक्टर रणदीप हुड्डा को हरियाणवी युवा की छवि का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है।

इसी तरह पिछले दिनों मिस इंडिया बनी झज्झर के कासनी गांव की रहनेवाली अदिति भी हरियाणवी युवती का प्रतिनिधित्व नहीं करती। वे भी एक फौजी अफसर की बेटी हैं और उनकी शिक्षा भी बाहर ही हुयी है। इस माने में वे भी हरियाणवी समाज के उस अलग-थलग से द्वीप की नागरिक हैं, जिसका जिक्र हम ऊपर कर आए हैं।

बहरहाल सवाल अब भी वही है कि आखिर मीडिया में हरियाणवी महिला की छवि क्या है? प्रिंट मीडिया में हरियाणवी महिला की छवि पर बात करने से पहले आइए फिल्म और टेलीविजन जैसे दृश्य माध्यमों में उसकी छवि को लेकर थोड़ी बात कर ली जाए। फिल्मों की जहां तक बात है तो हिंदी सिनेमा, जिसे बॉलीवुडीय सिनेमा या मुंबई सिनेमा कहा जाता है, की बात करने से पहले अगर हरियाणा के क्षेत्रीय सिनेमा की बात की जाए तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि जिस माने में क्षेत्रीय सिनेमा को उस क्षेत्र के जनजीवन को प्रस्तुत करना चाहिए उस माने में यह एक बेहद कमजोर सिनेमा रहा है। हरियाणा के क्षेत्रीय सिनेमा की दो ही उल्लेखनीय फिल्में रही हैं-एक ''सांझी'' और दूसरी ''लाडो''। ये दोनों ही फिल्में दो भिन्न धरातलों पर औरत के संघर्ष की कहानी है।

''सांझी'' जहां जर-जमीन-जोरू के परंपरागत विषय पर बनी फिल्म है जिसमें नायिका के पति का कत्ल हो जाता है। यह कत्ल कोई और नहीं बल्कि उसकी जमीन पर नजरें गड़ाए बैठे उसके करीबी संबंधी ही करते हैं। पति के कत्ल के बाद वह अपनी जमीन और अपनी अस्मिता दोनों को बचाने की लड़ाई लड़ती है, जो एक सामान्य कथानक है। यह फिल्म न तो हरियाणवी महिला की कोई नयी छवि गढ़ती है और न ही परंपरागत छवि को कोई उदात्त रूप देती है।

इसके विपरीत 'लाडो' हरियाणवी महिला की उस परंपरागत छवि को तोड़ती है। इस फिल्म की नायिका विवाहेत्तर संबंध से गर्भवती होती है। लेकिन लोकलाज के चलते न तो वह उसे छुपाती है और न ही अपने गर्भ को गिराती है, बल्कि अपने विवाहेत्तर संबंध को स्वीकार करती है। वह सामाजिक मर्यादा के खिलाफ विद्रोह करती है और अपनी एक नयी पहचान को मनवाने के लिए लड़ती है। पर यह एक ऐसी महिला की कहानी है जिसे हरियाणवी महिला का प्रतिनिधि चरित्र नहीं कहा जा सकता। अपने सारे अनूठेपन और अपनी सारी बोल्डनेस के बावजूद इस फिल्म की नायिका हरियाणा जैसे पिछड़े समाज में वहां की नारी का प्रतिनिधि चरित्र नहीं है।

क्योंकि यथार्थ जिदंगी में हम देखते हैं कि हरियाणवी महिला इतनी बोल्ड नहीं हुयी है कि ऐसे मामलों में अपने परिवार या समाज से लड़ जाए। यहां तो महिलाएं परंपरागत मूल्यों से बंधी होने के कारण इस कदर मजबूर होती हैं कि बलात्कार के आरोपियों के परिवारों की महिलाएं और कई बार तो खुद आरोपियों की पत्नियां भी उनके बेकसूर होने की लड़ाई लड़ती नजर आती हैं। निश्चित रूप से फिल्म का कथानक बोल्ड है और परंपराओं की जकड़बंदी को तोड़नेवाला है लेकिन हरियाणवी महिला की परंपरागत छवि को बदल पाने की ताकत इस चरित्र में फिर भी नहीं है।

रही मुंबइया फिल्में तो हरियाणवी जनजीवन को विषय बनाकर इन दिनों फिल्में तो काफी बन रही हैं, पर उनमें हरियाणवी महिला का कोई भी प्रतिनिधि चरित्र नहीं है सिवाय दो-एक फिल्मों में उसकी थोड़ी-बहुत झलक देखने के। इनमें एक फिल्म है ''गुड्डू रंगीला'' और दूसरी है 'एन एच-10' जिसमें हरियाणवी युवतियां प्रेम करती है, घर-परिवार और समाज का विरोध होने के बावजूद अपने प्रेमी के साथ शादी करती हैं और अंत में खापों की हिंसा का शिकार होती हैं। यह आज की उस हरियाणवी युवती का थोड़ा यथार्थवादी चित्रण है, जो प्रेम करने और अपनी पसंद के लड़के को जीवन साथी बनाने की लड़ाई लड़ रही है। लेकिन इन दोनों ही फिल्मों में ऐसी युवती का ऐसा कोई मजबूत चरित्र सामने नहीं आता, जिसे हरियाणवी युवती का प्रतिनिधि चरित्र कहा जा सके।

हरियाणवी पृष्ठभूमि को ही लेकर एक तीसरी फिल्म है ''तनु वेड्स मनु रिटर्न्स'', जो काफी उल्लेखनीय है। इस फिल्म की नायिका कुसुम सांगवान उर्फ दत्तो एक तरह से आज की हरियाणवी युवती का प्रतिनिधित्व करती है। यह काफी मजबूत चरित्र है। वह एथलिट है। काफी दबंग है और यहां तक कि छेड़छाड़ करनेवाले लड़कों को पीटने का भी दम रखती है। वह प्रेम करती है। उस प्रेम के लिए संघर्ष करती है और सारी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद अपने निर्णय खुद लेती है।

टेलीविजन धारावाहिकों में जिस

तरह पंजाबी या गुजराती या इधर भोजपुरी पृष्ठभूमि को लेकर धारावाहिक बने, उतने बड़े पैमाने पर हरियाणवी पृष्ठभूमि को लेकर धारावाहिक नहीं बने। हरियाणवी पृष्ठभूमि को लेकर बना एक ही धारावाहिक उल्लेखनीय है और वह है 'न आना इस देश लाडो।' हालांकि एक और काफी लोकप्रिय हुए धारावाहिक ''एफ आइ आर'' की नायिका चंद्रमुखी चौटाला हरियाणवी पृष्ठभूमि वाली एक दबंग पुलिस अफसर है। वह धड़ल्ले से हरियाणवी बोलती है। वह कुछ-कुछ उसी छवि को पुख्ता करती है जो दिल्ली में हरियाणवी पृष्ठभूमि से आनेवाले पुलिसकर्मियों की छवि है। बेशक वह भ्रष्ट नहीं है। आखिर नायिका है। लेकिन उस धारावाहिक की पृष्ठभूमि हरियाणवी नहीं थी। वहां हरियाणवी जनजीवन की कोई झलक भी नहीं थी और इसलिए उसकी नायिका भी हरियाणवी युवती का प्रतिनिधि चरित्र नहीं है।

लेकिन 'न आना इस देश लाडो' धारावाहिक के शुरूआती एपिसोड्स की पृष्ठभूमि और उनका चित्रांकन हरियाणवी जन-जीवन की थोड़ी झलक जरूर दिखाते हैं। यह धारावाहिक कन्या भ्रूण हत्या के विषय को लेकर बनाया गया था, जैसा कि उसके नाम से ही पता चलता है। यह एक तथ्य है कि निजी मनोरंजन चैनलों के आने के बाद धारावाहिकों का, व्यवसायीकरण के भारी दबाव में जितनी तेजी से फिल्मीकरण हुआ, उसकी मार से यह धारावाहिक भी नहीं बचा और इसलिए अतिश्योक्तियों और अतिरंजनाओं से भरपूर रहा। फिर भी कन्या भ्रूण हत्या के मुद्दे को लेकर बनाए गए इस धारावाहिक की अहमियत इस माने में है कि इसने एक बहुत ही मौंजू और बोल्ड विषय को चुना। इसके साथ ही बेशक धारावाहिक की मुख्य पात्र एक महिला थी, फिर भी परिवार में महिलाओं के दमन और शोषण को प्रमुखता से दिखाया गया था। बेशक थोड़े अतिरंजित रूप में ही दिखाया गया।

जैसा कि पितृसत्तात्मक समाज में होता है परिवार की मुखिया के महिला होने के बावजूद वह उन्हीं प्रतिगामी और दमनकारी मूल्यों को आगे बढ़ाती है, जो ऐसे समाज में परंपरागत रूप से चले आ रहे होते हैं और उन मूल्यों के पोषक होते हैं। इस में जैसे ''एन एच-10'' फिल्म की महिला सरपंच अपवाद नहीं है जो अपनी झूठी इज्जत के लिए अपने बेटों और परिवारीजनों से अपनी ही बेटी और उसके प्रेमी का कत्ल करवा देती है वैसे ही 'न आना इस देश लाडो' की नायिका भगवानी भी अपवाद नहीं है। बल्कि वह उन प्रतिगामी और दमनात्मक मूल्यों की संरक्षक और वाहक बनती है। आश्चर्य नहीं कि इसी वजह से वह न सिर्फ अपने परिवार बल्कि पूरे गांव की अगुवाई करती है और जब वह इन मूल्यों को छोडने् की कोशिश करती है और उसके चरित्र में बदलाव आता है तो उससे वह नेतृत्वकारी भूमिका छिन जाती है।

हरियाणवी समाज में प्रमुखता से जड़ें जमाए बैठे इन पितृसत्तात्मक प्रतिगामी और दमनकारी मूल्यों को बेशक थोड़े अतिरंजित रूप में दिखाने के बावजूद यह कहा जा सकता है यह धारावाहिक उसी अंदाज में हरियाणवी समाज के प्रतिनिधित्वकारी महिला चरित्रों को सामने लाता है जैसे 'बालिका वधु' नामक धारावाहिक राजस्थानी जनजीवन और वहां के महिला चरित्रों को शुरू में सामने लाने की कोशिश कर रहा था, फिर चाहे वह भी उतने ही अतिरंजित रूप में उन्हें सामने ला रहा था। इस माने में यह कहा जा सकता है कि हरियाणवी महिला की एक प्रतिनिधि छवि भगवानी और दबी-कुचली अन्य महिला चरित्रों के रूप में इस धारावाहिक में देखी जा सकती है।

तो क्या हरियाणवी महिला की छवि यही है? कई बार खबरिया टेलीविजन चैनलों पर ऐसे अनेक दृश्य देखने में आ जाते हैं जो उपरोक्त छवि को पुख्ता ही करते हैं। मसलन लड़कियों के साथ छेड़छाड़ या कई बार तो बलात्कार तक के मामलों में छेड़छाड़ करनेवाले लड़कों व बलात्कारियों के पक्ष में उनके परिवार और कई बार तो गांव की औरतें भी खड़ी हो जाती हैं। कई बार ऐसे मामलों में भी वे पुरुषों के साथ खड़ी दिखाई देती हैं, जो कुल मिलाकर महिलाओं के हित में जानेवाले नहीं होते। इसी तरह खबरिया चैनलों पर इस तरह की खबरें भी देखने को मिल जाती हैं कि महिलाएं खासतौर से आरक्षण जैसे मुद्दों पर पुरुषों के साथ खड़ी होती हैं। बहुत बार तो उन्हें ह्यूमन शील्ड के तौर पर भी इस्तेमाल किया जाता है। पर इससे यह धारणा बनाना कि उनमें जुझारूपन आ रहा है, गलत होगा। क्योंकि सामाजिक मुद्दों पर उनकी ऐसी कोई भागीदारी नहीं होती है। इसलिए दृश्य माध्यमों के जरिए हरियाणवी महिला की कोई छवि बनाने से पहले हमें यह देखना होगा कि दृश्य माध्यमों में हरियाणवी महिला का छिटपुट चित्रण ही हुआ है जिसके आधार पर किसी निष्कर्ष तक पंहुचना उचित नहीं होगा।

हरियाणवी समाज के अभी भी रूढ़िवादी समाज बने रहने, महिलाओं के कमोबेश उन्हीं रूढ़ियों में बंधे होने के बावजूद इन्हीं सारी रूढ़ियों, प्रतिगामी और दमनकारी पितृसत्तात्मक सामंती मूल्यों के बीच हरियाणवी महिला एक भारी जद्दोजहद से अपने लिए जगह बनी बना रही है और उसका विस्तार कर रही है। यही वजह है कि उसके प्रोफाइल में भारी बदलाव आ रहा है। वह असली नायिकाओं के रूप में सामने आ रही है। सरकारी अचीवर्स की लिस्ट से अलग हरियाणवी महिला अपने बीच से अचीवर्स की एक नयी सूची तैयार कर रही है।

पर अगर मोटे तौर पर देखा जाए तो प्रिंट मीडिया में भी हरियाणवी महिला के यही दो रूप प्रमुखता से सामने आते हैं जिनमें एक रूप कन्याभ्रूण की हत्या में उसके समान सहभागी होने का है और दूसरा रूप परिवार या समाज में ऑनर किलिंग में उसकी मूक सहमति और कई बार सक्रिय सहभागिता का है। ये पितृसत्तात्मक मूल्यों के पोषण के ही दो रूप हैं और मोटे तौर पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

हरियाणा में लिंगानुपात कभी भी आदर्श नहीं रहा और हरियाणवी समाज कभी भी कन्याओं के जन्म के प्रति ज्यादा संवेदनशील नहीं रहा। कन्या के जन्म को लक्ष्मी के आगमन, जैसा कि आमतौर पर कहा जाता है, के रूप में कभी नहीं देखा गया। इसलिए पुत्र होने पर बजायी जानेवाली थाली, कन्या के जन्म पर कभी नहीं बजायी गयी और न ही कभी कन्या का कुआंपूजन हुआ और न ही दशोटन।

इस फिनोमिना को कन्याओं के नामकरण के रूप में और ज्यादा बेहतर ढ़ंग से समझा जा सकता है। हरियाणा में कन्याओं के नाम धापा, भतेरी, संतोष, रामभोत आदि

इसीलिए रखे जाते थे कि जो हो गयी सो बहुत है और कन्या नहीं चाहिए। और निश्चित रूप से ऐसे नाम लाडो,प्यारी जैसे नामों से ज्यादा ही होते थे। बल्कि सारे लाड़-प्यार के बावजूद वह 'मरज्याणी' तो हमेशा ही रही। लाड़ लड़ाते हुए उससे यही कहा जाता रहा है कि बस अब तू मर जा। उसे हमेशा आर्थिक बोझ और सामाजिक सम्मान पर होनेवाले संभावित खतरे के रूप में देखा गया। हरित क्रांति पूर्व के हरियाणवी किसान समाज में तो लडकी का मूल्य चुका कर शादियां करने या फिर आटा-बाटा प्रथा के जरिए शादियां करने का प्रचलन भी काफी रहा है।

लेकिन हरित क्रांति के बाद समाज के पूंजीवादी विकास के रास्ते पर चल पड़ने और सत्तर-अस्सी के दशक के बाद तो कन्या भ्रूण की हत्या ने एक हत्यारी मुहिम का ही रूप ले लिया। सामंती मूल्यों के चलते कन्या के जन्म को परिवार की इज्जत को कम करने या घटानेवाली परिघटना के रूप में शायद पूरे भारतीय समाज में ही देखा जाता रहा है।

ऑनर किलिंग भी कन्या भ्रूण हत्या से ही जुड़ा हुआ एक दूसरा फिनोमिना है, जो अब हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सीमाओं के पार जाकर इधर बिहार-बंगाल तक और उधर तमिलनाडु तक दस्तक दे रहा है।

लेकिन हरियाणवी महिला की इन दो पहचानों-जिन पर काफी कुछ लिखा जा चुका है और काफी समाजशास्त्रीय विश्लेषण भी हुआ है - से जुड़ी एक पहचान यह भी है कि कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ भी और ऑनर किलिंग के खिलाफ भी हरियाणवी महिला लगातार लड़ती रही है। इन्हीं संघर्षों का परिणाम है कि पी सी पी एन डी टी एक्ट में संशोधन हुआ है और ऑनर किलिंग के खिलाफ तो प्रेम विवाह करनेवाले और अंतर्जातीय शादी करनेवाले जोड़ों के संघर्ष की अनगिनत कहानियां ही हैं और जिन्हें मीडिया का भी काफी कवरेज हासिल हुआ है।

ऑनर किलिंग के खिलाफ जैसी कड़ी लड़ाई हरियाणवी युवतियों ने लड़ी,वह सचमुच बहादुरी की मिसाल है और शायद ही किसी अन्य राज्य में ऐसी अथक लड़ाई लड़ी गयी हो। हरियाणवी युवतियों ने तो जैसे खापों से हार न मानने की ठान ही रखी है। इतने बड़े पैमाने पर हुयी हत्याओं के बावजूद प्रेम-मोहब्बत और अपनी पसंद के लडके से ही शादी करने का सिलसिला रुका नहीं। इन्हीं संघर्षों का परिणाम है कि कन्या भ्रूण हत्या और ऑनर किलिंग फिल्म और टेलीविजन धारावाहिकों के विषय बने। क्योंकि इससे पहले हरियाणवी समाज का ऐसा कोई विषय कभी सार्वजनिक रूप से सामने नहीं आया है, जो हरियाणवी महिला की पहचान से जुड़ा हो।

इन्हीं संघर्षों का परिणाम है कि आज अखबारों में इस तरह की खबरें भी पढने को मिल जाती हैं कि बेटी पैदा होने पर उसका कुंआ पूजन हुआ। और इन्हीं संघर्षों का परिणाम है कि सरकार को बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ जैसे कार्यक्रम चलाने पर मजबूर होना पड़ा।

बहरहाल, दृश्य माध्यमों को अगर छोड़ दिया जाए तो कम से कम प्रिंट मीडिया में तो हरियाणवी महिला की बड़ी विविध छवियां सामने आ रही है, जो पॉजिटिव हैं, रचनात्मक हैं और प्रेरक हैं।

हाल के वर्षों में ऐसा पहली बार हुआ है कि आम हरियाणवी महिला को इतना जबर्दस्त एक्सपोजर मिला है। उसकी यह विविध छवियां कुछ-कुछ वैसे ही सामने आ रही हैं जैसे कभी बंगाली महिला की विविध छवियां सामने आयी थी-प्रेम करनेवाली, त्याग करनेवाली, आंदोलनकारी, क्रांतिकारी, शिक्षा क्षेत्र में अग्रणी आदि-आदि।

उत्तर भारतीय किसी भी अन्य राज्य में शायद ही वहां की महिला की ऐसी विविध छवियां सामने आ रही हों। यह छवियां घूंघट में रहनेवाली उसकी परंपरागत छवि से पूरी तरह जुदा और बिल्कुल भिन्न हैं। इन छवियों में वह सिर्फ कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ ही नहीं लड़ रही है। वह सिर्फ खाप पंचायतों की बर्बरीयत से ही नहीं जूझ रही है बल्कि वह जीवन के दूसरे अनेकानेक क्षेत्रों में भी अपनी काबलियत का धड़ल्ले से प्रदर्शन कर रही हैं।

हरियाणवी महिला अपनी परंपरागत छवि का खोल उतार कर आगे बढ़ चुकी है। यह सही है कि परंपरागत हरियाणवी महिलाएं जिनमें नयी पीढ़ी की औरतें भी शामिल हैं, अभी भी सामाजिक रूढियों का शिकार हैं और उनमें उन रूढियों को तोड़ने के साहस और इच्छा शक्ति की कमी है। जैसे कोई साल-डेढ़ साल पहले ही हुए हरियाणा विधानसभा चुनावों के समय का एक वाकया है। उस समय अखबारों में ही प्रकाशित एक वाकए के अनुसार हरियाणा के एक पूर्व एवं दिवंगत मुख्यमंत्री के परिजन और करीबी रिश्तेदार एक दूसरे के खिलाफ चुनाव मैदान में उतर रहे थे। नॉमिनेशन के वक्त अचानक उनकी दो बेटियों में से एक बहन ने दूसरी को टोकते हुए हुए कहा-ऐ ओला कर ले, तेरा जेठ आवै है।

जब राजनीतिक रूप से इतने आगे निकले हुए परिवार की बहुएं ही नहीं, जिन पर सामाजिक रूढ़ियों को अपनाने का ज्यादा दबाव नहीं होता है, बल्कि बेटियों का सामाजिक व्यवहार ही ऐसा रूढ़िवादी हो तो अंदाज लगाया जा सकता है कि यह जकडन् कितनी मजबूत होगी। इससे यह भी पता चलता है कि सिर्फ सत्ता के लिए की जानेवाली राजनीति कोई मूलगामी बदलाव नहीं ला सकती।

हरियाणवी समाज के अभी भी रूढ़िवादी समाज बने रहने, महिलाओं के कमोबेश उन्हीं रूढ़ियों में बंधे होने के बावजूद इन्हीं सारी रूढियों, प्रतिगामी और दमनकारी पितृसत्तात्मक सामंती मूल्यों के बीच हरियाणवी महिला एक भारी जद्दोजहद से अपने लिए जगह बनी बना रही है और उसका विस्तार कर रही है। यही वजह है कि उसके प्रोफाइल में भारी बदलाव आ रहा है। वह असली नायिकाओं के रूप में सामने आ रही है। सरकारी अचीवर्स की लिस्ट से अलग हरियाणवी महिला अपने बीच से अचीवर्स की एक नयी सूची तैयार कर रही है।

इनमें अगर एकतरफ लफंगों के खिलाफ लड़नेवाली रोहतक सिस्टर्स हैं जिन्होंने सारी जातिवादी गोलबंदियों, सारे सामाजिक दबावों, सरकार-पुलिस और प्रशासन की सारी उदासीनता के बावजूद अपने साथ छेडछाड़ करनेवाले बदमाशों से हार नहीं मानी और उन्हें न्याय के कटघरे में खड़ा किया तो दूसरी ओर हरियाणा की महिला खिलाड़ी हैं, एथलीट हैं, पर्वतारोही हैं, शिक्षा में आगे निकल रही लड़कियां हैं, नौकरीपेशा महिलाएं और अन्य कामगार स्त्रियां हैं।

अंतर्राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं में जितने मेडिल हरियाणा की लड़कियों ने जीते, उतने मेडल शायद ही किसी भी अन्य राज्य की लड़कियों ने जीते हों। फिर कुश्ती

जैसे खेलों में तो हरियाणवी लड़कियों का पूरा दबदबा है। हाल ही में संपन्न हुए ओलंपिक में भारत ने जो मैडल जीते, उनमें से एक विजेता, हरियाणा की साक्षी मलिक है, जिसने कुश्ती में ही मैडल जीता है। फिर बलाली बहनें हैं। बबिता फोगाट और विनेश फोगाट ने इस ओलंपिक में भी भारत का प्रतिनिधित्व किया था। हालांकि चोटिल होने की वजह से विनेश वैसा प्रदर्शन नहीं कर पायी जैसी कि उससे उम्मीद की जा रही थी। ये पांचों बहनें विभिन्न प्रतियोगितायों में नाम कमाने के बाद अब प्रो-रेसलिंग की विभिन्न टीमों में हैं। जिनका मुबाबला टीवी प्रसारण में देखने को मिला।

इन्हीं फोगाट बहनों और उनके पिता महावीर सिंह को लेकर आमिर खान अभिनीत बायोपिक फिल्म ''दंगल'' आ रही है। एक अन्य बहुत सफल रही हिंदी फिल्म ''सुलतान'' नायिका भी पहलवान है। इसका नायक पहलवान है और पहलवानी इस पहलवान लड़की के इश्क में पड़कर ही सीखता है। इस नायिका का पिता भी पहलवान है।

कुश्ती के क्षेत्र की अन्य प्रमुख महिलाओं में गीतिका जाखड़, पूजा ढांडा, निर्मला बूरा, कविता चहल, सुमन कुंडु आदि अनेक नाम शामिल हैं। पहले जहां मास्टर चंदगीराम की पुत्री प्रियंका कालीरमण जैसी एक आध महिला पहलवान का नाम सुनने में आता था, जिन्हें टी वी के रीयलिटी शो ''बिग बॉस'' में देखने का मौका लोगों को मिला था, वहीं अब ऐसी खिलाड़ियों की एक पूरी नयी फसल सामने आ रही है। ये सब लड़कियां बहुत ही साधारण पृष्ठभूमि से संबंध रखती हैं।

कुश्ती के अलावा दूसरे खेलों में भी हरियाणा की महिलाएं जोरशोर से आगे आ रही हैं। इनमें एथलिट निर्मला श्योराण तथा सीमा आंतिल, हाकी खिलाड़ी नवजीत कौर, दीपिका ठाकुर, मोनिका मलिक, पूनम मलिक, रानी रामपाल, सविता पूनिया, तैराक शिवानी कटारिया, थ्रो बाल खिलाड़ी ममता चौहान और शूटर अनिता देवी हैं। भारतीय हाकी टीम की कप्तान रही प्रीतम सिवाच हैं और ऐसे ही अनेक नाम हैं।

खिलाड़ियों की तरह ही पर्वतारोही लड़कियों की भी एक नयी फसल सामने आ रही है। इनमें रेवाड़ी के गूजर माजरी गांव की रहनेवाली दो बहनें सुनीता सिंह चौकन और रेखासिंह चौकन शामिल हैं। सुनीता ने जहां एवरेस्ट फतेह की है, वहीं रेखा ने तंजानिया की सबसे ऊंची चोटी पर झंडा लहराया है। वे दोनों बहनें भी अत्यंत साधारण परिवार से हैं, जिनके पिता जौहरी सिंह बी एस एफ से रिटायर हुए हैं। पूर्व पीढ़ी की पर्वतारोही संतोष यादव भी इसी रेवाड़ी क्षेत्र की रहनेवाली है और उन्होंने भी एवरेस्ट फतेह किया था।

काफी पहले मशहूर कहानीकार तथा उपन्यासकार मत्रैयी पुष्पा ने हरियाणा के पुलिस ट्रेनिंग सेंटर मधुबन में रहकर वहां पुलिस की नौकरी में आयी कुछ साहसी बालिकाओं की सेक्सेस स्टोरियां लिखी थी। ऐसी हरियाणा की कितनी ही महिलाएं पुलिस की नौकरी करते हुए शांति, शक्ति तथा सुरक्षा की प्रतीक बनी हुयी हैं।

इसी तरह शिक्षा के क्षेत्र में, लेखन में और अभिनय और गायन में, टी वी की एंकरिंग में, पत्रकारिता में हरियाणवी महिला पूरी दृढ़ता के साथ आगे बढ़ रही हैं। ''न आना इस देश लाडो'' की नायिका अम्माजी अर्थात मेघना मलिक हरियाणा की सोनीपत की रहने वाली और यही पली-बढ़ी हैं। यह वे क्षेत्र हैं जिनसे हरियाणा अभी तक अनजान माना जाता था। ऐसी महिलाओं का समय-समय पर मीडिया में जिक्र आता रहता है। ये सब ग्लैमर की दुनिया के बाहर के अचीवर्स हैं।

इनमें वे मेहनतकश महिलाएं भी शामिल हैं जो अकेले दम अपनी मेहनत से तमाम विपरीत सामाजिक परिस्थितियों में अपने परिवारों को पाल रही हैं और अपने बच्चों को काबिल बना रही हैं। इन्हीं सबके चलते कहा जा सकता है कि हरियाणा की महिला के प्रोफाइल में जबरदस्त बदलाव आया है। अब वे घूंघट में सिर्फ घर तक सिमटी औरत नहीं है। अब वह अपनी मेहनत से और अपने बूते नए आयाम तलाश कर रही है।

परंपरागत छवियां लंबी अवधि में बनती हैं। लेकिन इन छवियों के समानांतर ही कुछ नयी छवियां भी बनती चलती हैं जो कालांतर में उनका स्थानापन्न बनती है। हरियाणवी महिला की हमेशा घूंघट में रहनेवाली परंपरागत छवि अभी हो सकती है, लेकिन उसके समानांतर उसकी नयी छवि बन रही है जो कालांतर में उसका स्थानापन्न होगी। *सम्पर्क-99907-64810*

............लघु कथा

'मैं री मैं'

विजयदान देथा

एक मालदार जाट मर गया तो उसकी घरवाली कई दिन तक रोती रही। जात-बिरादरी वालों ने समझाया तो वह रोते-रोते ही कहने लगी, %पति के पीछे मरने से तो रही! यह दु:ख तो मरूँगी तब तक मिटेगा नहीं। रोना तो इस बात का है कि घर में कोई मरद नहीं। मेरी छ: सौ बीघा जमीन कौन जोतेगा, कौन बोएगा? हाथ में लाठी लिए और कंधे पर खेस रखे एक जाट पास ही खड़ा था वह जोर से बोला, 'मैं री मैं'

जाटनी फिर रोते-रोते बोली, 'मेरी तीन सौ गायों और पाँच सौ भेड़ों की देखभाल कौन करेगा?

उसी जाट ने फिर कहा, 'मैं री मैं'

जाटनी फिर रोते रोते बोली, 'मेरे चारे के चार पचावे और तीन ढूंगरियां हैं और पाँच बाड़े हैं उसकी देखभाल कौन करेगा?'

उस जाट ने किसी दूसरे को बोलने ही नहीं दिया तुरंत बोला, 'मैं री मैं'

जाटनी का रोना तब भी बंद नहीं हुआ। सुबकते हुए कहने लगी, 'मेरा पति बीस हजार का कर्जा छोड़ गया है, उसे कौन चुकाएगा?'

अबके वह जाट कुछ नहीं बोला पर जब किसी को बोलते नहीं देखा तो जोश से कहने लगा, 'भले आदमियों, इतनी बातों की मैंने अकेले जिम्मेदारी ली, तुम इतने जन खड़े हो, कोई तो इसका जिम्मा लो! यों मुंह क्या चुराते हो!'

हरियाणा में प्रवासी मजदूर

❑नरेश कुमार

हरियाणा इस वर्ष अपनी स्वर्ण जयंती मना रहा है। ये 50 साल हर क्षेत्र में हुए बदलावों के गवाह हैं। हरित क्रांति के प्रभावों से कृषि पैदावार में गुणात्मक बढ़ोतरी हुई थी और कृषक आबादी को बदहाली से उबरने मे कुछ राहत मिली थी। नब्बे के दशक तक प्रदेश की किसान-आबादी कृषि कार्यों में जी तोड़ मेहनत में जुटी दिखाई पड़ती है। नौकरीपेशा और स्कूली विद्यार्थी भी सीधे खेती से जुड़े रहे हैं। बीसवीं सदी के अंतिम वर्षों तक भूमिहीन परिवारों का गुजर-बसर का मुख्य साधन भी खेती-बाड़ी से जुड़ा रहा है।

कृषि क्षेत्र में मशीन और तकनीक से आए बदलावों से खेत मजदूरों को खेती में मिलने वाले काम में तेजी से गिरावट आई। परिणामस्वरूप ग्रामीण मजदूरों ने शहरों व कस्बों में निर्माण कार्यों से जुड़ी मजदूरी,रेहड़ी-फेरी लगाने, सब्जी बेचने व दुकानों पर बोझा ढ़ोने जैसे अनेक फुटकर कार्यों को अपनाया।

प्रदेश के ताने-बाने में मौजूद सामाजिक भेदभाव, वर्चस्ववादी तबकों द्वारा मजदूरों के स्वाभिमान को ठेस पंहुचाने वाले अपमानजनक व्यवहार और कृषि कार्यों पर कम दिहाड़ी मिलने जैसे कारणों के चलते भी रोजगार का स्वरूप बदल रहा है। शहरों में नकद दिहाड़ी और अपेक्षाकृत बेहतर मानवीय व्यवहार के चलते भी प्रदेश की भूमिहीन आबादी ने रोजगार की तलाश में शहरों का रूख किया है।

कृषि संबंधों में आए बदलावों को भी रोजगार के बदलते स्वरूप के संदर्भो में देखा जाना चाहिए। गांवों से निकलकर कस्बों और शहरों में जाने वाले मजदूरों का यह भी मानना है कि शहरों में मानवीय गरिमा के साथ-साथ समय पर उपयुक्त दिहाड़ी के बेहतर अनुभव हैं। भूमिहीन आबादी द्वारा खेती से जुड़े कम दिहाड़ी वाले कार्यों पर जाने से इंकार करने पर किसानों में मजदूरों के खिलाफ जमा रोष अनेक मसलों पर प्रतिक्रिया के रूप में सामने आता है। इन बदलते हालात में शारीरिक श्रम से जुड़े तमाम तरह के कार्यों में प्रवासी मजदूरों ने हरियाणा के सामाजिक ताने-बाने में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। प्रदेश में कई वर्षों से रह रहे प्रवासी मजदूरों ने यहां पर अपनी स्थायी रिहाइशें भी बना ली हैं।

हरियाणा,पंजाब,राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और इसके आस-पास के इलाकों में लाखों की संख्या में प्रवासी मजदूर सडक,भवन निर्माण व कृषि से जुड़े कार्यों में कड़ी मेहनत करते हुए अपना गुजर-बसर करते हैं। अपने प्रदेश से कोसों दूर चलकर यहां पर आने वाले इन प्रवासी मजदूरों को भी अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए अनेक तरह की सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक विषमताओं से गुजरते हुए तमाम तरह की पीड़ाओं से गुजरना पड़ता है। पिछले 20-25 वर्षों में नव-उदारीकरण की नीतियों के परिणामस्वरूप हरियाणा और इसके साथ लगते एन.सी.आर. के इलाकों में जमीनों की खरीद-फरोख्त, बड़े प्रोजक्टों की ठेकेदारी और दलाली से उगाही गई भारी पूंजी की बदौलत एक हिस्सा तेजी से धनाढ़्य हुआ है। यह तबका भव्य इमारतें बना रहा है और मंहगी जीवन शैली को अपनाने की ओर तेजी से दौड़ रहा है।

दूसरी सूरत यह है कृषि व निर्माण कार्यों में अपने परिवार का पेट पालने में जुटे प्रवासी मजदूर तमाम तरह के भेदभाव, दमन और शोषण के लपेटे में फसते जा रहे है। सुबह होते ही साईकल पर झोला टागें सड़कों पर प्रवासी मजदूरों की कतारें अपने कार्यस्थलों की ओर जाती दिखाई पड़ती हैं। शहरों में मुख्य चौराहों पर सर्दी-गर्मी और बारिश में काम की तलाश में मजदूरों की टोलियां दूर से ही दिखाई पड़ती हैं।

हमारे प्रदेश में विशेषकर निर्माण उद्योग एवम् कृषि क्षेत्र से जुड़े कार्यों में प्रवासी मजदूरों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। धान की रोपाई-कटाई, ईख की छुलाई, चिणाई, रेहड़ी-पट्टी, अनाज व सब्जी मंडियों में अधिकतर कार्यों में प्रदेशभर में प्रवासी मजदूरों पर ही निर्भरता है। यह कहा जा सकता है कि हरियाणा के सकल घरेलू उत्पाद में प्रवासी मजदूरों का महत्वपूर्ण योगदान है।

टूटे-फूटे कमरे व निर्माणाधीन बिल्डिंगों में ही प्रवासी मजदूरों का रैनबसेरा है। स्थानीय लोग प्रवासी मजदूरों को लक्षित करके कुछ गज जगह में कई-कई कमरों की कतारें बना देते हैं। इनमें रोशनी, हवा और साफ पीने के पानी की न्यूनतम जरूरतों का अभाव बना रहता है । शौच,नहाना,कपड़े धोने जैसे तमाम कार्य खुले में करने पड़ते हैं। एक कमरे का किराया हजार रूपये तक वसूला जाता है और तीन-चार मजदूर एक ही कमरे में रहते हुए मिल जाएगें।

कड़ाके की ठंड में कमरे के अंदर ही कोयले की भट्ठी सुलगाने से निकलने वाला जहरीला धुंआ कई बार प्रवासी मजदूर परिवारों के लिए गंभीर दुर्घटनाओं का कारण बन जाता है। स्थानीय लोग इनके कमरों के साथ लगती परचून की दुकान भी बना लेते हैं जहां पर इन प्रवासी मजदूरों का जमकर शोषण होता है। प्रवासी मजदूरों की आबादी में घटिया स्तर का सामान बेचकर इनके साथ भारी ठगी की जाती है।

कृषि कार्यों के लिए आने वाले प्रवासी मजदूरों को खेतों में बने कोठड़ो में रहना पड़ता है। स्थानीय आबादी का रुख इन प्रवासी मजदूरों के प्रति आमतौर पर उपेक्षा का रहता है। इलाकावाद के वर्चस्ववादी अहं के चलते प्रवासी मजदूरों को कार्यस्थलों पर मालिकों की गाली-गलौच और मार-पिटाई भी सहन करनी पड़ती है। कई वर्षो से एक ही स्थान पर रहने वाले प्रवासी मजदूरों के परिवारों के राशनकार्ड, वोटरकार्ड बनवाने में भारी दिक्कतें आती हैं। स्थानीय परिवारों को इन प्रवासी मजदूरों के बच्चे फूटी आंख नहीं सुहाते। आमतौर पर देखा जाता है कि जब कभी इन मजदूरों के बच्चे कोठियों के सामने खेलने लगते हैं तो इनको धमका कर भगा दिया जाता है,साथ ही एक-आध चपाटा भी जड़ दिया जाता है।

प्रवासी मजदूरों के साथ निर्माण कार्य स्थलों पर अनेक जानलेवा दुर्घटनाएं होती रहती हैं। दुर्घटना का शिकार हुए मजदूरों के पीड़ित परिवारों को मामूली राशि देकर ठेकेदार व मालिक आसानी से बच निकलते हैं।

हरियाणा में पिछले दिनों प्रवासी मजदूरों की कई ऐसी दर्दनाक मौत की घटनाएं घटी हैं जिनमें सामाजिक सुरक्षा की घोर अनदेखी व प्रशासन-मालिकों के मजदूर विरोधी रूख के चलते पीड़ित परिवार को पर्याप्त राहत नही मिल पाती है। रोहतक में एक प्रवासी मजदूर महिला की सांप के काटने से मौत हो गई। जिस कमरे में यह महिला अपने परिवार के साथ सो रही थी,उसमें गोबर के उपले भरे थे और मुश्किल से कमरें में सोने की जगह बनाई गई थी। ऐसी घटनाओं में पीड़ित परिवार के पास स्थानीय राशनकार्ड या रिहायश का कोई सबूत न होने पर किसी प्रकार का कोई मुआवजा नहीं मिल पाता।

स्थानीय मजदूरों की तुलना में प्रवासी मजदूरों को सामाजिक-आर्थिक दमन का सामना ज्यादा करना पड़ता है। कई मौकों पर दबंग लोगों द्वारा इन प्रवासी मजदूरों की दिहाड़ी मार ली जाती है। पलम्बर, घिसाई,पी.ओ.पी.,रंग-रोगन,पत्थर लगाने जैसे कार्य करने वाले इन प्रवासी मजदूरों की कई मौकों पर कोठी मालिकों और ठेकेदारों द्वारा यह कहकर हजारों रूपये मार लिए जातें हैं कि तुमने हमारा काम बिगाड़ दिया। पिटाई की जाती है और डर के मारे सब कुछ चुपचाप सहना पड़ता है। पिछले कुछ वर्षों में भवन निर्माण कामगार संगठित हुए हैं जो एक सकारात्मक कदम है।

खतरनाक जगहों पर मजदूरों से कार्य करवाते हुए मालिक आमतौर पर सुरक्षा उपायों के समुचित प्रबंधों की अनदेखी करते हैं।

प्रदेश में आने वाले प्रवासी मजदूरों में एक हिस्सा अल्पसंख्यकों का है। इलाकाई भेदभाव के साथ अल्पसंखयक होने के खतरे भी सताते रहते हैं। पानीपत जैसे शहर में हैंडलूम व पावरलूम से जुड़े उद्योग में हजारों की संख्या में अल्पसंख्यक समुदाय से संबंध रखने वाले परिवार अपने बेहतरीन हुनर से देश-विदेश में प्रदेश की प्रतिष्ठा को बढ़ा रहे हैं। दुर्गा पूजा, ईद और छठ जैसे अपने परम्परागत सांस्कृतिक उत्सवों के मौकों पर पूजा व झाकियां निकालते वक्त इन प्रवासी मजदूरों को अपने प्रवासी होने के एहसास के साथ ही सड़कों से गुजरना पड़ता है।

प्रवासी मजदूर महिलाओं को चौतरफा मुसीबतों से झुझना पड़ता है। ठेकेदारों के पास बंधी(नियमित) मजदूरी करने वाली महिला मजदूरों को पुरुषों से कम दिहाड़ी दी जाती है। प्रवासी महिला मजदूरों का एक हिस्सा मध्यमवर्गीय घरों में झाड़ू,पौचा,सफाई और खाना बनाने का काम करता है जिनमें 10 से 17 साल के बीच की आयु की अनेक लड़कियां कम वेतन पर घरेलू कार्य करती हैं। ज्यादातर मजदूर महिलाओं में खून की कमी पाई जाती है। दूर-दराज के कार्य स्थलों पर होने वाली प्रसूति के समय किसी प्रकार की कोई समस्या आने पर मैडिकल या प्रशिक्षित दाई की सुविधा मिलना तो लगभग असम्भव ही रहता है। इन प्रवासी मजदूरों के कार्य स्थलों पर इनके बच्चों के लिए शिक्षा व ईलाज की सुविधाओं की बड़े पैमाने पर अनदेखी होती है।

कार्य स्थलों के बदलते रहने के कारण इनके बच्चे नियमित स्कूल नहीं जा पाते। प्रवासी मजदूरों के जो बच्चे सरकारी स्कूलों में जाना चाहते हैं उन्हें दाखिलों के समय जाति की पहचान के सबूत,आधार कार्ड,राशनकार्ड के अभाव में निराश ही होना पड़ता है। जाति प्रमाण पत्र जैसे कागजात उपलब्ध न होने की वजह से इन बच्चों को वजीफे से भी वंचित ही रहना पड़ता है। अक्सर देखने में आता है कि 14-15 वर्ष की उम्र में ही इनके बच्चे,रंग-रोगन बेलदारी,मिस्त्री,घिसाई जैसे कार्यों में जुट जाते हैं।

इन कठिन परिस्थितियों की सबसे ज्यादा मार प्रवासी मजदूरों की लड़कियों पर पड़ती है। दस वर्ष की उम्र पार करते ही सुरक्षा के डर के मारे लड़कियों को स्कूल से हटा दिया जाता है और अपने गांव ले जाकर कम उम्र में ही इनकी शादी कर दी जाती है। रोहतक में एक प्रवासी बस्ती में रात को चलने वाले गांधी स्कूल में 8 वीं से 10 वीं कक्षा में पढने् वाली छात्राओं का कहना है कि हम गांधी स्कूल से नहीं जुड़ते तो अब तक हमारी शादी हो चुकी होती।

प्रवासी मजदूरों का अपने मूल इलाके से पलायन का मुख्य कारण वहां पर बारिश का अभाव व सस्ती मजदूरी का होना है। प्रवासी मजदूरों द्वारा अपने घर-परिवार में किए जाने वाले शादी व मृत्यु के मौकों पर किया जाने वाला खर्च सूद की ऊंची दरों पर कर्ज उठाकर किया जाता है। साल में दो-तीन बार अपने गांव में घर पर खर्च व साहूकार के ब्याज का पैसा देने के लिए आना-जाना होता है। यहां पर मेहनत-मजदूरी करके जोड़ा गया थोड़ा-थोड़ा पैसा अपने घर जाते हुए कई बार रेलगाड़ी में ही लुटेरों की भेंट चढ़ जाता है।

असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले मजदूरों को श्रम कानूनों की अनदेखी के चलते अनेक तरह की पीड़ाओं का शिकार होना पड़ता है। उदारीकरण के इस दौर की सबसे बड़ी विशेषताएं जिम्मेदारीविहीन ठेकेदारी प्रथा के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर गरीबी,शोषण,बेरोजगारी और पहचान की इलाकाई संकीर्णताओं के रूप में सामने आती हैं। इन मजदूरों की सामाजिक सुरक्षा से जुड़े श्रम कानूनों की व्यापक पैमाने पर घोर उल्लंघना हो रही है। न्यूनतम वेतन,हाजिरी रजिस्टर,पी.एफ .और पैंशन जैसे कानूनी प्रावधानों से बचने के लिए मालिकों ने ठेकेदारों के माध्यम से मजदूरों को काम पर रखने का तरीका निकाल लिया है। गरीबों को जी तोड़ मेहनत करके अपनी रोजी-रोटी चलानी मुश्किल होती जा रही है। ऐसे में वैकल्पिक नीतियों के आधार पर ही गरीब आबादी को राहत दी जा सकती है।

सम्पर्क-9416267986

●

लघु कथा

शंकर पुणतांबेकर

रोटी

भगवान ने हमसे कहा, 'हमारा यह मंदिर खोद डालो। यह मंदिर नहीं, साक्षात भ्रष्टाचार खड़ा हुआ है।' हमने कहा, 'हमारे पास सिर्फ कलम है। इससे जल्दी नहीं खोद पाएँगे। जिनके पास सही हथियार हैं, आप उनसे क्यों नहीं कहते' इस पर भगवान ने कहा कि 'वे भूखे हैं, उनके पास ताकत नहीं है' इस पर हमने कहा, 'आप उन्हें रोटी देकर ताकत क्यों नहीं देते?' भगवान बोले, 'मैं उन्हें रोटी दे तो दूँ, पर वह उनके अधिकार की नहीं, भीख की चीज होगी। भीख की रोटी आदमी को काहिल बना देती है और काहिल लोग जड़ नहीं खोद सकते।'

हरियाणा की खेलों में उपलब्धियां

❑सरिता चौधरी

हरियाणा ने पचास वर्षों में खेलों में अपनी पहचान बनाई है। खेलों में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं की हिस्सेदारी भी तेजी से बढ़ रही है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जैसे-जैसे भारत अपनी पहचान बना रहा है। उसी प्रकार विभिन्न खेलों में हरियाणा के खिलाड़ियों की संख्या बढ़ती जा रही है।

आज का युग बहुत भागदौड़ व मानसिक तनाव का युग है। ऐसे में अपने-आपको शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रखने के लिए खेलना बहुत आवश्यक है। वर्तमान में खेलकूद शारीरिक विकास तक सीमित नहीं रहा,अपितु विश्वीकरण, व्यापारीकरण व व्यवसायिक क्षेत्रों में धकेल दिया है। अब खेलों में बहुत व्यवसायिक अवसर हैं, जिनमें प्रशिक्षण व्यवसायिक खिलाड़ी, स्वास्थ्य, पत्रकारिता, खेल औषधि, पोषण सेवाएं, खेल मनोविज्ञान, खेल समाजशास्त्र, खेल उपकरण उल्लेखनीय हैं।

क्रिकेट, टेनिस, बाक्सिंग, गोल्फ, शतरंज, कुश्ती, प्रो कबड्डी आदि खेलों का तो तीव्र व्यवसायीकरण हुआ है। इन खेलों की स्पर्धाओं में बड़ी इनामी राशि होती है। खेलकूद आज मनोरंजन के साथ-साथ रोजगार का सशक्त माध्यम बन गया है।

हरियाणा बनने के बाद तक खेलों में बहुत ज्यादा सुविधाएं नहीं थी। और पहले पदक लाने पर खिलाड़ी को रोजगार मिलने की गारंटी नहीं थी, परन्तु जब से हरियाणा सरकार की 'पदक लाओ पद पाओ' की खेल नीति आई तब से हरियाणा की राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भागीदारी व पदक तालिका बढ़ती गई।

अब हरियाणा खेलों का हब बन चुका है। शाहाबाद (हाकी), अमीन (वालीबाल), रोहतक (कुश्ती), भिवानी (बाक्सिंग) से अनेक अंतर्राष्ट्रीय खिलाड़ी निकले। ओलिम्पिक खेलों में पिछले दो बार की भारत की उपलब्धियों में मिले 50 प्रतिशत से ज्यादा पदकों पर हरियाणा के खिलाड़ियों का कब्जा हैं।

यदि हम खेल संस्कृति के विकास के बारे में बात करें तो मेरा अनुभव यह बताता है कि खेल संक्रमण की तरह फैलते हैं। एक खिलाड़ी की देखम-देखी, रीसम-रीस दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां और इसी तरह पूरी गली, कालोनी, पूरे शहर में खिलाड़ी उभर आते हैं। पहले हम देखते थे कि लड़कियां ट्रैक सूट पहन कर जाने में हिचकती थी और पास-पड़ौस में भी उन्हें अजीब नजरों से देखा जाता था। लेकिन जब उन्हीं महिला खिलाड़ियों ने पदक लाने शुरू किए तो उनकी आलोचना करने वाले अभिभावक भी चाहने लगे कि हमारी लड़कियां भी खेलों में हिस्सा लें व उपलब्धियां प्राप्त करें। फोगाट बहनें गीता, बबीता, विनेश की शानदार उपलब्धियों के बाद तो लगातार खिलाड़ियों में आगे से आगे बढ़ने की हौड़ लगी है। जब से अच्छी उपलब्धि लाने पर खिलाड़ी को रोजगार के साथ अच्छी ईनामी राशि मिलने लगी तो हरियाणा के खिलाड़ियों ने अलग-अलग खेल में अपनी धूम मचा दी।

हरियाणा के सुशील कुमार एकमात्र भारतीय खिलाड़ी हैं जिन्होंने कुश्ती की व्यक्तिगत स्पर्धाओं में दो बार ओलम्पिक खेलों में (2008 बीजिंग, 2012 लंदन) कांस्य पदक प्राप्त किया। अर्जुन अवार्डी राजेंद्र कुमार उमरी (कुरुक्षेत्र) ने भी 2010 राष्ट्रमंडल खेलों में स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

खेल पुरस्कार व अवार्ड पाने में भी हरियाणा के खिलाड़ी पीछे नहीं हैं। देश का सर्वोच्च खेल पुरस्कार 'राजीव गांधी खेल रत्न पुरस्कार' 1991-92 में शुरू हुआ, उन खिलाड़ियों को प्रदान किया जाता है। जिन्होंने विचाराधीन वर्षों में उल्लेखनीय उपलब्धि प्राप्त की है। इसमें 7.5 लाख रुपए इनामी राशि दी जाती है। 32 में से 7 हरियाणा से हैं।

पुरस्कार और प्राप्तकत्ताओं की सूची

साल	प्राप्तकर्त्ता	खेल
1994-95	कर्णम मल्लेश्वरी	वेटलिफ्टिंग
2009	विजेंद्र सिंह	बाक्सिंग
2009	सुशील कुमार	रेसलिंग
2010	साईना नेहवाल	बैडमिंटन
2011	गगन नारंग	शूटिंग
2012	विजय कुमार	शूटिंग
2012	योगेश्वर दत्त	रेसलिंग
2016	साक्षी मलिक	रेसलिंग

2012 में लंदन ओलम्पिक

विजय कुमार	रजत	निशानेबाजी
गगन नारंग	कांस्य	निशानेबाजी (मूलत: हरियाणा)
साईना नेहवाल	कांस्य	बैडमिंटन (हरियाणा)
एम-सी मैरीकॉम	कांस्य	मुक्केबाजी
सुशील कुमार	रजत	कुश्ती (हरियाणा)
योगेश्वर दत्त	कांस्य	कुश्ती (हरियाणा)

2016 रियो ओलम्पिक

पी.वी. सिंधू	रजत	बैडमिंटन
साक्षी मलिक	कांस्य	हरियाणा

भारत सरकार द्वारा 'द्रोणाचार्य पुरस्कार' प्रतिभावान खेल प्रशिक्षकों (कोच) को दिया जाता है। इसमें भी 5 लाख रुपए नकद धनराशि प्रशिक्षक को दी जाती है, जोकि 1985 में देना शुरू किया। इसमें से हरियाणा के लगभग 12 प्रशिक्षकों को यह पुरस्कार मिला है।

द्रोणाचार्य अवार्ड प्राप्तकर्त्ता प्रशिक्षक

क्र.	नाम	खेल	जिला
1	एमके	हाकी	गुरुग्राम
2	जगदीश	बाक्सिंग	भिवानी
3	हरगोबिन्द	एथलेटिक	पंचकूला
4	अनूप	बाक्सिंग	हिसार
5	गुरदयाल भांगरू	हाकी	अम्बाला
6	बलदेव	हाकी	कुरुक्षेत्र
7	अजय	हाकी	अम्बाला
8	चांदरूप	रेसलिंग	रोहतक
9	सुनील	कबड्डी	गुरुग्राम
10	नरेन्द्र सैनी	हाकी	रोहतक
11	महाबीर	रेसलिंग	हिसार
12	बहादुर	एथलेटिक	सिरसा

हरियाणा की रितु रानी 2012 लंदन में होने वाली हाकी ओलिम्पक टीम की कप्तान बनी। हरियाणा के नीरज चोपड़ा ने पौलेण्ड में सम्पन्न अंडर-20, 2016 विश्व एथलेटिक्स चैंपियनशिप में भाला फेंक प्रतियोगिता में नया विश्व रिकार्ड बनाकर स्वर्ण पदक जीता।

अर्जुन पुरस्कार

देश के श्रेष्ठ खिलाड़ियों को प्रतिवर्ष यह पुरस्कार प्रदान किया जाता है। इसका प्रारंभ 1961 में हुआ। विभिन्न खेलों से सम्बद्ध श्रेष्ठ खिलाड़ियों को प्रति वर्ष भारत सरकार द्वारा दिया जाता है। इसमें खिलाड़ियों को 5 लाख रुपए नकद धनराशि मिलती है। हरियाणा के लगभग 73 खिलाड़ियों को यह पुरस्कार मिल चुका है।

हरियाणा के अर्जुन पुरस्कार विजेता

क्र.	नाम	खेल	जिला
1	उदय	रेसलिंग	हिसार
2	मनसूरअली पटौदी	क्रिकेट	नूंह
3	भीम सिंह	एथलीट	फरीदाबाद
4	खुशी राम	बास्किटबाल	झज्जर
5	मास्टर राम	रेसलिंग	
6	मनमोहन	बास्किटबाल	गुरुग्राम
7	जगरूप	रेसलिंग	फरीदाबाद
8	एमएस	स्वीमिंग	भिवानी
9	साबिर	एथलीट	यमुनानगर
10	महाबीर	रेसलिंग	सोनीपत
11	ब्रि. डीके	स्वीमिंग	अम्बाला
12	किरपाल	जिम्नास्टिक	सोनीपत
13	ओमबीर	रेसलिंग	झज्जर
14	आरएस	रोईंग	सोनीपत
15	कर्नम मल्लेश्वरी	वेट लिफ्टिंग	यमुनानगर
16	पूनम	जूडो	झज्जर
17	मिस शिल्पी	शूटिंग	फरीदाबाद
18	नरेन्द्र	जूडो	झज्जर
19	अंजु दुआ	जिम्नास्टिक	अम्बाला
20	नीलम जे	एथलेटिक	रोहतक
21	एमके	हाकी	गुरुग्राम
22	जितेन्द्र	बाक्सिंग	रोहतक
23	रमेश गुलिया	रेसलिंग	सोनीपत
24	राम	कबड्डी	भिवानी
25	राजेश	इकुएसट्रिन	गुरुग्राम
26	दीप अहलावत	इकुएसट्रिन	झज्जर
27	सुंदर	कबड्डी	रोहतक
28	अखिल	बाक्सिंग	रोहतक
29	रोहित	पेरालम्पिक	भिवानी
30	सुरेन्द्र कौर	हाकी	
31	योगेश्वर	रेसलिंग	सोनीपत
32	जसजीत कौर	हाकी	
33	संजीव	शूटिंग	यमुनानगर
34	प्रशांत	पेरालम्पिक	भिवानी
35	रविन्द्र	रेसलिंग	झज्जर
36	दीपा	पेरालम्पिक	गुरुग्राम
37	सरदार	हाकी	सिरसा
38	विकास	बाक्सिंग	भिवानी
39	अनूप	कबड्डी	गुरुग्राम
40	समीर	पोलो	झज्जर
41	गीता	रेसलिंग	भिवानी
42	धर्मेंद्र	रेसलिंग	झज्जर
43	जय	बाक्सिंग	हिसार
44	मनोज	बाक्सिंग	कैथल
45	हवासिंह	बाक्सिंग	भिवानी
46	बलवंत	वालीबाल	कैथल
47	मेहताब	बाक्सिंग	भिवानी
48	गीता	एथलेटिक	गुरुग्राम
49	राजेंद्र मोर	रेसलिंग	
50	कपिल	क्रिकेट	
51	अजमेर	बास्केटबाल	
52	चांद	एथलेटिक	जींद
53	सुनीता	जिम्नास्टिक	
54	सत्यवान	रेसलिंग	रोहतक
55	दलेल सिंह	वालीबाल	कुरुक्षेत्र
56	अशोक गर्ग	रेसलिंग	रोहतक
57	शक्ति सिंह	एथलेटिक	भिवानी
58	अशान	कबड्डी	भिवानी
59	रोहताश	रेसलिंग	सोनीपत
60	प्रीतम	हाकी	सोनीपत
61	विवेक	शूटिंग	गुरुग्राम
62	आमिर	वालीबाल	पंचकूला
63	ममता	हाकी	रोहतक
64	अनिल	एथलेटिक	भिवानी
65	रमेश	कबड्डी	हिसार
66	गीतिका	रेसलिंग	हिसार
67	संदीप शर्मा	वालीबाल	कुरुक्षेत्र
68	संजीव	शूटिंग	यमुनानगर
69	संजय	रेसलिंग	सोनीपत
70	राजेंद्र	रेसलिंग	कुरुक्षेत्र
71	अमित	रेसलिंग	रोहतक
72	कविता	बाक्सिंग	भिवानी
73	नेहा	रेसलिंग	फरीदाबाद

1985 में शुरू हुए राष्ट्रीय खेलों में भी हरियाणा की उपलब्धियों में निरन्तर बढ़ौतरी हो रही है।

	स्वर्ण + रजत + कांस्य	कुल पदक	स्थान
1999	8 + 12 + 23	124	14th
2001	17 +20 + 22	59	7th
2002	19 + 22 + 32	73	7th
2007	30 + 22 + 28	80	5th
2011	42 + 33 + 40	115	3rd
2015	40 + 40 + 27	107	3rd

2016 रियो पैरालम्पिक में कुल 19 पैराएथलीट में से 10 खिलाड़ी हरियाणा से थे व अहमदाबाद में होने वाले तीसरे वर्ल्डकप कबड्डी' 2016 में 14 सदस्यीय भारतीय टीम में 8 खिलाड़ी हरियाणा से हैं। गुड़गांव के अनूप कुमार टीम के कप्तान हैं। हरियाणा के ऐसे बहुत खिलाड़ी हैं, जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना परचम फहराया।

लेकिन विडम्बना यह है कि बहुत सारी प्रतिभाएं सुविधाओं व जागृति की कमी से अंधकार में ही रह जाती हैं। लड़कियों के लिए खेलने के लिए अभी भी सुखद माहौल नहीं है, क्योंकि धूल-धूप में रंग सांवला होने, चेहरे पर निशान आदि लगने, चाल-ढाल में मर्दानापन झलकने आदि को विवाह में अड़चन माना जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पदक लाने पर खिलाड़ियों को करोड़ों का ईनाम व अच्छी नौकरी मिल जाती है, परन्तु खिलाड़ियों को तैयार करने के लिए जो संसाधन, उपकरण व खानपान सुविधाएं चाहिएं वो सभी खिलाड़ियों को पदक से पहले अभ्यास के दौरान नहीं मिलती। अगर घोषित ईनाम की आधी राशि भी खिलाड़ी तैयार करने पर खर्च की जाए तो दस गुणा पदक आ सकते हैं।

खेल ढांचे में समूचे बदलाव की जरूरत है। पूरे देश में एक ही खेल नीति होनी चाहिए। एक ही फैडरेशन होनी चाहिए। ऐसी संस्थाओं में बढ़ौतरी होनी चाहिए जो खिलाड़ियों को आसानी से प्रतिबंधित दवाओं की जानकारी बारीकी से दे सकें।

हर जिले में एक सर्च कमेटी होनी चाहिए जो सभी स्कूल, क्रीड़ा स्थल, गलियों, मोहल्ले में खेलते हुए बच्चों का अवलोकन व अध्ययन करे व जिनमें भी कोई विशिष्ट प्रतिभा नजर आए, उनको सूचीबद्ध करके खेल नर्सरी में भेजा जाए व भरपूर सुविधाएं उपलब्ध कराएं। *सम्पर्क : 94162-36905*

केदारनाथ (उतराखंड) त्रासदी पर 'ठहरे हुए पलों में' उपन्यास का विमोचन

18 सितम्बर 2016 को सनातन धर्म वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, जगाधरी में श्री ब्रह्म दत्त शर्मा द्वारा रचित उपन्यास 'ठहरे हुए पलों में' का विमोचन डा. रमेश शर्मा, प्रसिद्ध पंजाबी साहित्यकार एवं पूर्व प्रिंसीपल मुकुंद लाल नेशनल कॉलेज, यमुनानगर, डा. सुषमा आर्या प्रिंसीपल डी.ए.वी. गर्ल्ज कॉलेज, यमुनानगर, डा. पी.के. बाजपेयी प्रिंसीपल महाराजा अग्रसेन कॉलेज, जगाधरी, डा. एन.के. नागपाल पूर्व प्रिंसिपल आई.जी.एन. कॉलेज, लाडवा, डा. नरेंदर सिंह विर्क, उपाध्यक्ष, हरियाणा पंजाबी साहित्य अकादमी, डा. सुभाष सैनी, प्रोफेसर हिंदी विभाग कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी, श्री ओम सिंह अशफाक, वरिष्ठ लेखक एवं आलोचक, कुरुक्षेत्र के करकमलों द्वारा किया गया।

उपन्यास के विमोचन के अवसर पर लेखक श्री ब्रह्म दत्त शर्मा ने बताया कि यह उपन्यास उत्तराखण्ड त्रासदी पर है। उपन्यास लेखन से जुड़े अपने अनुभव सांझा करते हुए उन्होंने बताया कि वे वर्ष 2013 में अपने व दो अन्य मित्र परिवारों के साथ इस भयानक प्राकृतिक आपदा में 15 दिनों तक फसे रहे थे। इस दौरान उन्होंने जो कुछ देखा, जो कष्ट, दु:ख व तकलीफें महसूस की, उन्हीं अनुभवों को आधार बनाकर यह उपन्यास लिखा। उपन्यास पर दिन-रात कड़ी मेहनत करते रहने पर पूरा करने में 3 वर्ष का लम्बा समय लग गया।

उपन्यास पर चर्चा शुरू करते हुए हिंदी के विद्वान प्रोफेसर और लेखक श्री बी मदनमोहन ने बताया कि उपन्यास की शुरुआत बड़े ही चमत्कारी ढंग से होती है। उपन्यास में रोचकता प्रथम पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक बरकरार है। लेखक छोटी से छोटी घटना में भी भरपूर कथारस का मजा देते हैं। त्रासदी के दौरान बिताये गये अभावग्रस्त बारह दिनों का बखूबी वर्णन किया गया है। उपन्यास में जहां एक तरफ अतुल त्रिवेदी जैसा दार्शनिक पात्र है, जो धार्मिक आस्थाओं पर प्रश्न खड़े करता है, तो वहीं दूसरी तरफ गोपाल नेगी जैसा पात्र भी है, जो धार्मिक स्थलों के मठाधीशों की अच्छी खबर लेता है। इस उपन्यास में यात्रा-वृतांत, फीचर, पत्रकारिता और संस्मरण जैसी भिन्न-भिन्न विधाओं के दर्शन एक साथ होते हैं।

कुरुक्षेत्र से पधारे लेखक और आलोचक श्री ओंम सिंह अशफाक ने कहा कि ब्रह्म दत्त शर्मा ने बड़े कम समय में ही लेखक के रूप में अपनी पहचान बनाई है। उनकी लेखकीय चिंताओं में सामाजिक समस्याएँ हैं। उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी पठनीयता। उपन्यास को एक ही बैठक में शुरू से अंत तक पढ़ा जा सकता है।

कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी के हिंदी विभाग में प्रोफेसर और 'देस हरियाणा' पत्रिका के सम्पादक डा. सुभाष ने ब्रह्म दत्त शर्मा के साथ-साथ इस कृति के लिए पूरे यमुनानगर को बधाई दी। उनके अनुसार हरियाणा में अच्छे उपन्यासकार तो काफी कम हैं। यह उपन्यास पाठकों के बीच अपना स्थान बनाएगा। लेखक का निजी अनुभव इसे विश्वसनीयता प्रदान करता है। लेखक ने यात्रियों और स्थानीय निवासियों दोनों के नजरिए से उपन्यास को लिखा है। इतने गंभीर विषय पर लिखते हुए रचना के बोझिल हो जाने का ख़तरा बना रहता है परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं होने दिया।

आई. जी. एन. कॉलेज लाडवा के पूर्व प्राचार्य डा. एन. के. नागपाल के अनुसार उपन्यासकार व्यवस्था पर चोट करता है। पुलिस, सेना, मन्दिर समिति, स्थानीय निवासी, ड्राईवर आदि के बारे में बतलाते हुए वे पूरी तरह तटस्थ रहते हैं। उतराखंड त्रासदी पर यह कृति उन्हें भारत-पाक बटवारे की त्रासदी पर आधारित खुशवंत सिंह के 'ट्रेन टू पाकिस्तान' की याद दिलाती है।

हरियाणा पंजाबी साहित्य अकादमी के उपाध्यक्ष डा. नरेंदर सिंह विर्क के अनुसार उपन्यास मनुष्य के विकास के साथ विनाश को भी दर्शाता है। साथ-साथ यह पात्रों के माध्यम से मनुष्य के दोहरे चरित्र को भी दर्शाता है। उपन्यास में मुख्य चरित्र के अलावा भी कई पात्र पाठक के दिलो-दिमाग पर छा जाते हैं-

जैसे पंजाबी सरदार गुरप्रीत का पात्र पाठकों को गुदगुदाता रहता है, अतुल त्रिवेदी जी धर्म एवं आस्था पर सवाल खड़े करते हैं, और उपन्यास के अंतिम हिस्से में छोटी बच्ची श्वेता का पात्र। ये पात्र पाठकों को उपन्यास समाप्त होने के देर बाद तक भी याद आयेंगे और उनके दिमाग से नहीं उतरेंगे।

महाराजा अग्रसेन कॉलेज, जगाधरी के प्रिंसिपल पी. के. बाजपेयी ने बताया कि उपन्यास पढ़ना शुरू करते हुए उन्हें कतई उम्मीद नहीं थी कि यह इतना बढ़िया और मजेदार साबित होगा। उपन्यास में लेखक पात्रों के भीतर तक प्रवेश करते हैं। उनकी खीझ, उहापोह, भय, असुरक्षा, तकलीफें सब खुलकर सामने लाते हैं। उपन्यास उत्तराखण्ड त्रासदी को जानने के इच्छुक लोगों के लिए मददगार साबित होगा।

डी. ए. वी. गर्ल्स कॉलेज, यमुनानगर की प्रिंसीपल डॉक्टर सुषमा आर्या ने कहा कि उन्हें ख़ुशी है कि यमुनानगर में श्री शर्मा के रूप में एक ऐसे उपन्यासकार मोजूद हैं, जिन्होंने उतराखंड त्रासदी पर देश का पहला उपन्यास लिखा है। डॉक्टर रमेश शर्मा, प्रसिद्ध पंजाबी साहित्यकार एवं पूर्व प्रिंसिपल मुकुंद लाल नेशनल कॉलेज यमुनानगर, ने ब्रह्म दत्त शर्मा को बधाई देते हुए कहा कि उन्होंने सिर्फ तीन वर्षो में एक महान रचना करके बहुत बड़ा काम कर दिखाया है। इससे अब यमुनानगर में एक उपन्यासकार की कमी पूरी हो गई है।

इस कार्यक्रम की अध्यक्षता सनातन धर्म वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, जगाधरी के प्रधानाचार्य श्री एस.के. गर्ग जी ने की। उन्होंने आए हुए सभी मेहमानों का स्वागत किया। मंच संचालन डा. दीपक गुप्ता ने किया गया। इस अवसर पर श्री पंकज शर्मा, लघु कथाकार अम्बाला, प्रसिद्ध नाटककार डा. संजीव चौधरी, प्रिंसिपल मैडम बिंदु शर्मा, प्रिंसिपल श्री नरेन्द्र अग्रवाल, पूर्व प्रिंसिपल श्री सुरेश पाल, प्रसिद्ध उद्योगपति श्री हरमिंदर सिंह भाटिया, के अलावा साहित्य एवं शिक्षा जगत की यमुनानगर एवं आस-पास की अनेक बड़ी हस्तियाँ उपस्थित थीं।

●

शहीद नरेंद्र दाभोलकर को समर्पित विचार गोष्ठी

❑बूटा सिंह सिरसा

हरियाणा ज्ञान विज्ञान समिति ,सिरसा एवं तर्कशील सोसायटी पंजाब ,कालांवाली द्वारा डाक्टर नरेंद्र दाभोलकर की शहादत को समर्पित विचारगोष्ठी का आयोजन युवक साहित्य सदन में 13 सितम्बर को किया गया। मुख्य वक्ता महाराष्ट्र से प्रकाशित होने वाली 'अंधश्रद्धा निर्मूलन वार्तापत्र' पत्रिका के संपादक राहुल थोराट थे।

राहुल थोरात ने महाराष्ट्र में संस्था के गौरवमयी संघर्ष की गाथा तथा डॉ दाभोलकर के कार्यों पर विस्तृत व्याख्यान दिया । उन्होंने बताया कि महात्मा ज्योतिवा फूले व सावित्री बाई ने वंचित तबकों व महिलाओं को शिक्षित करने से काम शुरू किया। उनको भी समाज के सवर्ण जातियों के लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा था। उनके कार्यों को डा भीम राव अम्बेडकर ने आगे बढ़ाया।

पिछले 25 वर्षों से अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति इस कार्य को कर रही है। डाक्टर नरेंद्र दाभोलकर के नेतृत्व में समिति ने अंध श्रद्धा के विरोध में कानून बनाने के लिए बहुत संघर्ष किये। इस समिति की 300 इकाईयां हैं,जो तहसील स्तर पर अध्यापकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करने के लिए हजारों की संख्या में वर्कशॉपों का आयोजन कर चुकी है। अंधश्रद्धा उन्मूलन वार्ता पत्र नाम का मासिक मैगजीन भी निकालती है। जिसकी हजारों की संख्या में प्रतियां छपती है। यहां कहीं भी धर्म के नाम पर लोगों में अन्धविश्वास फैलाया जाता है या जादू टोना, हस्तरेखा,ज्योतिष,विभूति(राख)से कोई ईलाज करने का दावा किया जाता है, तो समिति उसका जल्दी ही पर्दाफाश करती है।

यह समिति अंधविश्वासों के विरुद्ध कानून बनाने की मांग को लेकर लगातार 20 वर्षों से संघर्ष कर रही थी,उस पर कानून बनवाया। उनको समाज को पीछे ले जाने वाली ताकतों के विरोध का सामना करना पड़ा तथा उन पर कई बार हमले भी किये गये। इन ताकतों ने नरेंद्र दाभोलकर की हत्या कर दी। उनकी मौत के उपरांत लाखों की संख्या में लोग दाभोलकर के समर्थन में उनके गांव की ओर कूच कर गए। तत्कालीन मुख्यमंत्री को भी गांव आना पड़ा। लोगों ने कानून बनाने का इतना दबाव बनाया कि रात को 12 बजे सरकार को अध्यादेश लाना पड़ा और बाद में उसे विधान सभा ने अन्धविश्वास विरोधी कानून के रूप में पास किया।

राहुल थोरात ने बताया कि अब तक इस कानून के अंतर्गत 250 अन्धविश्वास फ़ैलाने वालों पर केस दर्ज करवाये गए जिनमें 200 पाखण्डी बाबाओं को जेल में भी भिजवाया। समिति चाहती है ऐसे कानून पूरे देश में बने ताकि धर्म, श्रद्धा व बाबावाद के नाम पर लोगों का मानसिक शोषण करने वालों पर नकेल कसी जा सके।

इस कार्यक्रम को महाराष्ट्र जाति पंचायतों के विरोध में कार्य करने वाले पेशे से इंजीनियर कृष्णा चांदगुडे ने भी सम्बोधित करते हुए बताया कि वे पिछले 6 दिनों से हरियाणा के विभिन्न क्षेत्रों में गये। उनका विशेष उद्देश्य हरियाणा की खाप पंचायतों पर शोधकार्य करना था। उन्होंने जींद जिले में 65 गांवों की खाप पंचायत को भी देखा व खाप प्रतिनिधियों से बातचीत भी की। वे हरियाणा की खाप पंचायतों की प्रकृति व उनके द्वारा सुनाये गए फैसले तथा पीड़ित लोगों पर पड़े प्रभावों को जानने के लिए आये हैं। पिछले तीन वर्षों से लगातार महाराष्ट्र में घटित जाति पंचायतों द्वारा सुनाये गए अन्यायपूर्ण फैसलों का लगातार अध्ययन कर रहे हैं। अब इसी सरकार से जाति पंचायत विरोधी कानून भी पास करवाया गया है।

कार्यक्रम को हरियाणा तर्कशील सोसायटी के राजाराम हंडयाया ने सम्बोधित किया। परमानन्द शास्त्री ने मुख्य वक्ता व 'अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति' के कार्यों के बारे में बताया। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री हरदयाल बेरी, रमेश कुमारी व जगदीश सिंघपुरा ने संयुक्त रूप से की व मंच का संचालन गुरबख्श मोंगा ने किया।

●

बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मृति समारोह

❑सत्यवीर नाहड़िया

हिंदी पत्रकारिता के मसीहा तथा हिंदी गद्य के जनक कहे जाने वाले बाबू बालमुकुंद गुप्त के बहुआयामी योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। समाज एवं राष्ट्र हेतु समर्पित उनकी निर्भीक एवं निष्पक्ष पत्रकारिता आज भी प्रासंगिक है। उनके योगदान को चिरस्थायी एवं प्रेरणापुंज बनाने के लिए प्रदेश के स्वर्ण जयंती अभियान में हरियाणा ग्रंथ अकादमी उनकी जन्मस्थली ग्राम गुड़ियानी को गोद लेगी तथा यहां स्थित उनकी पैतृक हवेली में पुस्तकालय, संग्रहालय तथा सामुदायिक रेडियो स्टेशन स्थापित करने के प्रस्ताव प्रदेश सरकार को भेजे जायेंगे। ये विचार हरियाणा ग्रंथ अकादमी के उपाध्यक्ष प्रो. वीरेन्द्र सिंह चौहान ने ग्राम गुड़ियानी में व्यक्त किये। वे यहां गुप्तजी की 110वीं पुण्यतिथि पर हरियाणा साहित्य अकादमी के सौजन्य से बाबू बालमुकुंद गुप्त पत्रकारिता एवं साहित्य संरक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में आयोजित स्मृति समारोह में बतौर मुख्य अतिथि बोल रहे थे। कोलकाता से पधारे गुप्तजी के प्रपौत्र विमल गुप्त के विशिष्ट आतिथ्य में आयोजित इस समारोह की अध्यक्षता हरियाणा स्वतंत्रता सेनानी सम्मान समिति के पूर्व अध्यक्ष हरिराम आर्य ने की।

इस अवसर पर प्रो. चौहान ने गुप्तजी के कुशल संपादन, सतर्क समीक्षाकर्म, ओजस्वी व्यक्तित्व, राष्ट्रवादी लेखन, चुटीले व्यंग्य लेखन तथा अनुवाद पक्ष पर शोध कार्य एवं इन पक्षों को विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रमों में शामिल किये जाने की पैरवी की। अध्यक्षीय संबोधन में श्री आर्य ने गुप्तजी को राष्ट्रीयता के अग्रदूत बताते हुये उनके क्रांतिकारी लेखकीय जीवन में राष्ट्रवादी चिंतन के प्रेरक प्रसंग सुनाये। परिषद् के संरक्षक नरेश चौहान एडवोकेट के संचालन में आयोजित इस समारोह में साहित्यकार सत्यवीर नाहड़िया की नव प्रकाशित हरियाणवी दोहा सतसई 'बख़त-बख़त की बात' तथा दोहाकार रघुविन्द्र यादव के संपादन में प्रकाशित शोध एवं साहित्य की अर्धवार्षिक पत्रिका 'बाबूजी का भारतमित्र' का लोकार्पण किया गया। अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के प्रांतीय कार्यकारी अध्यक्ष प्रो. रमेशचन्द्र शर्मा तथा आकाशवाणी अनुबंधित लोक गायक महाशय भीमसिंह को परिषद् की ओर से इस वर्ष के बाबू बालमुकुंद सम्मान प्रदान किये गये। रचनाकारों एवं विचारकों ने गुप्तजी का भावपूर्ण स्मरण किया जिनमें हिंदी गजलकार विपिन सुनेजा, हलचल हरियाणवी, रमेश चन्द्र शर्मा, महाशय भीमसिंह, राजेन्द्र निगम राज, महाशय मंगतराम, डॉ. लाज कौशल, डॉ. उमाशंकर यादव, प्रो. अनिरूद्ध यादव, श्रीनिवास शास्त्री उल्लेखनीय हैं। *सम्पर्क : 94167-11141*

●

आंखिन देखी

सुरेन्द्र पाल सिंह

एक सांड और गधे की मौत

बचपन में हमारे घर के बगल में एक रेलवे लाइन पर फाटक था जिसके पास एक जोहड़ था। शहर भर की गायें दिन भर उस जोहड़ पर कुछ पालियों के द्वारा आराम करने के लिए लायी जाती थी और स्वभाविक है कि उन गायों के झुण्ड में एक सांड भी होता था। एक बार ना जाने कहां से एक दूसरा सांड भी वहां पहुंच गया। स्वभाववश दोनों सांडों में वर्चस्व का महाभारत शुरू हो गया और स्थिति यहां तक पहुंच गई कि उस खूनी लड़ाई में एक सांड बुरी तरह लहू -लुहान था और दूसरा पूरी तरह धराशायी। फिर एक सिलसिला शुरू हुआ कुछ संभ्रांत दिखने वाली महिलाओं के आने, विलाप करने और पूरे कर्मकांड के साथ उस मृत सांड के अंतिम संस्कार का। जिसके लिये एक गहरा गड्ढा खोदा गया और कई बोरी नमक का उपयोग किया गया।

अब थोड़े दिनों के बाद, वहीं नजदीक की रेलवे लाइन से एक महिला के एकल विलाप की आवाज आ रही थी। उत्सुक्तावश वहां जाकर देखा तो पाया कि एक खानाबदोश महिला का गधा रेल के नीचे कट कर मर गया था। वो गधा उस महिला और उसके परिवार की रोजी रोटी का मुख्य साधन था। महिला रो पीट रही थी और इस काम में नितांत अकेली थी। वहां न कोई कर्मकांड था और न ही कोई रोने में साथ देने वाला।

सम्पर्क : 9872890401

●

जीना इसी का नाम है

❑गीता पाल

जैसे ही मैंने क्लास में कदम रखा और पूछा, मॉनीटर कौन है? लड़कों की तरफ से आवाज आई - जी चन्दा। बहुत ही साधारण, पतली, छोटा कद, सांवली, एकदम मरियल लड़की मेरे सामने खड़ी थी। चंदा 11वीं कक्षा में पढ़ रही थी, लेकिन देखने में किसी भी सूरत में 8वीं कक्षा से ज्यादा नहीं लगती थी। चाक मांगा तो चन्दा ही भागकर ले आई। हाजिरी रजिस्टर लाने की भी उसी की जिम्मेवारी थी। कापी में काम अगर पूरा था तो चन्दा का ही। टेस्ट लिया तो क्लास में चन्दा के ही सबसे ज्यादा नंबर थे। अक्सर लड़के-लड़कियां स्कूल का काम चन्दा की कापी लेकर ही पूरा करते। लड़के लोग बड़ी सहजता से चन्दा के साथ हंसी मजाक भी कर लेते थे, क्योंकि चन्दा बड़े घर की बेटी नहीं थी।

मुझे चन्दा के बारे में जानने की जिज्ञासा हुई। चन्दा के पिता यू.पी. के गांव मीरपुर जिला आजमगढ़ के रहने वाले हैं, लेकिन चन्दा का जन्म चंडीगढ़ की एक बस्ती मौली जागरान, चरन सिंह कालोनी में हुआ था। कहने को यह बस्ती चंडीगढ़ में है, लेकिन कीचड़ भरी गलियां एक-एक या दो कमरों के मकान, न सीवरेज, न पानी का पूरा इन्तजाम। यहां रहने वाले ज्यादातर मजदूरी या छोटा-मोटा धंधा करते हैं। ज्यादातर लोग यू.पी. या बिहार से कमाने के लिए आए हैं, जिसमें कबाड़, पान वाला, तम्बाकू वाला, तांत्रिक, चायवाला, गोल गप्पे की रेहड़ी वाला, चूड़ियां बेचने वाला, बिन्दी लिपस्टिक वाला आदि लोगों की भीड़ है। ज्यादातर औरतें अपनी छोटी-छोटी लड़कियों के साथ सुबह ही घरों में काम करने के लिए निकल पड़ती हैं।

चन्दा के पिता मजदूरी (सफेदी करने का काम) करते थे तथा मां पड़ोस के एक प्राईवेट स्कूल में झाड़ू लगाने का काम। तीनों बहन-भाई इसी स्कूल में पढ़ने लगे, क्योंकि हैडमास्टर ने बच्चों की फीस माफ कर दी थी। हैडमास्टर की बदली होते ही स्कूल में नई आया को रख लिया गया, जिसका नतीजा ये हुआ कि बच्चों को सरकारी स्कूल में डालना पड़ा। लगातार धूल भरे माहौल में काम करने के कारण पिता को दमे की शिकायत होने लगी। काम करने की मजबूरी व नजदीक अस्पताल न होने के कारण बीमारी बढ़ती गई। कुछ दिनों बाद वे टी.बी. की बीमारी का शिकार हो गए। कभी दम घुटता, कभी बुखार तो कभी खांसी फिर भी वे काम पर जाते रहे। इलाज की सुविधा न होने के कारण बीमारी और बढ़ती गई।

चन्दा करीब छह साल की रही होगी कि पिता की मृत्यु हो गई। इस घटना की उसे धुंधली सी याद है। ये बताते-बताते वह मुझसे लिपट कर रोने लगी। ये कहते हुए कि उस समय मुझे मौत के बारे में कुछ भी पता नहीं था और मैं छोटे बच्चों के बीच में बेपरवाह खेलती रही। परिवार का सारा भार अब मां के ऊपर थ। मां ने अब चाय-अण्डे की रेहड़ी लगानी शुरू की। मां चाय बनाती और चन्दा अण्डे बेचती। कोई उसे घूरता, कोई डांटता, कोई मजाक करता तो कोई ताना मारता, मगर चन्दा ने इसकी कोई परवाह नहीं की। मां का उसे बड़ा सहारा था। दिन में स्कूल जाती, शाम को मां का हाथ बंटाती, घर का काम निपटा रात को पढ़ाई करती। चन्दा ने ठान लिया था कि परिस्थितियां चाहे जैसी हों, वह पढ़ाई नहीं छोड़ेगी और एक दिन अपने पांव पर खड़ी होकर अपने परिवार को भी संभालेगी।

तीन-चार साल तक यह सिलसिला जारी रहा। इसी दौरान एक घटना और घटी। एक आदमी जो मां की रेहड़ी के नजदीक बाल काटने का काम करता था। उसने मां से नजदीकियां बढ़ा ली और एक दिन मां के सामने शादी का प्रस्ताव रख दिया। मां को भी लगा कि परिवार संभल जाएगा। दोनों की सहमति से शादी हो गई। दो-तीन साल ठीक से गुजरे। दूसरी शादी से चन्दा की मां ने तीन और बेटियों को जन्म दिया। पति की इच्छा थी कि लड़का पैदा हो जाए। अत: चौथी सन्तान लड़का पैदा हुआ।

चन्दा की मुसीबतें अब बढ़ गई हैं। हर साल बच्चा पैदा होने के कारण मां भी अब बीमार रहने लगी। खून की कमी हो गई, बार-बार बुखार आना व घुटनों में दर्द रहने लगा। मां का चाय बनाने का काम अब छूट गया। पिता की कमाई से सात बच्चों का गुजारा नहीं चल पाता।

चन्दा ने स्कूल टाईम के बाद घरों में सफाई का काम करना शुरू कर दिया है। अपनी बहन को भी वह साथ ले जाने लगी। पढ़ाई किसी भी कीमत पर वह छोड़ना नहीं चाहती। 10वीं कक्षा तक चन्दा के घर में बिजली नहीं थी। लालटेन या मोमबती लगाकर ही पढ़ाई की। चन्दा सहेली के घर जाकर लाईट में पढ़ती और बहुत बार स्ट्रीट लाईट में भी।

चन्दा ने 10 जमा 2 की पढ़ाई सेक्टर-6 पंचकूला के सरकारी स्कूल से कक्षा में प्रथम रहकर की । चंदा ने अपनी बी.ए. की पढ़ाई पंचकूला के राजकीय महिला महाविद्यालय से की। कालेज में वह विभिन्न तरह की लड़कियों के सम्पर्क में आई। अब सफाई का काम छोड़ दिया और वह पंचकूला के एक काल सेंटर में पार्ट टाईम काम करने लगी। हालांकि उसे काम के घंटे ज्यादा और पैसा बहुत कम मिलता है। लेकिन फिर भी उसे यही काम

अच्छा लगता है। यहां के माहौल में के व्यक्तित्व का विकास भी हुआ है।

आज चन्दा राजकीय महाविद्यालय सैक्टर एक पंचकूला में एम.ए. अर्थशास्त्र की फाइनल ईयर की छात्रा है और जिन्दगी की जद्दोजहद में जीती चली जा रही है। उसने काल सैंटर की नौकरी छोड़ दी है और एक ब्यूटी पार्लर में पार्टटाइम काम करती है।

नए पिता ने शराब पीना शुरू कर दिया। हर रोज घर में झगड़ा व गाली-गलौच आम बात हो गई है। छः बहन-भाइयों की देखभाल, बीमार मां की जिम्मेदारी भी उस पर आन पड़ी है।

11वीं कक्षा से चन्दा मेरे सम्पर्क में है। अच्छा बुरा मुझसे सांझा कर लेती है। किताबों आदि की सहायता अध्यापक लगातार करते रहे हैं। दाखिले के समय कभी-कभी उसकी मदद मैं भी कर देती हूं पर ज्यादा कुछ नहीं। कितना भी आर्थिक अभाव रहा, लेकिन उसने मुझसे पैसा कभी नहीं मांगा-कितनी स्वाभिमानी है यह लड़की! इससे मेरी नजरों में चन्दा का कद और भी बढ़ जाता है।

चन्दा ने विषम से विषम परिस्थितियों में भी जीना सीख लिया है। चन्दा शादी करना नहीं चाहती। बस एक ही जीने का मकसद है उसे अपने पांवों पर खड़ा होना है। बहन भाईयों को भी इस लायक बनाना है कि वे भी अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें और अपने पांव पर खड़े होकर स्वाभिमान की जिन्दगी जी सके। दोस्तो जीना इसी का नाम है। *सम्पर्क : 94682-55731*

लघु कथा **विजयदान देथा**

बनिए का चाकर

कोल्हू का बैल और बनिए का चाकर हर वक्त फिरते हुए ही शोभा देते हैं।

किसी एक सुहानी वर्षा की बात है कि बादलों की मधुर-मधुर गरज के साथ झमाझम पानी बरस रहा था। चौक वाली बरसाली में सेठ जी के पास ही उनका नौकर मौजूद था। पानी बिना रुके बह रहा है और यह ठूंठ की तरह खड़ा है, कैसे बर्दाश्त होता!

चौक में पत्थर की पनसेरी पड़ी थी। सेठ जी इसी चिंता में खोए थे कि नौकर को क्या काम बताया जाए। यह तो मालिक की तरह ही आराम कर रहा है! पनसेरी पर नजर पड़ते ही तत्काल उपाय सूझा, चाकर की तरफ मुंह करके हुक्म सुनाया, खड़ा-खड़ा देख क्या रहा है, यह पनसेरी अन्दर ले आ, बेचारी पानी में भीग रही है।

कहानी पाठ जनवादी लेखक संघ,दिल्ली

❑रानी कुमारी

17 सितम्बर 2016 को दिल्ली के बी.टी.आर. भवन में (जनवादी लेखक संघ) द्वारा आयोजित कहानी पाठ सम्पन्न हुआ। कहानी-पाठ और परिचर्चा कार्यक्रम में वरिष्ठ लेखक विवेकानंद ने अपनी कहानी 'शरीफ़ लोग' और कहानीकार टेकचंद ने अपनी कहानी 'मोलकी' का वाचन किया। टेकचंद की कहानी 'मोलकी', 'देस हरियाणा' पत्रिका में हाल ही में छपी है।

लेखक महेश दर्पण ने अपने वक्तव्य में कहा कि विवेकानंद पुराने कहानीकार हैं। टेकंचद की कहानी में दलित जीवन और दिल्ली-देहात के दृश्य नज़र आते हैं। कहानी में गज़ब का वर्णन मिलता है। मुहावरे और आंचलिकता का समावेश है। मोलकी कहानी में स्त्री एक वस्तु के रूप में बदल जाती है। यह परेशान करने वाला मंजर है। पहली बार किसी कहनी में एक स्त्री, विधवा होने के बाद सुखी नजर आती है। यह कहानी व्यवस्था की कलई खोलकर रख देती है। कहानी अपनी व्याख्या खुद कर रही है।

कहानीकार और आलोचक रजनी दिसोदिया ने अपने वक्तव्य में कहा कि वरिष्ठ कहानीकार विवेकानंद की कहानी 'शरीफ लोग' व्यंग्य प्रधान कहानी है। कहानी में कथावाचक कुछ नहीं कर पाता है। इस कहानी में विभिन्न मुद्दे नज़र आते हैं। जैसे जातियों में बंटा सर्वहारा वर्ग, श्रमिकों का विभाजन, आशा, उम्मीद और कुछ होने का आभास आदि। यह कहानी मध्यम वर्ग पर भी तीखा व्यंग्य करती है। टेकचंद की 'मोलकी' कहानी में नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि मोलकी चीज का कोई अधिकार नहीं होता। चाहे वह स्त्री ही क्यों न हो। समाज में इस समस्या का विस्तार होता जा रहा है। 'मोलकी' कहानी गहराई में उतरती कहानी है। उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में स्त्रियों का घटता अनुपात एक बड़ी समस्या है, जिससे सिस्टम को बर्बाद करने की कोशिश की जा रही है। आज भी 'मोलकी' की समस्या की तरफ ध्यान नहीं है। बड़े सहज रूप से स्वीकार की गई स्थिति है यह।

कवि और आलोचक बली सिंह ने अपने वक्तव्य में कहा कि टेकचंद की कहानी 'मोलकी' से यह पता चलता है कि स्त्री आज भी अपनी पहचान नहीं बना पाई है। मोलकी सिर्फ काम का साधन है। 'मोलकी' कहानी नए परिवेश और नए संदर्भ को लेकर आती है। विरोध की सामूहिक चेतना का स्वर इस कहानी में मिलता है। सामाजिक कार्यकर्त्ता प्रहलाद ने अपनी बात रखते हुए कहा कि 'मोलकी' कहानी में दृश्यात्मकता का गुण है। यह बड़े परिवेश की कहानी है।

आलोचक बजरंग बिहारी तिवारी ने अपने वक्तव्य में कहा कि 'मोलकी' कहानी में कहानीकार द्वारा गहराई से देखा हुआ यथार्थ है। इस कहानी में नए तरह का उत्पीड़न दिखाई देता है। 'मोलकी' कहानी में आक्रोश नहीं दिखता, बल्कि करूणा पैदा करती है।

आलोचक संजीव ने अपने वक्तव्य में कहा कि कहानीकार टेकचंद की 'मोलकी' कहानी का साठ प्रतिशत हिस्सा क्लासिक है। बाद की कहानी समाज शास्त्रीय कहानी हो जाती है। कहानी में यथार्थ आ जाता है। आलोचक संजीव ने कहा कि कहानी का पहला हिस्सा ही श्रेष्ठ है। जहां तक मुझे लगता है कि एक स्त्री तो हमेशा मोलकी ही है। उसकी कोई अस्मिता नहीं होती। आयोजित इस कार्यक्रम में दिल्ली विश्वविद्यालय जेएनयू और जामिया विश्वविद्यालय के शिक्षकों और शोधार्थियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। मंच संचालन प्रेम तिवारी ने किया और अध्यक्षता आलोचक संजीव ने की।

सम्पर्क-08447695277

मेरा सादा गाम

म्हारी बुग्गी गाड्डी के पहिये लोहे के सैं
जमां चपटे बिना हवा के
जूए कै सेतीं जुड़ रहे सैं
मण हामी इसे म्हं बैठ
उरै ताईं पहोंच लिए

रेज्जै का पहरा करे सै म्हारै कुरता
अर बां उपराण सांम्हीं राख्या करां,
थोड़ी-थोड़ी हांण म्हं समाहीं जाया करां
इस झोटा बुग्गी तै रेत भोत उड़े सै

अर फेर ये म्हारी ढाळ के फिड्डे लीतर सैं
बस इननैं पायां मैं ऊळझाकीं हाम चाल्या करां,
इसकै आगे टांकी लाग रही सैं अर पाछे तैं
फिड्डी कर राखी सैं।

मण ईब तो गर्मियां के दिन सैं
पायां म्हं कीम कोनी, तो भी कोई बात कोनी
घणी बार तो हामीं ऊघाणे पाईं हांडी जाया करां सां
जद पाट रहे जूते समरणे दे राखे हों।

सारी हाण थावर नैं शहर जाया करूं सूं
अर ओड़े वा भी अपणई काक्कै सेतीं आया करै,
शहर म्हं हामीं बुग्गी की छायां मैं बैठ जाया करां
हामी दोनों अर मेरा बुग्गी आळा झोटा।

इस पुरानी बुग्गी म्हं बैठकीं घरीं उलट आलिए
राह म्हं सड़क के घण्खरे लट्टू फूटग्ये
अर मेरी बुग्गी कै कोये भोंपू भी कोनी

घरीं ऊलटे आये पाछै
थोड़ी हाण पादरा होये पाछे
फेर ऊंट सेतीं खेत मैं जाणा सै
ऊंट भी मड़ी बार हरे म्हं मुंह मार आवैगा।

खेत म्हं थोड़ी हाण हाळ बाऊंगा
थोड़ा जोटा मार कीं टीक्कड़ पाडूंगा
फेर बणी तैं पाणी ल्याऊंगा
ऊंट नैं प्याऊंगा
अर जोहड़ी म्हं गोता मारूंगा
गाम म्ह रहण का योऐ तरीका सै

उरे कोए भी अमीर कोनी
कोये भाजा-दौड़ी कोनी
हामीं धरती के मजे ले-ले कीं चाल्या करां सां।

सांझ नैं मूंज की खरोड़ी खाट पै
हुक्का पींदीं हाण
श्यामीं दिखै सै पूंछ मारदी,
अर जुगाळी करदी मैस,
ठाण म्हं लोट मारदा ऊंट,
अर पछण्डे मारदा बाछड़ा
इसतैं बढ़ीया किमें नजारा कोनी
सैं-सैं करदी काळी रात नैं।

कदे-कदे शहर के लोगां पर दया आवै सै
जिननै कदे गोबर तैं लिबड़े ठाण म्हं
बाल्टी भर दूध कोनी काढ्या
वे तो ठाणकै धोरै कै भी कोनी लिकड़ सकैं
फेर नीकडू दूध किसा

चांदणी रात म्हं हाळ का जोतणा
ठाले बखतां म्हं मूँज कूटणा,
बाण बाटणा,
बटेऊ कुहाण का मज़ाए न्यारा सै गामा म्हं

मैं किते और नीं रहणा चाहंदा
अगले जन्म मैं राम मनै योए गाम दिए

इसे गाम पाणे इब बहोत मुसकल सैं।
सारे शहर ऐ शहर होगे
मनै तो बस मेरा गाम ऐ फेर अर फेर चाहिये सै।
फेर अर फेर चाहिये सै ।
फेर अर फेर चाहिये सै।

गांव की छोरियां

गोबर चुगणे नै
गांव की छोरियां
खेल समझैं तो बड़ी बात कोनी

ऊपर ताईं गोबर भरा तांसळा
खेल-खेल म्हं भर लिया
काम का काम भी होग्या
अर खेल का खेल भी

यो सैं म्हारे गामां के खेल
अर गामां की छोरियां के कमाऊ काम

ओबरा

जद ताती-ताती लू चालैं
नासां तैं चाली नकसीर
ओबरे म्हं जा शरण लेंदे
सिरहानै धरा कोरा घड़ा
ल्हासी-राबड़ी पी कीं
काळजे म्हं पड़दी ठंड

एक कानीं बुखारी म्हं बाळू रेत मिले चणे
अर दूसरे कानीं, गुड़ भरी ताकी
गुड़ नैं जी ललचाया करदा
अर दादी धोरै रहा करदी ताकी की चाबी
सारी दुपहरी ओबरे म्हं काट्या करदे
स्कूल का काम भी करा करदे ओड़ै
फेर सोंदे खरड़-खरड़

ओबरे की मोटी कांध
लिप्या-पोत्या फर्श
कांधां छपे मोर-मोरनी
छातां पड़ी कड़ी शहतीर
तपदी गर्मी चाल्या करदी लू

रोटियां का छींक्का भर्या
ल्हासी भरी बिलौणी
चण्यां की चटणी
ना कोए पंखा ना बीजळी का खर्चा
ऊकडू बैठ खांदे रोटी

मण आजकाल की बात न्यारी
ओबरा ढाह कीं बणाया घर
सबके कमरे न्यारे-न्यारे

बिजळी जावै घड़ी-घड़ी
पसीनां के पत्ल्हाणे छूट रहे
जक पड़ी पेडै ना मादी सी
ओबरा तूं याद आया घड़ी-घड़ी

ओबरा ढाह क गरम होया घर
गरम हुई सारयां की तासीर
ग्लोबल वार्मींग के झमेले म्हं
उळझे सारे गरीब-अमीर
पुराणी सोच पुराणी बात
घूम-फिर के फेर आणी
वास्तुकला का बहाना बण कै
ओबरे नैं दिन आवेंगे फेर

डाब के खेत

डाब कै म्हारे खेतां म्हं
मूंग, मोठ लहरावे सै
काचर, सिरटे और मतीरे
धापली कै मन भावै सै
रै देखो टिब्बे तळै क्यूकर झूमी बाजरी रै।

बरसे सामण अर भादों
मुल्की बालू रेत रै,
बणठण चाली तीज मनावण
टिब्बे भाजी लाल तीज रै
रै देखो पींग चढ़ावै बिंदणी रै।

होळी आई धूम मचान्दी
गूंजें फाग धमाल रै,
भे-भे कीं मारे कोरड़े
देवर करे बेहाल रै,
रै देखो होळी म्हं नाचरी क्यूकर गोरी बेल्हाज रै।

जोहड़ी में बोलै तोते
बागां बोलै मोर रै,
पनघट चाली बिंदणी
कर सोळां सिंगार रै,
रै देखो पणघट पर बाज रही है रमझोल रै।

खावंद कै आवण की बेल्या
चिड़ी नहावै रेत रै,
आज बटेऊ आवैगा
संदेश देवै काग रै
रै देखो डोळी पै बोल रह्या कागला रै
डाब कै म्हारे खेत म्हं
मूंग, मोठ लहरावे रै..

टूम ठेकरी

जी करै सै आज
दादी की तिजोरी मैं तै
काढ़ ल्याऊं
सिर की सार,धूमर अर डांडे
नाक की नाथ, पोलरा
कान की बुजली, कोकरू अर डांडीये
गळे की-नौलड़ी,गळसरी, गंठी, जोई,
झालरा, हंसली, तबीज अर पतरी,
हाथ के कड़ूले,छन पछेली, टड्डे अर हथफूल
कमर का नाड़ा अर तागड़ी,
पैरां की झांझण, कड़ी, छळकड़े, गीटीयां
आले,पाती, नेवरी अर रमझोल
अर पहर ओढ़ कै नाचूं
आज सांझ नै साथण की बारात म्हं

Email-vipinchoudhary7@gmail.com

कौआ और चिड़िया

एक चिड़िया थी अर एक था कौआ। वै दोनों प्यार प्रेम तै रह्या करै थे। एक दिन कौआ चिड़िया तै कहण लाग्या अक् चिड़िया हम दोनों दाणे-दाणे खात्तर जंगलां म्हं फिरैं, जै हम दोनों सीर मैं खेती कर ल्यां तो आच्छा रैगा। चिड़िया भी इस बात पै राजी होग्यी। आगले दिन चिड़िया कौआ तै कहण लाग्यी अक् कोए भाई चाल हाम आज खेत नै साफ करल्यां। कौआ कहण लाग्या-

चल-चल चिड़िया मैं आता हूं, चिलम तमाखू पीता हूं।
गुड़ और रोटी खाता हूं, तेरे लिए भी ल्याता हूं।

चिड़िया बेचारी सीधी-भोळी थी। वा अकेली ए जाकै खेत नै साफ कर कै आग्यी। कौआ खेत मै नी गया। वा तो बड़े आराम तै चिलम पीता रह्या। आगलै दिन फेर चिड़िया कौआ तै कहण लाग्यी अक् कौए भाई मैं खेत तो साफ कर्याई, अब हळ चलाणा सै। चाल खेत म्हं। कौआ फेर कहण लाग्या-

चल-चल चिड़िया मैं आता हूं, चिलम तमाखू पीता हूं,
गुड़ और रोटी खाता हूं, तेरे लिए भी ल्याता हूं।

कौआ तै कहकै खेत में गयाए नी। चिड़िया बेचारी अकेली ए हळ बाह आई। वा थक्यी होई थी बेचारी आकै सोग्यी।

आगले दिन फेर चिड़िया कौआ तै बोण खात्तर कहण लाग्यी। कौआ फेर बहाना बणाकै कहण लाग्या अक् आज मन्नै काम है तौं जा उसतैं कहण लाग्या-

चल-चल चिड़िया मैं आता हूं, चिलम तमाखू पीता हूं,
गुड़ और रोटी खाता हूं, बची-खुच्ची तेरे लिए भी ल्याता हूं।

कौआ इसी तरियां फेर नीं गया। चिड़िया नै अकेली नै ए बीज बोया अर आकै सोग्यी। सवेरे फेर कौआ लवै गई। कौआ फेर बहाना बणाकै कहण लाग्या अक् चिड़िया बहण तौं चल मैं अभी आता हूं। इस तरियां चिड़िया नै पाणी भी दे दिया और उसकी देखभाळ भी अकेली ए नै कर्यी। जब अनाज पाकग्या चिड़िया कौआ लवै फेर गयी अर उसतै कहण लागी अक् कोवे भाई ईब तो अनाज पाकग्या है। आज्या चालकै काट ल्यां। कौआ बड़ा चालाक था। वा बहाना बणा कै फेर घराएं रह लिया। जब चिड़िया नै अनाज काट कै बरसा भी लिया तो चिड़िया फेर उसके लवै गयी। वा कहण लाग्यी अक् कोवे भाई आज्या चाल कै अनाज बांड ल्यां। कौआ उसे टेम त्यार हो लिया-

चल-चल चिड़िया मैं आता हूं, चिलम तमाखू पीता हूं,
तेरे लिए भी कुछ ल्याता हूं।

कौआ तो चिड़िया तै भी पहलांए आ लिया। कौआ नै अनाज तो आप ले लिया अर बुलबुला चिड़िया तै दे दिया। चिड़िया बेचारी कुछ भी न बोली। उसे टेम ओळे पड़ण लाग गे। चिड़िया तो भाज कै बुलबुले मैं बड़ग्यी। अर कौआ अनाज पै ए मरग्या।

हरियाणा का लोक साहित्य : पचास साल

❑राजेन्द्र बड़गूजर

हरियाणा का लोक साहित्य एवं सांग परम्परा इस मायने में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं कि यह मनोरंजन एवं सामाजिक जीवन की उठा-पटक एवं संघर्ष का दिग्दर्शन कराते हैं, वहीं यह विमर्श के भी नए आयाम खोलते हैं।

हरियाणवी लोकसाहित्य में ऐसे अनेक लोक कवि हैं जो हरियाणा के पुनर्गठन यानी नवम्बर 1966 से पहले बहुत पहले काल के ग्रास में समा गए, परन्तु उनकी पुस्तकों का संपादन 2015-16 में हो रहा है। 1966 के बाद धुरंधर लोक कवि हैं जिनकी रागणियों को बड़े शौक से गाया जाता है।

हरियाणा के लोक साहित्य के क्षेत्र में लखमीचंद को हरियाणा का सूर्यकवि के रूप में स्थापित करने की कोशिश की गई। उनके समकालीन लोक-कवि मुंशीराम जांडली ने हरियाणा के जनजीवन का जैसा चित्र मुंशीराम जांडली ने खींचा हैं, वैसा कोई नहीं खींच पाया। वर्ण-जाति का खंडन, किसान मजदूर की व्यथा, आज़ादी का जश्न, गांधी, सुभाष बोस और भगत सिंह की शहादत और विशेष रूप से 1947 के भारत-पाक बंटवारे को लेकर हिन्दू-मुसलमान पलायन के हृदय-विदारक दृश्य इनकी रागनियों के विषय बने हैं।

सोनीपत के सुसाणा में जन्मे मांगेराम कई मायनों में एक बेहतरीन सांगी स्थापित होते हैं। उन्होंने कई भावनात्मक सांगों की रचना की। वे कथा में भावुक दृश्यों के लिए प्रसिद्ध थे। उनके शिष्य जयनारायण सांगी और बाद में श्यौनाथ त्यागी और मो. शरीफ ने उनकी परम्परा को जिंदा रखा। 'पिंगला भरतरी', 'जयमल फत्ता', 'गोपीचंद', 'शकुंतला-दुष्यंत', 'कृष्ण-सुदामा', 'अजीतसिंह-राजबाला', 'वीर हकीकत राय', 'रूप-बसंत' आदि इनके ख्याति प्राप्त सांग है। 'पिंगला-भरतरी' की रागणी जब विक्रम अपने भाई को भाभी की शिकायत लगाता है तो लोगों को रोने पर विवश कर देती हैं- 'भाई रै मेरे लाड़ करणिया मरगे।' रागणी की चारों कली एक बालक का रूदन प्रस्तुत करती है।

हरियाणा के निर्माण के बाद यदि किसी कवि को हरियाणा का प्रतिनिधि लोककवि कहा जाए तो वे हैं महाशय दयाचंद मायना। महाशय दयाचंद मायना का जीवनकाल 1915 से 1993 तक का रहा। वे लगभग छह साल फौज में भी रहे। उनके किस्सों और फुटकल रागनियों में जाति-पांति, किसान-मजदूर का यथार्थ, दलित दमित वर्गों की आवाज़, स्त्री का स्वाभिमान, अंतर्जातीय विवाह, युद्धों में हरियाणा की भूमिका, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और बनता-बिगड़ता हरियाणा का सच्चा खाका खींचा। उनकी कई रागनियां तो क्लासिकल लोकगीतों के रूप में गाई जाती हैं। उनके 21 किस्सों में से 'पूर्णिमा-प्रकाश', 'नीलम-पुखराज', 'नेताजी सुभाषचंद्र बोस', 'ब्रिगेडियर होशियार सिंह', 'मायावती-मास्टर', 'वीर हकीकत राय', 'कवि कालिदास', 'सरवर नीर', 'राजा कारक सावलदे', 'अंजना-पवन', 'देवर भाभी' आदि अत्यधिक सुप्रसिद्ध हुए। वे को सचेत करते हैं-

माड़ी कार बुरी करणी आंख्यां की स्याहमी आ ज्यागी।

ये गरीब सताए ज्यांगे तै, फेर गुलामी आ ज्यागी।

सांगी धनपत सिंह निंदाणा हरियाणा के एक अत्यधिक लोकप्रिय सांगी हुए और सन 1979 तक सांग और लोकसंगीत का झंडा बुलंद रखा। 'लीलो-चमन' सांग उनका प्रतिनिधि सांग है। उनके काच्चे श्याम और ठहरो श्याम दो सुप्रसिद्ध शिष्य हुए। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'रूप बंसत', 'अमरसिंह राठौर', 'हीर रांझा', 'गोपीचंद', 'हीरामल जमाल', 'जानी चोर' आदि अनेक सुप्रसिद्ध सांगों की रचना भी की। धनपत के गुरु का नाम जमुआ मीर था और धनपत सिंह निंदाणा के गुरुभाई देसराज के शिष्य देईचंद ने भी कई बेहतरीन सांगों का सृजन किया। उनका 'राजा हरिश्चंद्र', 'गजना-शाही मनियारा', 'नौटंकी', 'सत्यवती', 'हीर रांझा', 'विषकन्या', 'चंदना', 'चम्पकलता रणधीर', 'ऊखाँ' 'चंद्रकला', 'मदनपाल-चद्रंप्रभा', 'चापसिंह-सोमवती' आदि सांग विशेष उल्लेखनीय हैं। रागनी के माध्यम से परिस्थिति का यथार्थ चित्रण करने में सिद्धहस्त देईचंद मौलिक प्रतिभा के धनी थे।

मास्टर नेकीराम ने भी हरियाणा की सांग और लोक साहित्य परम्परा को पर्याप्त समृद्ध किया। रेवाड़ी में जन्मे मा. नेकीराम ने पंद्रह के आसपास सांगों का सृजन किया। और 10 जून 1996 में उनका देहान्त हो गया। 'कीचक वध', 'अमरसिंह राठौर', 'राजा रिसाल', 'चापसिंह-सोमवती', 'भगत पूर्णमल', 'राजा भोज भालवती', 'हीर रांझा', 'सरवर-नीर' आदि सांगों की रचना की। ये रिवाड़ी और राजस्थान के इलाकों में खासे प्रसिद्ध थे।

दयाचंद मायना की शिष्य परम्परा में दो लोककवि उल्लेखनीय हुए - महाशय छज्जूलाल सिलाना और महाशय गुणपाल कासंडा। महाशय छज्जूलाल ने डॉ. अम्बेडकर पर किस्सा रचा जो अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। उन्होंने 9 किस्से और अनेक फुटकल रागणियों की रचना की। 'वेदवती-रतनसिंह', 'धर्मपाल-शांति', 'राजा हरिश्चंद्र', 'नौटंकी', 'शहीद भूपसिंह', 'सरवर-नीर', 'सर्वजीत-विद्यावती' आदि इनके अन्य किस्से हैं। इन्होंने शिक्षा पर जोर देते हुए भ्रष्टाचार, कन्या भ्रूण हत्या, नशा, महंगाई आदि आधुनिक समस्याओं पर अनेक मौलिक रागणियों की रचना की। गुणपाल कासंडा ने भी अनेक मौलिक कहानियों पर किस्से घड़े। उनके 'श्याम और रेखा', 'प्रश्न के उत्तर', 'कलावती-संतराम', 'मा चपला रानी', 'अंजना-पवन', 'भगत फूलसिंह', 'राजा हरिश्चंद्र'

आदि अधिक किस्सों में उनकी आर्यसमाजी चेतना झलकती है। इन्होंने भी कुप्रथाओं और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ सृजन किया है।

सिंघाना गांव में जन्में मा. दयाचंद आज़ाद का सांग परम्परा में अमूल्य योगदान है। उनका जीवन 1925-1995 तक रहा। छंद, मात्रा और तुक-लय की दृष्टि से बेजोड़ इनकी रागनियां आज़ादी के सपनों और बाद की अविश्वसनीय परिस्थितियों का गहरा अनुभव रखती है। वे लिख उठते हैं -

सन उन्नीस सौ सैंतालीस म्हं देश आज़ाद होया तेरा।
आजादी खाटी हो सै के मिट्टी, ना आज तलक पाट्या बेरा।

उन्होंने भ्रष्ट व्यवस्था पर करारे व्यंग्य किये हैं। उन्होंने बीस से अधिक सांगों का सृजन किया, जिनमें से अनेक सांग 1995 में आई बाढ़ में बह गए। 'चंद्रप्रभा-मदन कुमार', 'चंद्रहास', 'फूलसिंह-फूलकली', 'सतवंती', 'जानी चोर', 'फूलसिंह-कृष्णा देवी', 'राजपाल-रुक्मा', 'सीता का दसोटा', 'धर्मजीत और विजय', 'भीमसिंह-अर्जुनसिंह' आदि इनके सुप्रसिद्ध सांग थे। इनकी फुटकल रागनियों में समाज का यथार्थ उभरा है।

चंद्रलाल बादी ने सांग विधा को नये आयाम दिये। इन्होंने सांग की विषय वस्तु में लोक के मनोरंजन और वृति-विशेष को ध्यान में रखकर सांग रचे। कुछ पारंपरिक विषयों पर भी सांग लिखे परन्तु पूर्ण रूप से अपने सांचे में ढालकर। इनके सांगों की विशेषता थी स्त्री-पुरुष का परस्पर संवाद पूर्ण रूप से चटकीला और मनोरंजन पूर्ण होता था। उनके 'गजना गोरी', 'कमला-मदन', 'मोहना देवी', 'देवर भाभी', 'सत्यवान-सावित्री', 'नौबहार-धर्मदेवी', 'रूपा रेलू राधेश्याम' आदि सांगों ने खूब धूम मचाई।

चंदगी भगाणिया भी राय धनपतसिंह निंदाणा' के शिष्य हुए और उन्होंने भी अनेक सांग श्रृंगार रस से परिपूर्ण लिखे।'छबीली भठियारी', 'चंदना', 'चांद की कौर', 'उत्तमचंद सत्यवती', 'शाही लक्कड़हारा', 'सेठ ताराचंद', 'ध्रुव भगत' और 'मीराबाई' उनके प्रसिद्ध सांग है। उनके कई सांग उनकी मौलिक कथाओं पर आधारित है।

कृष्ण चंद्र रोहणा कबीर के पारख संप्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं। लम्बे समय तक शिक्षक रहे रोहाणा जी ने 'सेठ ताराचंद' और 'कबीर' सांग के अतिरिक्त डॉ. अम्बेडकर, जोतिराव फुले और सामाजिक बुराइयों पर अनेक रागनियों का सृजन किया।

इनके अलावा ज्ञानीराम शास्त्री, जगत सिंह नारनौंद, मंगतराम शास्त्री, रामेश्वर गुप्ता, रामधारी खटकड़, रामफल 'जख्मी', मुकेश यादव आदि ने भी फुटकल रागनियों के माध्यम से सामाजिक समस्याओं पर कटाक्ष किए हैं। रणबीर सिंह दहिया वर्तमान समय में एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लोककवि हैं। उन्होंने मेहरसिंह, बाजे भगत, सफदर, उधमसिंह, आंडी सद्दाम और नया दौर आदि बिल्कुल नए विषयों पर सांगों की रचना की। ये आशु लोक कवि हैं और जो कुछ इनके आस-पास घटित होता है, उसकी रागनीमय अभिव्यक्ति करते हैं।

समाज में निचले तबको से आने वाले कुछ लोककवियों ने रागनी को जाति-वर्ण के खिलाफ हथियार के रूप में प्रयोग किया है। दयाचन्द मायना और महाशय छज्जूलाल के 'राजा हरिश्चंद्र' सांगों को देखा जा सकता है।

पिछले दो ढाई साल से हरियाणवी लोकगीत परम्परा में एक नया बदलाव आया है और वह हैं इसमें दलित युवाओं की भरमार। उन्होंने डॉ. अम्बेड़कर और बहुजन आन्दोलन को लेकर हरियाणवी रैप तक का प्रचलन किया है।

हरियाणा में ऐसे लोक कवियों को तो आगे कर दिया गया जो वर्ण, जाति, स्वर्ग, नरक, देवी-देवता या भाग्य किस्मत में विश्वास को महान संस्कृति मानते हैं। जबकि ऐसे लोककवियों की कमी नहीं रही है, जिन्होंने पुरातन संस्कृति के नकारात्मक पहलुओं को नकारते हुए बदलाव के लिए लोक साहित्य सृजन किया हरियाणा में अनेक गायकों ने कला की मर्यादा को तोड़ते हुए रागनियों पर किसी अन्य कवि की छाप लगा-लगा कर गाया है। हरियाणा के लोक साहित्य के पुनर्पाठ की आवश्यकता है, जिसमें इसका गंभीर मंथन हो।

सम्पर्क-94164-07834

कविता

रोशन लाल श्योराण

यादें

वो बचपन के दिन कड़ै गए,
वो छूटे साथी कड़ै गए,
मैं ढूंढू उनको गळी-गळी
वो यारे प्यारे कड़ै गए।

वो खुडिया-डंडा, वो लुका छिपी
वो तीज और गुग्गा कड़ै गए
वो दीवाळी दशहरे कड़ै गए
वो मशाल फुलझड़ी कड़ै गए
मैं ढूंढू उनको गळी-गळी
वो खील-खिलौणे कड़ै गए।

वो खेल खिलाड़ी कड़ै गए,
वो कुश्ती दंगल कड़ै गए,
वो भाईचारे कड़ै गए,
वो पोला-सूरतां कड़ै गए,
वो भरथू-जगता कड़ै गए
मैं ढूंढू उनको गळी-गळी
वो हरदेवा-धनसिंह कड़ै गए।

वो छोट-बड़, वो शरमाणे कड़ै गए
वो ताई-चाची, बेबे-बुआ
वो लाड-लडाने कड़ै गए
मैं ढूंढू उनको गळी-गळी
वो रिश्ते-नाते कड़ै गए

वो भात और न्यौंदे कड़ै गए
वो रथ अर घुड़चढ़ी कड़ै गए
वो ढोल-नगाड़े कड़ै गए
वो बैंजू-घड़वे कड़ै गए
वो बीन के लैरें, रात के फेरे
मैं ढूंढू उनको गळी-गळी
वो गाभरू छोरे कड़ै गए

वो पहले जैसे साज नहीं
वो जोगो-सांगी कड़ै गए
वो कंठ सुरीले कड़ै गए
मैं ढूंढू उनको गळी-गळी
वो लख्मी मांगे-मायने कड़ै गए
वो बचपन के दिन कड़ै गए
वो बचपन के दिन कड़ै गए।

सम्पर्क-9416290485

मेवाती लोक गीत

1

मैं तो चिड़िया-सी उड़ जाऊंगी मेरा बाबल।
मैं तो तीन दिना भारी मेरा बाबल।
मोसू हड़क-बड़क मत बोले मेरा बाबल
मैं तो चिड़िया सी उड़ जाऊंगी मेरा बाबल।
मैं तो अपणा खटक दल ले चली मेरा बाबल।
मैं तो चिड़िया सी उड़ जाऊंगी मेरा बाबल।
मेरा बीरा अपणा नगर सू बसियो।
मैं तो तेरा आंगण की गाय मेरा बाबल।
जितकू ताड़े उतकू तड़ जाऊंगी मेरा बाबल।
मैं तो अपणा खटक दल ले चली मेरा बीरा।
अपणा नगर सू बसियों।

2

मां मेरा पीसणों, कितनो पीसो री।
जितनी दगड़ा में रेत, जणी सू कहियो री।
इतनो गूंदो री, जितनी पोखर में कीच।
जणी सू कहियो री...
मां मेरो पीसणो, कितनो पीसो री।
इतनो पोयो री, जितना पीपळ में पात।
खागी-खागी री मां ऊ मुरगी की सी डार।
मोलू टिकिया रहगी एक, जणी सू कहियो री।
जणी से कहियो री...
मां मेरो छोटो देवर लाडलो वा टिकिया बी लेगो छीन
जणीं सू कहियो री, मां मेरो पीसणों...
मां मैं भूकी सोगी री जणीं सू कहियो री।

3

हुकम करो तो मईयां आऊं तेरे र भवन में।
गइया को दूध हमारे बछड़ा ने बिगाड़ो।
कांई की धार चढ़ाऊ, मईया तेरे र भवन में।
कुआं को जल, तेरी मछली ने बिगाड़ो।
कांई सू तोय नहवाऊं, मइया तेरे र भवन में।
पीळे-पीळे लड्डू हमारे हलवाई ने बिगाड़े
कांई को भोग लगाऊं मइया तेरे र भवन में।
पीळे-पीळे सोने, हमारे सुनरा ने बिगाड़े,
कांइ की छतर चढ़ाऊं, मइया तेरे र भवन में।
हुकम करो तो मईया जाऊं तेरे र भवन में।।

संकलन- माजिद मेवाती सम्पर्क-94162-74185

हरियाणा का हाल

अरुण कुमार कैहरबा

हरि के हरियाले प्रदेश हरियाणा का हाल सुणो,
खरी-खरी कड़वी-सी बात और चुभते हुए सवाल सुणो।

दूध-दही के खाणे वाला मीठा-मीठा गीत कहां सै,
मिल-बैठ कै, बांट-बांट के खाणे वाली रीत कहां सै,
अन्न के घणे भंडारा मैं भूखे बिलखते बालक क्यूं सैं,
भूखों का भी लहू चूसते घणे सयाणे मालक क्यूं सैं,
उत्पीड़ित लोगों के मन मैं उठदा होया भूचाल सुणो।
हरि के हरियाले प्रदेश हरियाणा का हाल सुणो।

गोत-खाप की पंचायतों की गुंडागर्दी बढ़दी जारी,
इनके फतवों-फरमानों से प्रेमी जोडियां मरदी जारी,
पग्गड़धारी सामंत जात के लिखवारे इतिहास खाप का,
हरियाणा के लाल समझरे खुद नैं दादा अपणे बाप का,
बढना तो आगे चाहिए था, पिछडन् का मलाल सुणो।
हरि के हरियाले प्रदेश हरियाणा का हाल सुणो।

नारी पूजणिये समाज मैं, बेटा-बेटी फरक क्यूं होरया,
बेटे की चाह मैं बाबों के आगै माथा पटक क्यूं होरया,
बोझ समझ कै लडकी नै उसका जीवन नरक क्यूं होरया,
कन्या भ्रूण हत्या क्यूं होरी, इतना बेड़ा गरक क्यूं होरया,
बेटी के दुश्मन समाज की पाखंडी सी चाल सुणो।
हरि के हरियाले प्रदेश हरियाणा का हाल सुणो।

बात जात की इतनी बढगी, सारे रस्ते रोक दिए,
भाईचारे पै नाके ला दिए, मूछां के खूंटे ठोक दिए,
राजनीति नै मजे लिए तब अपणे प्यादे झोंक दिए,
प्रशासन सब रह्या देखदा, छूरे पै छूरे घोंप दिए,
क्यों होई या जात की जंग इसकी भी पड़ताल सुणो।
हरि के हरियाले प्रदेश हरियाणा का हाल सुणो।

सम्पर्क-94662-20145

पचास साल का सफर

हरियाणवी सिनेमा

❒सत्यवीर नाहडिया

हरियाणा प्रदेश के स्वर्ण जयंती वर्ष के पड़ाव पर यदि हरियाणवी सिनेमा की स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करें तो निराशा ही हाथ लगती है। सन् 1984 में प्रदर्शित हुई हरियाणवी फीचर फिल्म चंद्रावल ने सही मायने में प्रदेश के गीत-संगीत एवं संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी तथा इस फिल्म ने आशातीत सफलता अर्जित की किंतु 'चंद्रावल' से पहले या बाद में कोई भी हरियाणवी फिल्म इस सफलता की राह पर नहीं टिकी। इस तरह हरियाणवी सिनेमा और 'चंद्रावल' एक दूसरे के पर्याय बनकर उभरे।

क्षेत्रीय सिनेमा की पहचान और साख बनाने में जो मूलतत्व निरंतरता से दिखने चाहिए वे हरियाणवी सिनेमा में नदारद रहे। यही कारण है कि फिल्मों के शौकीन भी हरियाणवी फिल्मों के इतिहास के नाम पर चंद्रावल के अलावा 'बहूराणी', 'लाडो', 'गुलाबो', 'पनघट', 'जर-जोरू और जमीन' आदि पांच-सात फिल्मों के नाम गिनवाकर इतिश्री कर लेते हैं किंतु हरियाणवी सिनेमा के चार दशकों से ज्यादा के सफर ने पांच दर्जन से अधिक फिल्में देकर कोई दूसरी चंद्रावल तक देने की सफलता अर्जित नहीं की। इससे प्रदेश के सिनेमा के सफर के गुणात्मक परिणाम का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

हरियाणा प्रदेश के गठन के सात साल बाद पहली हरियाणवी फिल्म के रूप में प्रेम-गाथा पर एक श्याम-श्वेत फिल्म 'बीरा शेरा' पदार्पित हुई तथा अगले ही साल 'चौधरी हरफूल' ने इस यात्रा को आगे बढ़ाया तथा फिर यह सिलसिला सन् 1984 तक जारी रहा तथा 'चंद्रावल' ने हरियाणवी सिनेमा की खनक व धमक को हरियाणा, दिल्ली, यूपी से दूर मायानगरी तक पहुंचाकर धूम मचायी। हरियाणा के देहात से पहली बार लोग टैक्टर-ट्राली भर-भर कर शहरी व कस्बाई सिनेमाघरों में टूट पड़ते दिखाई दिए। 'जीजा मैं गौरी तू काळा घणा' जैसे माटी के गीत लोक धुनों पर गांव नगर में गूंजने लगे। रूंडा-खुंडा जैसे हास्य पात्र जनमानस में रचते बसते चले गये।

गाड़िया लोहार एवं जमींदार परिवार की नव पीढ़ी के बीच जन्मी प्रेम कहानी के कथानक को हर कोई देखने पर विवश सा हो गया। हालांकि तकनीकी तौर तथा कुछ अन्य पक्षों को लेकर 'चंद्रावल' में भी अनेक खामियां थीं किंतु 'चंद्रावल' में माटी की सोंधी महक के रस घोलते गीत, संगीत, कथानक, अभिनय, हास्य, संवाद आदि वे बहुआयामी पक्ष थे जिसके चलते ढ़ाई लाख में बनी इस फिल्म ने न केवल ढ़ाई करोड़ कमाये अपितु हरियाणवी सिनेमा को नयी ऊंचाई दी। अनेक सिनेमाघरों में रजत जयंती तथा एक सिनेमाघर में स्वर्ण जयंती मनाई।

इस फिल्म के लेखन-निर्देशन से जुड़े कलाकारों को हरियाणी संस्कृति की अच्छी खासी समझ थी। प्रख्यात लोकमर्मज्ञ देवीशंकर प्रभाकर की कहानी, उनके पुत्र जयंत प्रभाकर की पटकथा व निर्देशन, लोकसंगीत के पारखी जेपी कौशिक का संगीत निर्देशन, आधा दर्जन माटी की सोंधी महक के गीत, रंगमंच के मंजे हुए कलाकारों का अभिनय जगत जाखड़, उषा शर्मा, अनूप लाठर, ओंकार तेवतिया, रेखा वर्मा, राजू मान, लीला सैनी हरियाणवी हास्य के चितेरे दरियाव सिंह मलिक, नसीब सिंह कुंडू के रूंडा-खुंडा की हंसोड जोड़ी ने हरियाणवी सिनेमा को पहली बार मौलिकता देकर नये कीर्तिमान स्थापित किए।

ऐसा नहीं कि 'चंद्रावल' के बाद हरियाणवी पृष्ठभूमि पर अच्छी फिल्में नहीं बनी किंतु विभिन्न कारणों के चलते प्रदेश की जनता ने किसी भी प्रयास को 'चंद्रावल' की तरह हाथों हाथ नहीं लिया। चंद्रावल की करिश्माई सफलता को देखकर हरियाणवी फिल्मों की बाढ़ सी आने लगी। सन् 1973 से प्रारंभ हुई हरियाणवी सिनेमा की यात्रा में जहां चंद्रावल (1984) चौथी फिल्म ही थी वहीं सन् 1985 में पांच फिल्में 'छैल गैल्या जांग्यी', 'लीलो चमन', 'प्रेमी रामफल', 'म्हारा पीहर सासरा', 'चंद्रकिरण' रिलीज हुई। अगले वर्ष 1986 में इनकी संख्या एकदम दुगनी हो गयी तथा दस फिल्में एक साल के भीतर प्रदर्शित हुई, जिनमें उन्हीं जयंत प्रभाकर की 'लाडो बसंती', 'गुलाबो', 'छोटी साली' के अलावा अरविंद स्वामी की 'छैल गाभरू', 'म्हारी धरती म्हारी मां', 'छोरा जाट का' तथा अन्य की 'भंवर चमेली', 'ले ज्यागा लणिहार', 'चंद्रकांता', 'भाभी का आशीर्वाद' के नाम उल्लेखनीय हैं। इस तरह दो वर्ष में 15 फिल्में देने वाले हरियाणवी सिनेमा में कहानी, पटकथा, निर्देशन, अभिनय, गीत संगीत, वितरण, प्रसार जैसे पक्षों में वह गंभीरता एक मंच पर नहीं दिखी जिसमें उक्त सभी घटकों का उचित समावेश हो।

इनमें से कुछ फिल्मों ने संगीत में, कुछ ने कहानी में, कुछ ने निर्देशन में तो कुछ ने अभिनय में विशिष्ट पहचान बनायी, लेकिन फिल्में असफल ही रही। इन फिल्मों पर 'जहां जाड़ थी वहां चने नहीं, और जहां चने थे वहां जाड़ नहीं' वाली कहावत चरितार्थ हुई। फिर एक दौर चला हरियाणवी फिल्मों की सी.डी. बनाने का जिनमें हरियाणवी के नाम पर वह फूहड़ता व अश्लीलता परोसी गयी इससे हरियाणवी सिनेमा की छवि को भारी नुकसान पहुंचा।

हरियाणा प्रदेश के समृद्ध सैनिक इतिहास एवं प्रेरक शहादत परम्परा, खेल व कृषि संस्कृति पर न के बराबर काम हुआ, जिन पर बालीवुड में निरंतर सफल प्रयोग होते रहे। हरियाणवी लोकगीतों को मायानगरी बड़ी चतुराई से फेरबदल कर मूल लोकधुनों के साथ इस्तेमाल करती रही। इतना ही नहीं करीब दो दर्जन चर्चित हिंदी फिल्मों व टी.वी. सीरियलों में ठेठ हरियाणवी बोली की ठसक व धमक को

अपनाया गया तथा पिछले दिनों सुलतान ने तो न केवल बोली अपितु प्रदेश की प्रमुख खेल संस्कृति को केंद्र में रखकर वह सब कर दिखाया जिसके बारे में प्रदेश की सिनेमाई रचनाधर्मिता ने कभी सोचा ही नहीं। इस माटी के खेल कुश्ती को केंद्र में रखकर आमिर खान सरीखे बड़े अभिनेता की फिल्म 'दंगल' भी निर्माण के अंतिम दौर में हैं।

चंद्रावल बाद आयी प्रेमगाथाओं को हरियाणा के दर्शकों ने सिरे से नकार दिया। बम्बइया फिल्मों की नकल कर हरियाणवी के नाम से दर्शाए गये प्रेम की स्वीकृति हरियाणा के परिवेश में नहीं थी।

फिल्म निर्माताओं की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की छिछली जानकारी व प्रदेश सरकारों के घोर उपेक्षित रवैया हरियाणवी सिनेमा की बदहाली के प्रमुख कारण रहे। विभिन्न सरकारों ने भी हरियाणवी सिनेमा के लिए कोई ठोस व्यवहारिक प्रभावी नीति नहीं बनायी। न ही हरियाणवी सिनेमा को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए खास योजनाओं को लागू किया गया। सरकार के प्रोत्साहन एवं संरक्षण के अभाव में प्रदेश में सिनेमा संस्कृति धीरे धीरे दम तोड़ती चली गयी। आज आवश्यकता इस बात की है कि सरकार हरियाणवी सिनेमा के विविध पक्षों को विकसित करने के लिए प्रेरक फिल्म नीति बनाये ताकि कला एवं संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन में हरियाणवीं सिनेमा अपनी विशिष्ट पहचान बनाकर नये आयाम रच सके।

करीब एक दर्जन हिंदी एवं हरियाणवी फिल्मों में अभिनय के अलावा पटकथा एवं संवाद लेखन जैसी बहुआयामी निभा चुके अभिनेता विजय भाटोटिया का मानना है कि चंद्रावल उस दौर की फिल्म है जब सिनेमा हॉल की टिकट 12 आन्ने की थी, टीवी में सप्ताह में एक फिल्म व चित्रहार आता था जबकि आज नाखून (रिमोट) के नीचे सैंकड़ों स्टार तैयार खड़े रहते है। हिंदी फिल्में भी मात्र दस प्रतिशत ही चलती है। हरियाणवी क्षेत्र देश का दो फीसदी भी नहीं है। हरियाणवी फिल्मों ने अच्छी कहानी, अच्छा गीत-संगीत तथा बेहतर तकनीकी पक्ष भी दिया है, किंतु एक ओर महाराष्ट्र सरकार सब्सिडी के तौर पर वहां की क्षेत्रीय फिल्म को चालीस लाख रूपये देती है जिससे आधा रिस्क पहले ही दूर हो जाता है, किंतु हरियाणवी फिल्म बनाने का मतलब सौ प्रतिशत रिस्क लेना है। उनका मानना है कि मल्टीपलेक्स संस्कृति में प्रदेश सरकार को ठोस फिल्म नीति बनाकर सभी हरियाणवी फिल्मों को टेक्स फ्री करना चाहिए तथा मल्टीपलेक्स पर सप्ताह में एक शो क्षेत्रीय फिल्म का अनिवार्य तौर पर दिखाया जाना चाहिए।

चंद्रावल-2 तथा सुलतान जैसी चर्चित फिल्मों के अलावा अनेक टी.वी. सीरियल्स में अपने अभिनय का लोहा मनवा चुके झज्जर जिले के दुजाणा

इस रागनी में हरियाणवी फिल्मों के नाम ढूंढें...

हां, फिलम सैं ये हरियाणे की।
देख सलीमा बात नहीं सै या सरमाणे की।।

बीरा शेरा पहली म्हारी, जा सै फिलम बतायी रै।
हरियाणा था सात साल का, जब बणकै या आयी रै।
चौधरी हरफूल सिंह फेर, अगले साल दिखायी रै।
नौ साल कै पाच्छै भाई, आयी थी बहूराणी वा।
चौक्खी-बढिया फिलम बतायी, आच्छी थी रै क्हाणी वा।
चन्द्रावल् तै रूक्का पाट्या, लगी आग ज्यूं पाणी वा।

हां, फिलम थी न्यारे गाणे की।
रूंडा-खूंडा आळी जोड़ी, खूब हँसाणे की।।

के सुपने का जिकर करूं अर छैल गैल्यां आयी वा।
लीलो-चमन, भंवर-चमेली, चंद्रकिरण बतायी वा।
फेर गुलाबो पणघट ऊपर, थोड़ी न्यारी छायी वा।
प्रेमी रामफल, पीहर-सासरा, बीच-बीच म्हं आर्ही थी।
लाडो-बंसती, छैल-गाभरू, छोटी साळी प्यारी थी।
म्हारी धरती-म्हारी माँ अर चंद्रकांता नारी थी।

हां, बटेऊ, चंद्रो ल्याणे की।
घूंघट की फटकार लगी, बैरी समझाणे की।।

छोरा जाट का न्यूं बोल्या सुण, ले ज्यागा लणिहार दिखे।
झणकदार कंगणा कै गैल्यां, फूल बदन हुयी त्यार दिखे।
धन पराया फाग्गण आया, छोरा हरियाणा सार दिखे।
छोरी फेर सपेले की अर चंद्रो-छन्नो तीन रै।
जाट, जाटणी साथ छबीली, जर-जोरू जमीन रै।
छोरी नट की मुकलावा पै, यारी आळी बीन रै।

हां, वा लाडो थी पिया झाणे की।
चाँद-चकोरी साथ जनेत्ती सुण घर ल्याणे की।

खानदानी सरपंच गेल्यां, माटी वा हरियाणे की।
पीहर आळी फेर चूंदड़ी, काँच-चूड़ियां भाणे की।
मुठभेड फेर चंद्रावळ तै, वादा फेर निभाणे की।
लंदन आळी छोरी गैल्यां, माटी करै पुकार रै।
फाइटर गैल्यां कुणबा बैठ्या, संग वो नम्बरदार रै।
सतरंगी पगड़ी का ऑनर, हुयी खूब तैयार रै।

हां, नाहड़िया, भाभी आसीस बताणे की।
मॉडर्न गर्ल अर देसी छोरा, दबंग छोरा धमकाणे की।।

संपर्क-9416711141

गांव निवासी अभिनेता एवं संगीतज्ञ दीपक कपूर का मानना है कि हरियाणवी कलाकारों ने सदा बॉलीवुड में अपनी प्रतिभा से तहलका मचाया है। नयी पीढ़ी में भी रणदीप हुड्डा, मेघना मलिक तथा यशपाल शर्मा जैसे फनकारों ने मायानगरी में अपनी खास पहचान बनाई है।

हरियाणवी सिनेमा को हरियाणवी कलाकारों की गुटबाजी ने ही डुबोया है। कलाकारों को एक दूसरे का सम्मान करते हुए टीमवर्क से हरियाणवी कला एवं संस्कृति पर आधारित कुछ नए एवं मौलिक प्रोजेक्ट बनाने होंगे। इतना ही नहीं सब कुछ बनाकर हमें बेचना नहीं आता, वस्तुतः मार्केटिंग के क्षेत्र में महारत हांसिल करनी होगी। 'सतरंगी' व 'पगड़ी' जैसी अच्छी फिल्मों को टैक्स फ्री करने के बावजूद अपेक्षित दर्शक नहीं मिलना चिंतनीय है। 'पीहड़ की चुंदड़ी' तथा 'कुणबा' जैसी हरियाणवी फिल्मों के अलावा रंगमंच से जुड़े ऋषि सिंहल का मानना है कि हरियाणवी में अब तक बनी अधिकांश फिल्में बॉलीवुड की फिल्मों से प्रेरित एवं प्रभावित रही हैं, जिसके चलते मसाला फिल्में ही ज्यादा बन पाई है। एक ओर हमें अपने प्रदेश की मूल संस्कृति, मिजाज एवं अंदाज के मौलिक स्वरूप को कहानी, संवाद, गीत एवं संगीत में परोसना होगा, वहीं दूसरी ओर प्रदेश सरकार को इस छोटे किंतु नई आशाओं से जुड़े प्रदेश के सिनेमा को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ ठोस नीतियां बनानी होगी।

प्रदेश में प्रतिभाओं की कमी नहीं है। आवश्यकता है उसे उचित मंच के साथ न्यायोचित प्रोत्साहन एवं मान सम्मान मिले। प्रदेश के जिन कलाकारों ने मुंबई तक अपनी छाप छोड़ी है, उन कलाकारों को एक दो बड़े हरियाणवी प्रोजेक्ट हरियाणवी सिनेमा में नयी जान फूंकने के उद्देश्य से करने होंगे।

फिल्म निर्माताओं, निर्देशकों, कलाकारों, रचनाकारों को चाहिए कि हरियाणा के स्वर्ण जयंती वर्ष में मौलिकता के साथ हरियाणवी सिनेमा की दिशा व दशा में व्यापक सुधार लाने के लिए अपना हरसंभव रचनात्मक योगदान दें।

संपर्क-9416711141

●

रिसाल जांगड़ा

हरियाणवी ग़ज़लें

बाळक हो गए स्याणे घर मैं।
झगड़े नवे पुराणे घर मैं।

आए नवे जमाने घर मैं।
ख्याल लगे टकराणे घर मैं।

मैं जिन तईं समझाया करता।
लागे वैं समझाणे घर मैं।

छोटे-छोट्यां के बी पड़ग्ये,
नखरे-नाज उठाणे घर मैं।

छोट्टे मुंह तै बात बड़ी इब,
लागे बोल्लण याणे घर मैं।

बाळक तो बस बाळक हो सैं,
ल्यावैं रोज उल्हाणे घर मैं।

रिश्ते डगमग डोल्लण लागे,
अपणे होए बिराणे घर मैं।

माणस घर के भित्तर रह कै,
टोह्वै नवे ठिक्याणे घर मैं।

2

जिनके दिल मैं भरग्ये खटके,
अपणी मंजिल तै वैं भटके।

देख बुढापा रोण पड़ग्या,
याद आवैं जोबन के लटके।

जिनके ऊंचे कर्म नहीं थे,
वैं किसमत नै निच्चै पटके।

मिलैं फूट कै माट्टी मैं फेर,
हम सब सैं माट्टी के मटके।

आवभगत तौं करले इनकी,
बण महमान दरद आ फटके।

जिंदगी सै रस्सी का खेल,
पड़ैं दिख्याणे करतब नट के।

हिम्मत के थे जौण कंगाल,
अधर बीच मैं वैं ए लटके।

इक झटके मैं जान लिकड़ज्या,
दे महंगाई सौ सौ झटके।

'रिसाल' छूटग्यी उनकी रेल,
सही बख्त पै जो ना सटके।

3

जिम्मेदारी दुखी करै सै।
दुनियादारी दुखी करै सै।

कारीगर नै ऐन बखत पै,
खुंडी आरी दुखी करै सै।

पीछा चाहूं सूं छुटवाणा,
मन अहंकारी दुखी करै सै।

इसतै बढ़िया बैर बताया,
ओच्छी यारी दुखी करै सै।

बाळक याणा दूर स्कूल,
बस्ता भारी दुखी करै सै।

बड्ढे माणस नै हर रोज,
नवी बिमारी दुखी करै सै।

कोनी मिल रह्यी फरद 'रिसाल'
इक पटवारी दुखी करै सै।

4

बखत पड़े पै रोवै कौण।
करी कराई खोवै कौण।

मशीन करैं सैं काम फटापट,
डळे रात दिन ढोवै कौण।

दुनिया हो रह्यी भागम भाग,
नींद चैन की सोवै कौण।

बीत गया सै बखत पुराणा,
तड़कै चाक्की झोवै कौण।

केसर की क्यारी अनमोल,
भांग-धतूरा बोवै कौण।

सब नै प्यारे लागैं फूल,
कांड्यां पै इब सोवै कौण।

मुंह तो धोवैं रगड़ रगड़ कै,
अपणे दिल नै धोवै कौण।

कुणबा सारा पढ्या लिख्या सै,
दूध म्हैस का चोवै कौण।

सम्पर्क : 94682-28100

●

बदलते समाज का सूचक

हरियाणवी पॉप गीत

❑इकबाल सिंह

पिछले पचास सालों में हरियाणवी समाज में सामाजिक-आर्थिक राजनैतिक परिवर्तनों के साथ-साथ सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं। रागनियों व पॉप गीतों ने हमारी संस्कृति को काफी प्रभावित किया है।

हमारी सांस्कृतिक धरोहर समझे जाने वाले लोक गीतों का चलन पिछले कुछ समय से कम होता जा रहा है। जो लोकगीत अपनी सहजता, सरलता एवं अनुभूति की तीव्रता से लोक-मानस के हृदय की धड़कनों में राग भर देते थे। आज वे लोकगीत केवल परम्परा एवं शगुन के तौर पर ही गाए जाते हैं। अब शादी-ब्याह, छठी एवं अन्य उत्सवों में डीजे पर पॉप गीत ही बजते हैं और लोग पैरों को थिरकने से नहीं रोक पाते। हरियाणवी पॉप गीत घर, बैठक, पब्लिक ट्रांसपोर्ट, शादी, स्कूल, कालेज आदि के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सुनने को मिल जाते हैं। हरियाणा ही नहीं, बल्कि दिल्ली का देहात, उत्तर प्रदेश का हरियाणा से लगते भाग एवं राजस्थान के कुछ भागों में भी खूब सुनने को मिलते हैं।

'इन हरियाणवी पॉप गीतों में हरियाणवी समाज एवं भाषा का जो रूप उभरकर हमारे सामने आता है, उसमें हरियाणवी समाज, मानसिकता सांस्कृतिक बहुलता, विभिन्न मुद्दे संघर्ष के साथ-साथ हमें यह भी पता चलता है कि हरियाणवी युवा वर्ग आज किसी ओर जा रहा है। अब यह पॉप गीत ग्रामीण युवाओं के साथ-साथ शहरी युवाओं की भी जुबान पर चढ़े हुए हैं।'[1] जिनमें पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच अंतराल, संवाद-धर्मिता और टकराव को देखा जा सकता है। हरियाणवी पॉप गीतों से हरियाणवी समाज, संस्कृति, रहन-सहन, परम्पराओं में आ रहे बदलावों को समझा जा सकता है।

हरियाणवी समाज में स्त्री की स्थिति में अपेक्षित बदलाव देखने को नहीं मिलता। स्त्री को सम्पति और उपभोग की वस्तु माना जाता है। उसके लिए 'गंडासा', 'माणस', 'माल', 'पटोला' आदि शब्द प्रयोग किए जाते हैं। पितृसत्तात्मक ढांचे के अंतर्गत पुरुषवादी मानसिकता जिसमें स्त्री के प्रति पारम्परिक सोच को दिखाने वाले अनेक पॉप गीत सुनने को मिलते हैं।

'दिख्या ना माणस आज कित्त सै तू
दिख्यै गाळ म्हं सारे कित्त गुम सै तू
गाळ म्हं आ जा रै तू मंढेर पर आ जा
मिलै ज्यै मोक्का घेर म्हं आ जा
तू किसै तै डार्लिंग घबरावै क्यू तू
दिख्यै गाळ म्हं ये सारे कित गुम सै तू[2]

इस पॉप गीत में एक ही गांव के लड़का-लड़की आपस में प्रेम करते हैं, लेकिन हरियाणवी समाज में इस तरह के प्रेम-संबंधों को स्वीकार नहीं किया जाता है। लड़का-लड़की को अवसर पाकर कहीं भी आकर मिलने को कह रहा है। वह लड़की को सभी सामाजिक बंधनों एवं परम्पराओं को तोड़ कर मिलने के लिए कह रहा है। उसे गली मुंढेर पर बुला रहा है।

'म्हारी रै मंढेर पर तै ताकै मतना
तुड़वावैगा देही नै, तू हांसै मतना
घणे दिना म्हं लाग्या मौक्का तू नाटै मतना
बळ खावै जौबण तेरा, ढाटै मतना
भेद लाग जा घरवाळां नै हो जा गा रोळा
जग हंसाई करवागा तू होरा बोळा
कई दिना का हांडू ओळा-सोळा
मान ले तू बात नै काम बन जा गा तोळा
मीठी-मीठी बात नै इब काटै मतना[3]

इस पॉप गाने में लड़की, लड़के को कहती है। तेरा हमारी छत्त पर से देखना ठीक नहीं है। यदि मेरे घरवालों को पता चल गया तो वह तेरी पिटाई कर देंगे। लड़का कहता है कि बार-बार इस तरह का अवसर नहीं मिलता है। लड़की कहती है यदि हमारे संबंध के बारे में घरवालों को पता चल गया तो झगड़ा हो जाएगा। लड़की भी लड़के को चाहती तो है, लेकिन समाज इस तरह के प्रेम संबंधों को कभी भी स्वीकार नहीं करता है। क्योंकि लड़की के सिर पर परिवार और समाज की इज्जत की गठरी लाद दी जाती है। वह परिवार और समाज के डर के कारण अपनी इच्छाओं को अपने अंदर दबाकर घुटी रहती है।

बोदका की बोतल बरगा रूप कसुत्ता लेरी सै
मीता बरोदा गट-गट पीजा याए इच्छा मेरी रै[4]

यहां पुरुष मानसिकता दिखाई देती है, जो स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु समझती है। पॉप गीतों में स्त्री को कामोन्मादी वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हरियाणवी समाज में जाति की जड़ें बहुत गहरी हैं। जातिवाद की सबसे बड़ी विशेषता है - अपनी जाति को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए दूसरी जाति को हीन मानना। वर्चस्वी जातियां अपने को सांस्कृतिक तौर पर अन्य जातियों से श्रेष्ठ मानती हैं। जातिगत श्रेष्ठता स्थापित करते पॉप गीतों की भरमार है।

'जाट आपणी पै आ जा, रूकता ना यो रोकै तै'
ऊं तै ठण्डा होवै जाट, पर खून खोल जा धोखे तै
अपणी धुन म्हं रहवै जाट, देख्य न्या दुनियादारी
जाट की चौधर न्यारी, जाट की चौधर न्यारी[5]

इस पॉप गीत में जाट की छवि निर्मित की गई है। वह अपनी चौधर को सबसे न्यारी बता रहा है। चौधर को सत्ता और पावर से जोड़ कर देखा जाता है। इस चौधर के भुगतभोगी स्त्री, गरीब और दलित बनते हैं।

जाट जिस किसी की जिद्द कर लेता है उसे पूरी करके ही हटता है। जाट अपनी चौधर के नशे में किसी छोटे-बड़े का कायदा नहीं रखता है। जो उसका मन करता है, वह वही करता है, उसे कोई नहीं रोक सकता।

'पिस्टल, तलवार कुछ गाड़ी म्हं पड़े हैं
गैलां टांगे हथियार मेरे यार भी खड़े हैं
मेरी आंख न्या लड़ी है, किसे क्यूट हसीना तै
कब्जे करै सै हामनै जमीना पै।[6]

'जाट के हाथां टुटे जो भी, हाथ फिर वह जुडतै ना
पहले गलती करै नहीं, फिर पाच्छै मुड़तै ना'
जब मन आवै जब मारै लाठी, करता ना तैयारी
जाट की चौधर न्यारी, जाट की चौधर न्यारी[7]

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के बाद आए काले धन ने जमीनों के भाव आसमान

पर पहुंचा दिए। अनेक किसानों ने अपनी जमीनें बेचना शुरू कर दिया। इन पैसों को वह गाड़ियों, पिस्टल, हथियार, फैशन, रेस्तरां, बार डांस आदि में उड़ा रहा है। लंपट और उद्दंड वर्ग हथियार लेकर बार-रेस्तरां में महंगी शराब पीता है और दूसरों की जमीनों पर कब्जा करता है। चौधर के लिए वह किसी को भी पीट सकता है। हाथ-पैर तोड़ सकता है। इसके लिए किसी प्रकार की तैयारी की आवश्यकता नहीं होती।

'जो भी रोकै गुज्जर ने, उसनै कोण बचा लै
जिसे नै मां का दूध पिया, वो आकै टकरा लै
सारे शहर म्हं मेरा सै रूक्का,
बचकै गया ना कोए भी सूखा
थोड़े अलग हैं मेरे शोक,
गुज्जर के छोरे नै लेवै कोण रोक'[8]

युवा की छवि गुंडे व बदमाश की बनाई जा रही है। इन गीतों में हिंसा व उन्माद को जाति गौरव के साथ शामिल कर दिया जाता है।

इसी प्रकार से 'इन राजपूत के छोरे का पूरी दुनिया म्हं रूक्का सै' जाटां का छोरा, बैरागी का छोरा, चमारां कै छोरे आदि अनेक हरियाणवी पॉप गीत सुनने को मिलते हैं। वर्चस्वी जाति का युवा वर्ग उत्तेजना, उन्माद, गुंडागर्दी एवं हिंसा के द्वारा समाज पर अपना दबदबा कायम रखना चाहता है। हमारा समाज जातिगत हिंसा से धधक रहा है। इन गीतों ने भी इसमें घी का काम किया है।

हरियाणा कृषि प्रधान राज्य है। यहां की संस्कृति खेती से जुड़ी हुई है। पिछले ढाई दशक में खेती एक घाटे का सौदा बन गई है। आज किसान को दिन-रात की हाड तोड़ मेहनत के बाद केवल रोटी भी मुश्किल से नसीब होती है। किसान पर सूदखोरों एवं बैंकों का करोड़ों रुपए का कर्ज बकाया है। अनेक किसान एवं खेतिहर मजदूर आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। पॉप गीतों में किसान की स्थिति को व्यक्त किया है।

'तुम उठो दस बजे पाच्छै हाम खेत कमा कै आलै सैं'
तम जूस और फ्रूट लेवै तड़कै, हाम गंठा रोटी खालै सैं
हाम घा कै माटी लालै सैं, थोड़े म्हं काम चलालै सैं
ज्यै सुसाईड करण लागे तै किसान,
इतणी लाशां नै कूकर ठाओगे
जै हामनै बोणा-बाणा छोड़ दिया तै,
कै तम बगण खाओ गए'[9]

हरियाणा के निर्माण के शुरुआती वर्षों में यहां विकास की गंगा गांवों से शहरों की ओर बही थी, लेकिन आज गांव एजेंडे से बाहर दिखते हैं। इस गीत में किसान सरकार और अफसरों को संबोधित करते हुए कहता है। आज किसान के हालात इतने खराब हो चुके हैं कि सुसाईड करने पर मजबूर हो रहा है। यही हालात रहे तो तुम किसानों की लाशों को उठाते-उठाते थक जाओगे। जब तुम उठते हो, तब तक तो किसान खेत में काम करके वापिस आ लेता है। किसान को दिन-रात की हाडतोड़ मेहनत करने के बाद भी केवल गंठा रोटी ही नसीब होती है और तुम बिना मेहनत के सुबह जूस और फ्रूट लेते हो। यह कैसा विकास है।

आज किसान के पास अपने घाव का इलाज करवाने तक के पैसे नहीं है। उसे दिन-रात की मेहनत के बावजूद भूखा मरना पड़ रहा है। वह अपने परिवार का गुजारा बहुत कम पैसों में चलाने पर मजबूर है।

'कदे जमीदारे न्य सेम मारजा,
कदे मार जा पाळा रै
कदे ओळे म्हं कड़ तोड़ देवै,
कदे बिजळी का चाळा रै
हाम होग्ये पागल ढाळा रै,
म्हारी कोए न्या सुनता साळा रै'[10]

आज राज्य के लाखों किसान गंभीर आर्थिक संकट में फंसे हुए हैं। जिन गांवों के किनारों से नहरें निकली हैं, वहां के हजारों किसानों के खेतों को सेम ने चौपट कर दिया है। या फिर अधिक वर्षा होने के कारण भी सेम से फसल बर्बाद हो जाती है, जहां पर पानी का अभाव है, वहां पर बिजली से ट्यूबवैल से सिंचाई की जाती है। लेकिन बिजली के बार-बार कट से किसान की फसल सूख जाती है। फसल पर प्राकृतिक आपदाओं के साथ-साथ व्यवस्था के संकट ने किसान को भूखा मरने पर मजबूर कर दिया है। उसकी कोई सुनने वाला नहीं है।

भीतर कै म्हं मर्ज कसूती बैठा एक सवाल रै
सबका पेट भरणया आज क्यू होग्या कंगाल रै
कूकर अफसर बणजा बालक, खर्च चलाणा ओखा होर्‌या
जिंदगी कट गई माटी म्हं, मेरी मेहनत गेला धोखा होर्‌या'[11]

इस पॉप गीत में किसान समाज और सरकार से एक सवाल पूछ रहा है कि जो किसान दिन-रात, सर्दी-गर्मी में हाडतोड़ मेहनत करके सभी के लिए अनाज पैदा करता है। आज वही भूखा मरने पर मजबूर हो रहा है। किसान की पूरी जिंदगी मिट्टी से अन्न पैदा करने में गुजर जाती है। किसान के आक्रोश को इन गीतों में अभिव्यक्ति मिली है।

आज बहुत तेजी से समाज बदल रहा है। हमारे मूल्य बदल रहे हैं, जिस कारण पीढ़ियों से टकराव बढ़ रहा है। सामाजिक भाईचारे के पतन का एक नया दौर शुरू हो गया है। काम न करने की अपसंस्कृति तेजी से विकसित हुई है, तो खून के रिश्तों में हत्याओं में वृद्धि हुई है। आज आर्थिक और भौतिक विकास के साथ सामाजिक और सांस्कृतिक दिवालियापन लगातार बढ़ता जा रहा है।

'ऐ ऊपर आळै तेरे तै बढ़ कै
मां-बाप का प्यार मनै
आपस म्हं भाई बैरी बणै,
क्यों बदले सोच-विचार तनै
पैसे की दुनिया होरी सै,
बिजनस तै मतलब राखैं लोग
छोड़ कै आपणी ब्याहाली नै,
दूसरे की औरत पाच्छै लोग
रिश्ते-नाते भूल कै
यह गहरी नींद म्हं सूत्ते
मां-बाप तो घर तै काढ दिये,
बेटे नै पाळ लिए कुत्ते'[12]

उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण परिवार का विघटन, मां-बाप की उपेक्षा, भाई-बहन में आपस में बैर आदि अनेक समस्याएं पैदा हो गई हैं। प्रत्येक व्यक्ति पैसे के पीछे भाग रहा है। हर रिश्ता आज स्वार्थ की नींव पर टिका है। जब तक किसी को स्वार्थ होता है जब तक वह साथ रहता है। स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर वह रिश्तों को भूल जाता है।

समाज बहुत तीव्र गति से करवट बदल रहा है। आज की पीढ़ी की सोच, मां-बाप की सोच से मेल नहीं खा रही है। मां-बाप बच्चों पर बोझ बनते जा रहे हैं। अनेक वृद्धाश्रम खुल रहे हैं। व्यंग्य किया है कि मां-बाप को घर से निकाल कर कुत्ते पाल रहे हैं।

'इस फैशन के दौर म्हं,
बदल गया मेरा हरियाणा रै
बावन गज का था घूम घाघरा,
काला दामण रहहा नहीं
लांडी कुड़ती गात उघाड़ा,
न्या दूध दही का खाना रै

इस फैशन के दौर म्हं,
बदल गया मेरा हरियाणा रै'[13]

गत डेढ़ दशक में हरियाणा में व्यापक बदलाव आया है। धन की चकाचौंध में यहां का गंवईपन भी खो गया है। आज का युवा वर्ग शराब, चौम्मीन, बर्गर एवं फास्ट फूड का खाना पसंद करने लगा है। दूध-दही आज खाने की थाली से गायब है। आज हरियाणे के युवा शाम होते ही शराब के ठेके पर पाया जाता है। खानपान के साथ पहनावा भी बदला है। हरियाणवी समाज में स्त्री के पहनावे को लेकर अक्सर सवाल उठते रहे हैं।

आज हरियाणा का समाज सामाजिक संकट के दुष्चक्र में फंसता जा रहा है। हर चीज पैसे से खरीदने और बेचने की दलाल संस्कृति विकसित हो रही है। काम न करने की कुसंस्कृति ने लाखों युवाओं को नशाखोर और अपराधी बना दिया है। सैंकड़ों युवा हर वर्ष अवसाद के शिकार होकर आत्महत्या का रास्ता चुन रहे हैं।

युवाओं को आरक्षण के नाम पर इन्हें भविष्य का झूठा लालच दिखा कर उकसाया जा रहा है। जाट आरक्षण की मांग के नाम पर गत फरवरी में बलवाईयों और दंगाईयों ने खूब बवाला काटा है। रोहतक, सोनीपत, झज्जर, भिवानी और जींद में खुली गुंडागर्दी देखने को मिली। इसको रोकने में सरकार, पुलिस और हमारी आर्मी भी नाकाम रही। राजनीतिक दल सामाजिक वैमनस्य का माहौल पैदा करके अपने स्वार्थ की रोटी सेक रहे हैं। आज पूरा हरियाणवी समाज पैंतीस एक में बंट रहा है।

'हाथ जोड़-जोड़ शुरु म्हं मांगे वोट
फेर आदे सरकार जाट कै म्हारी चोट
फदू मत लाओ हामनैं माटी म्हं मिला देंगे
कोम इसी जाट सारी धरती हिला देंगे
कै गलती करदी जाट्या न्य
जो ईतना बड्डा दोस दिया
यो पीएम बन गया और जात का
आरक्षण भी खोस लिया'[14]

जिन जिलों में विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए जमीन गई है, वहां पर धन बहुत आया है। इन इलाकों में आलीशान कोठियों, महंगी गाड़ियों, शराब और अपराध के साथ नेताओं की बाढ़ भी आ गई है। चौधर का जादू युवा चौधरियों के सिर चढ़कर बोल रहा है। वह सत्ता पाने के लिए शराब, पैसों का खुलकर प्रयोग करते हैं।

कुछ समय पहले हरियाणा में पंचायती चुनाव में देखने को मिला कि उम्मीदवार शराब व पैसों के बल पर सरपंची पाना चाहता है। सरपंची केवल चौधर का प्रतीक नहीं, बल्कि पैसे कमाने का जरिया भी बन गई है।

'सरपंची थयागी तो रै चौधर आज्या गी
या दुनिया घणी साणी तनै लूट कै खाज्या गी
तेरा मोर बणा ज्या गी, क्यो करै जोरा-जोरी
सरपंची लैणी सै अब कै मनै रै गोरी'[15]

लोकगीतों और रागनियों के विकल्प के तौर पर शुरू हुए इन पॉप गीतों में मनोरंजन के साथ-साथ हरियाणवी समाज, संस्कृति व सत्ता-विमर्श सामने आते हैं। अक्सर देखने में आता है कि हमारा बुद्धिजीवी वर्ग इन पॉप गीतों पर अश्लीलता और असभ्य का आरोप लगाकर इन्हें खारिज कर देता है। इनकी भाषा और विषय वस्तु को लेकर भी सवाल किए जाते हैं। मनोरंजन की नई जमीन पैदा कर रहे पॉप गीत समाज में हो रहे बदलाव को सबसे पहले रेखांकित करते हैं। इनसे नाक-भौं सिकोड़ने की बजाए इनके गंभीर विश्लेषण की आवश्यकता है।

संदर्भः

1. 'देस हरियाणा' पत्रिका, सम्पादक-डा. सुभाष चंद्र, कुरुक्षेत्र, अंक, पृ. 71
2. बोल-प्यारा माणस, लेखक व गायक-मन्जीत पांचाल
3. बोल-मोक्का जौबन का, लेखक-देव कुमार देवा, गायक-देव कुमार व अनु कादायन http:/youtu.be/-b5LPlLPUlal http:/youtu.be/15Y15J91804
4. बोल-म्हारे गाम का पानी, लेखक अजमेर सिंह, गायक राजू पंजाबी http:/youtu.be/8Z7ttFz68KQ
5. बोल-जाट की चौधर, लेखक अनिल गोदारा, गायक अनिल गोदारा एवं नीपू नेफेवाला http:/youtu.be/vDeXtDJaHOQ
6. वही 7. वही 8. बोल-गुजर का छोरा, लेखक व गायक-राहुल दाइमा
9. बोल-किसान गीत, लेखक व गायक राजेंद्र फौगाट
10. बोल-किसान गीत, लेखक व गायक-गजेन्द्र फौगाट
11. बोल-दर्द किसान का, लेखक-एमके लोध्रया गायक-अरूण अरूणा
12. बोल-रिश्ते, गायक-गजेंद्र फौगाट, लेखक-राजीव राठी
13. बोल-फैशन का दौर, गायक बबलू आलगलिया, लेखक कुमार संजीव http:/youtu.be/jXqVmVe10Ao
14. बोल-जाट आरक्षण, लेखक एवं गायक-बिट्टू सोखी http:/youtu.be/TzgGCXH-o
15. बोल-सरपंची लेनी सै, गायक-प्रवीन बस्सी, रस्मी यादव, लेखक प्रवीन एवं प्रदीप कादियान http:/youtu.be/5Zz-Sz9GT7W

सम्पर्कः 9992606227

●

ऋषिपाल मथाना

समरसता का संदेश

किसी भी देश के विकास के लिए सामाजिक एकता की आवश्यकता होती है और समाज में एकता तभी होगी, जब सामाजिक समता हो। इसके लिए हमें प्रयत्न करना होगा।

स्वभाव, क्षमता तथा वैचारिक विविधता तो हर समाज में होती है, लेकिन हमारे यहां भाषा, खान-पान, देवी-देवता, पंथ-संप्रदाय तथा जाति व्यवस्था में भी विविधता है। जब यह विविधता हमारी आत्मीयता में बाधा उत्पन्न करती है तो उपद्रव हो जाते हैं, नहीं तो यह विविधता हमारे समाज का अलंकार बन जाती है।

हमारे यहां सबसे अधिक चर्चा जातिगत व्यवस्था को लेकर होती है। जाति भेद के कारण सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं, जिनके कारण संघर्ष होता है। सामाजिक समरसता के लिए जातिगत व्यवस्थाओं को सही दिशा में काम करना चाहिए। हमारे देश के सभी पंथ सम्प्रदायों ने तथा समाज सुधारकों व संतों ने मनुष्यों में भेदभाव खत्म करने पर बल दिया है।

सजग, स्पष्ट व अचूक नीतियां तथा स्वार्थ भेद रहित समाज के ये सब कारक किसी देश के भाग्य परिवर्तन के लिए अनिवार्य हैं। हम सभी अपने-अपने परिवारों में ऐसा वातावरण बनाएं, जिससे सामाजिक समरसता को बल मिले।

अपने हितों के लिए औरों को नुक्सान पहुंचाना गलत है। विश्वास है कि प्रेम, भाईचारे का संदेश देने वाली धरती पर हमेशा हम सभी सौहार्दपूर्ण माहौल बनाकर रखने में कामयाब रहेंगे।

सम्पर्क-9468120000

●

धर्मेंद्र कंवारी की लघुकथाएं

बाबाजी

होटल बरगै कमरे म्ह एक बड्डे से सोफे पै बाबाजी बैठे थे। एसी फुल स्पीड म्हं हवा देण लागर्या था, मौसम कती चिल्ड। एक-एक करके लोग आवैं अर बाबा जी सबकी कड़पै हाथ धरदे। घंटी बजते ही बाबा जी ने एप्पल का फोन जेब तै काड्या अर बोल्लै

बाबा – हैलो

भक्त – जय हो बाबा जी, थोड़ी देर म्हं आपके डेरे पै कमिश्नर आशीर्वाद लेण नै आवै।

बाबा – मोस्ट वेलकम, पत्रकार बुला लिए कै।

भक्त – हां, आंदेए होंगे, मन्नै फोन कर दिया।

एक-एक करकै पत्रकार भीतर आण लाग्गै, गेल-गेल कमिश्नर भी आग्या। एक कुर्सी कमिश्नर खातर मंगवाई गई, पत्रकार नीचे एक शरण म्हं बैठे रहे।

बाबा जी – मन्नै तो अचानक बेरा पाट्या आप आण लागरै सो।

कमिश्नर – मन्नै बी चाणचक एक बेरा पाट्या, मन्नै आड़ै आणा सै। (बिचौलिए पत्रकार कानी देखकै दोनूं मुस्कुराएं)

बाबाजी खड़े होए अर एक चादर कमिश्नर कै कंधा पै गेर दी, भक्त भी खड़े होगै अर एक फोटो खिंचवाया। कार्यक्रम खत्म होया।

आगलै दिन अखबार म्हं खबर छपरी थी, कमिश्नर अर पत्रकारां नै बाबै का आशीर्वाद लिया।

खबर

शहर के बड्डे कारोबारी पै इनकम टैक्स की रेड पड़ी थी। एक रिपोर्टर सबेर तैए इनकम टैक्स की रेड पर नजर राख र्या था। आज सबेरै तो इस चक्कर म्हं उसनै कलेवा भी नहीं करया। शाम नै फोटो अर आधे पेज की जानकारी गेल आफिस पहुंचा। एक चा मंगवाई अर उसनै पीके खबर घड़ण बैठग्या। नून तै रिपोर्टर का मोबाइल बाज्या।

रिपोर्टर (हैलो) – नमस्कार जी

संपादक का फोन आया था, नमस्कार का जवाब नहीं मिला

संपादक – क्या खबर है?

रिपोर्टर – सर, सर्राफ के यहां बड्डी रेड पड़ी सै। कई लाख का गोलमाल सै।

संपादक – आपके पास क्या प्रमाण है?

रिपोर्टर – जी, रेड पड़ी है, मैंने पूरी जानकारी जुटाई है।

संपादक – मानहानि का केस होगा तो तुम भुगतोगे?

रिपोर्टर – जी...

संपादक – इस खबर को छोड़ो और खबर ये करो कि अक्षय तृतीया पर बाजार में क्या माहौल है? पता नहीं कहां ध्यान रहता है तुम्हारा?

फोन कटता है और रिपोर्टर कहता है... सुसरा...

बंडवारा

पहला – मैं तो यो घर लेऊंगा, मैं छोटा सूं

दूसरा – मैं तो इसमैं घणेए साल तै रहूं सूं, तूं प्लाट ले ले

तीसरा – रै मन्नै भी किम्मे देवोगे, मेरे हाड टूट लिए कमा-कमा कै, सबतै बड्डा सूं।

पहला – भाई मैं यो घर ताम्मैं ले ल्यो, मां-बाप भी ताहरै गेलै रवैंगे

दूसरा-तीसरा – रै भाई क्यूं छोह ठाण लागर्या, तूं छोटा सै यो घर तो तेराए सै, मां-बाप का जी भी तो तैरे धौरै लागै सै, हाम्म तो बाहर प्लाट म्हं ए बणा लेवांगे।

होग्या बंडवारा।

सरकार

हुक्के की गुड़गुड़ाहट गेल बात होरी थी।

एक बुड्ढ़ा – रै कत्ती नाश हो लिया, आड़ै सरकार नाम की तो चीज ए कोनी दिखदी।

दूसरा – कै होया रामफळ, क्यूं गुस्सा होरा?

पहला – रै बोहड़िया का ट्रांसफर नहीं हौके देण लागरैया, तीन बर एमएलए धौरै जा बी आए?

दूसरा – कोए बात नै हो जागा भाई, थोड़ी बाट देखणी पड़ैगी।

पहला – तेरी मुंह की करणी हौवै भाई, जै बाट दिखाकै भी बदली होजा तो सरकार म्हं कै कसर सै? काम होणा चहिए बस।

मैं बैठ्या-बैठ्या सोचूं था अक कोणसा सिस्टम बुरा सै।

पलटी

हैलो – हैलो

सुंदर – कै हाल सैं। मंगळ

मंगळ – ठीक हूं सुंदर भाई। आपणी सुणा

सुंदर – तेरी मैडम तो चुनाव हारण लागरी सै

मंगळ – बहम काढ दिए, तेरा नेताजी जित्तै कोनी

सुंदर – फेर के हौया, सरकार तो म्हारी ए बणैगी

मंगळ – या बात तो जचै सै मैंरै

सुंदर – फेर के इरादा सै, आजा पार्टी म्हं

मंगळ – भाई मैडम नै नहीं छोड सकदा, 20 साल होगै गेल रहंदे

सुंदर – काल नेताजी पूच्छैं तै तेरे बारै म्हं

मंगळ – कै पूच्छै था?

सुंदर – न्यूं जिक्र होया तो बोल्ले, जै मंगळ आपणै कानी होंदा तो उसकै भी काम हो जांदे अर आपां ने भी आच्छा वर्कर मिल जांदा। ईब तो बाळक भी उसकै नौकरी लागण जोगे हौरे सैं।

मंगळ – साच्ची म्हं या बात कही

सुंदर – धर्म तै, तेरी कसम

मंगळ – भाई जी तो मेरा भी करै सै आण नै, मैडम गेल रहकै मन्नै मिल्या ए कै सै?

सुंदर – तूं कवै तो भाई बात चलाऊं

मंगळ – चला ले भाई, भाड़ म्हं जावै मैडम, बाळक तो चिपवाणै ए सैं।

बिजली

एक – भाई इस सरकार नै तो आग्गै लोग एक बी बोट ना दें।

दूसरा – कत्ती नाश होर्या सै भाई, इन ससुरा नै न्यूं भी कोनी बेरा अक किस तरियां सरकार चलाणी सै।

टाबर – बाबू बिजळी आग्गी?

बाबू – रै तोल्ला सा छात्त पै जाकै तार गेर ले, सानी तो काट लेवां या सरकार तो सुसरी न्यूं ए चाल्लैगी।

सम्पर्क : 99965-48479

दानवीर सेठ चौधरी छाज्जूराम

❑प्रिंस लाम्बा

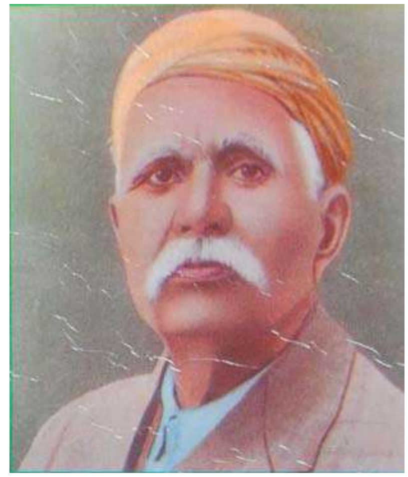

समाज सेवक व दानवीर चौधरी छाज्जूराम हरियाणा में ही नहीं, बल्कि भारतवर्ष में भी अपनी एक विशेष पहचान रखते है। इनका जन्म 27 नवंबर 1861 को आधुनिक जिला भिवानी, तहसील बवानी खेड़ा में एक साधारण किसान चौधरी सालिगराम के घर पर हुआ। इनका बचपन अभावों, संघर्षों, और विपत्तियों में व्यतीत हुआ लेकिन अपनी लगन,परिश्रम और दृढ़ निश्चय से सफलता के शिखर तक पहुंचे।

चौधरी छाज्जूराम के पूर्वज झुंझनू (राज.) के निकटवर्ती गांव लाम्बा गोठड़ा से आकर भिवानी जिले के ढाणी माहू गांव में आकर बस गए। इनके दादा मनीराम ढाणी माहू को छोड़कर सिरसा जा बसे। लेकिन कुछ दिनों के बाद इनके पिताजी चौ.सालिगराम अलखपुरा आकर बस गए (उस समय गांव अलखपुरा, हांसी जागीर में आता था और इस समय हांसी जागीर जेम्स स्किनर के बेटे अलेक्जेंडर को दे दी गयी थी। इसी के नाम पर गांव का नाम अलेक्सपुरा पड़ा गांव वालों ने इसको अलखपुरा कहा तो,गाँव का नाम अलखपुरा पड़ा)।

छाज्जूराम की शिक्षा में बचपन से ही रुचि रही। आर्थिक स्थिति अच्छी न रहने के बावजूद भी अपनी प्रारम्भिक शिक्षा (1877) बवानी खेड़ा के स्कूल से प्राप्त की। मिडल शिक्षा (1880) भिवानी से पास करने के बाद उन्होंने रेवाड़ी से मीट्रिक की परीक्षा (1882) में पास की। परिवार की स्थिति अच्छी न होने के कारण आगे की पढ़ाई न कर पाये। इनकी संस्कृत, अंग्रेजी, महाजनी, हिंदी व उर्दू भाषा पर पकड़ होने के कारण भिवानी में एक बंगाली इंजीनियर एस.एन. राय के बच्चों को एक रूपये प्रति माह के हिसाब से ट्यूशन पढाने लगे। जब राय साहब कलकत्ता चले गए तो छाज्जूराम को भी उन्होंने कलकत्ता बुला लिया। जैसे-तैसे कर के उन्होंने किराये का जुगाड़ किया और कलकत्ता चले गए। यहां पर उनको छः रु. प्रति माह मिलते थे।

सेठ छाज्जूराम का विवाह बाल्यावस्था में डोकहा गांव जिला भिवानी में हुआ था लेकिन विवाह के कुछ समय बाद ही इनकी पत्नी का हैजे की बीमारी के कारण देहांत हो गया। इनका दूसरा विवाह 1890 में भिवानी जिले के ही बिलावल गांव में हुआ। इनके तीन पुत्र हुए।

कलकत्ता में रहते हुए उनका सम्पर्क मारवाड़ी सेठों से हुआ, जिन्हें अंग्रेजी भाषा का ज्ञान कम था लेकिन छाज्जूराम को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान था। इनके पत्र लिखने का काम छाज्जूराम ने शुरू कर दिया, जिस पर सेठों ने इनको मेहनताना देना शुरूकर दिया। पत्र-व्यवहार के कारण इनको व्यापार का ज्ञान हो गया एवं व्यापार सम्बन्धी कुछ गुर भी सीख लिए। कुछ समय बाद इन्होंने बारदाना (पुरानी बोरियों) का व्यापार शुरू कर दिया। यही व्यापार उनके लिए वरदान साबित हुआ और उनको 'जुट-किंग' बना दिया। शेयर भी खरीदने शुरू कर दिए। एक समय आया जब वो कलकत्ता की 24 बड़ी कम्पनियो के शेयर होल्डर थे और कुछ समय बाद 12 कम्पनियो के निदेशक भी बन गए उस समय इन कम्पनियो से 16 लाख रुपए प्रति माह लाभांश प्राप्त हो रहा था।

इसीलिए पंजाब नेशनल बैंक ने उनको अपना निदेशक रख लिया लेकिन काम की अधिकता होने के कारण उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। एक समय आया जब उनकी सम्पति 40 मिलियन पार कर गयी थी। इन्होंने 21 कोठी कलकत्ता में (14 अलीपुर, 7 बारा बाजार) में बनवायी। इन्होंने एक महलनुमा कोठी अलखपुरा में व एक शेखपुरा (हांसी) में बनवायी। भिवानी और बवानी खेड़ा में 1600 बीघा जमीन खरीदी। इनके पंजाब के खन्ना में रुई तथा मुगफली के तेल निकलवाने के कारखाने भी थे। चौ. छोटूराम को एफ.ए. करवाने वाले चो.छाज्जूराम ही थे।

सेठ छाज्जूराम ने रविंद्रनाथ टैगोर के शांति निकेतन, लाहौर के डी. ए. वी. कॉलेज, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस हो, गुरुकुल कांगड़ी तथा हिसार रोहतक की जाट संस्थाओं को दान दिया। अकालों में, प्लेग और इन्फ्लुएन्जा की महामारियों में आर्थिक सहायता की। भिवानी में उन्होंने अपनी बेटी कमला की याद में (1928) पांच लाख रूपये से 'लेडी-हेली' हस्पताल का निर्माण करवाया। अलखपुरा में उन्होंने कुए एवं धर्मशाला भी बनवाई।

सेठ छाज्जूराम दान-दाता ही नहीं थे बल्कि वो देश भगत भी थे उनकी आंखों में भारत की आजादी का सपना था। जब 17 दिसम्बर ,1928 को भगतसिंह ने अंग्रेज अधिकारी सांडर्स को गोली मार कर हत्या कर दी तो वो भाभी दुर्गा व उनके पुत्र को साथ लेकर कलकत्ता में सेठ छाज्जूराम की कोठी पर पहुंचे। यहां भगतसिंह लगभग ढ़ाई महीने तक रहे जो उस समय ऐसी कल्पना करना भी संभव नहीं था। उनका मन कभी भी राजनीति में नहीं लगा लेकिन फिर भी चौ.छोटूराम के आग्रह पर संयुक्त पंजाब में 1927 में एम.एल.सी.भी रहे। 7 अप्रैल 1943 को सेठ छाज्जूराम जी का देहान्त हो गया।

संदर्भः

शिवा नंद मलिक -SETH CHAJJU RAM A LIFE WITH A PURPOSE

डॉ.एम.एम.जुनेजा -कशन सेवी लाजपतराय

जे.के.वर्मा - एक और भामाशाह : महान दानवीर सेठ शिरोमणि चौ.छाज्जूराम लाम्बा

प्रताप सिंह शास्त्री -लखपुरा से कलकत्ता

लेख - इंद्रसिंह लाखलन, हवासिंह सांगवान (पब्लिश)

संपादक -प्रिंस लाम्बा

सम्पर्क : 97291-12777

हरियाणवी लोक मानस और विकास का मॉडल

❑कृष्ण कुमार

हरियाणा निर्माण की आधी सदी गुजर चुकी है। पिछले पचास वर्षों में समाज की चाल-ढाल और रंग रूप में बदलाव आया है। इस बदलाव को नेताओं और नौकरशाहों ने विकास बताया और प्रचारित किया कि हम आधुनिक मोड में आकर हर क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं। लेकिन बुद्धिजीवियों और जागरूक नागरिकों ने महसूस किया कि हम वर्तमान और अतीत में एक साथ यात्रा कर रहे हैं। हम आधुनिक वस्तुओं से घिरे हुए सामन्ती मूल्यों को ढो रहे हैं। हमारी समस्याएं और चुनौतियां नया रूप धारण कर चुकी हैं। हमारे विकास में राजनैतिक क्षमता, आर्थिक गतिविधियां और सांस्कृतिक मूल्यों का गठजोड़ नहीं है।

गांवों के बाहर खड़ा विकासपट्ट हमारे एकांगी विकास की मुकम्मल कहानी बयां करता है। इस पर आंगनवाड़ी, पंचायत घर, बस स्टैंड, पशु अस्पताल, चौपाल, जलघर और गलियों आदि पर खर्च की राशि का ब्यौरा सिलसिलेवार ढंग से लिखा होता है। पिछले बीस-पच्चीस वर्षों से इन ढांचों के निर्माण में तेजी आई है, लेकिन पब्लिक से इनका जुड़ाव नहीं हो पाया है। लोगों में इनके प्रति अजीब सी बेरूखी है। वे इनके गेट, खिड़की और दरवाजे गायब कर देते हैं और कुछ समय बाद इनकी ईंटें तक उखाड़ ले जाते हैं।

गांवों में सार्वजनिक स्थलों जैसे तालाब-फिरनी की घेराबंदी करना, गली पर कब्जा करना और अपने लिए इस्तेमाल होने वाले रास्तों को तंग करना आम बात है। जनता के इस रवैये से विकास के पैरोकार और राजनेता यह प्रतिक्रिया देते हैं कि सरकार जनता को सुधारना चाहती है लेकिन लोग सुधरने के लिए तैयार नहीं हैं। वे इस तथ्य को दरकिनार कर देते हैं कि सामाजिक ढांचों को बदले बिना सतत् विकास की प्रक्रिया को हासिल नहीं किया जा सकता। भौतिक विकास की ईमारत सांस्कृतिक मूल्यों पर खड़ी होती है। आप किसी देश से तकनीक, विज्ञान और आधुनिक उपकरण उधार ले सकते हो, लेकिन उसको जज्ब करने वाला स्वभाव, मूल्यों और चेतना को निर्मित करना पड़ता है उसका स्थानांतरण संभव नहीं है। आंतरिक परिवर्तन के बिना बाह्य परिवर्तन स्थायी और कारगर नहीं हो सकता। इसी कारण हमारे विकास के मॉडल में आमजन की प्राथमिकताएं, सोच और दर्शन एक तरफ है तथा सत्ताधारियों की आंकड़ेबाजी और विकास के पैमाने दूसरी ओर। अभी तक दोनों में मिलन नहीं हो पाया।

पिछले पचास वर्षों में हरियाणवी समाज के मानस को बदलने के लिए न किसी सरकार ने ध्यान दिया न पंचायत समिति ने और न पढ़े-लिखों की जमात ने। हरियाणा में ऐसे इक्का-दुक्का ही गांव मिलेंगे, जहां पुस्तकालय और रंगशालाएं हों। पुस्तकें और सांस्कृतिक गतिविधियां हमारी जिंदगी से इस तरह से गायब हैं कि किसी भी प्रकार के चुनावी एजेंडे तक में शामिल नहीं हैं। पुस्तकें हमारी जिंदगी में घुसपैठिया की तरह हैं। हमारे घरों में बेकार और व्यर्थ की वस्तुएं भी स्टोर में अपनी जगह बना लेती हैं, लेकिन घर का कोई कोना किताबों के लिए नहीं है। हमारी मानसिक खुराक किताबें नहीं, बल्कि कुण में रखी में लाठी-जेळी और गंडासी है। गांवों में दुकान पर जासूसी उपन्यास, दो नंबर की किताबें, अश्लील सामग्री, द्विअर्थी गीतों की सीडी, वीडियो गेम तो मिल जाएंगे, लेकिन कोई साहित्यिक और स्तरीय किताब देखने को नहीं मिलेगी। हमारे आसपास गैर जरूरी चीजें इकट्ठी हो रही हैं। हमारे आसपास बदलाव हो रहा है, लेकिन हमारी सृजनात्मक शक्ति सोई पड़ी है। हमारे विकास का मॉडल ग्रांटों को ठिकाने लगाने वाला तरीका भर रह गया है, जनमानस को बदलने की प्रक्रिया नहीं।

हम सुबह से शाम तक विज्ञान निर्मित वस्तुओं से घिरे हुए हैं, लेकिन हमारा दृष्टिकोण अवैज्ञानिक है। धार्मिक रूढ़ियां और पुरातनपंथी विचार हमारी चेतना पर हावी हैं। समाज में कथित अवतारों, ज्योतिषों, बाबाओं और तांत्रिकों की लीलाएं चलती रहती हैं। उनकी वाणी 'जगत मिथ्या है, मिथ्या है' का अखंड कीर्तन करती है। वे भौतिक समस्याओं का समाधान पराभौतिक जगत में ढूंढ रहे हैं। उनके पास हर मर्ज का शर्तिया इलाज वाली विद्या है कि 'बीमारी का कारण पूर्वजन्म है और समाधान पुनर्जन्म है'। अगले जन्म के इस सुख-छलावे की विश्वसनीयता के लिए भक्तों को अपने गुरु-बाबाओं को इसी जन्म में तन-मन-धन अर्पित करना पड़ता है। यह अकारण नहीं है कि जैसे-जैसे समस्याएं और चुनौतियां बढ़ रही हैं वैसे-वैसे नई-नई किस्म के धर्माचारी कुकुरमुत्ते की तरह उग रहे हैं। विडम्बना यही है कि अपने भक्तों और अनुयायियों को 'माया' के परित्याग का प्रवचन देने वाले बाबाओं और डेरों के पास अकूत दौलत है, काली अर्थव्यवस्था का बड़ा कारोबार है। दरअसल जनता में छद्म चेतना पैदा करने के ये कारखाने व्यवस्था के सेफ्टी वाल्व हैं। जब व्यवस्था आमजन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाती तो उसे अंधविश्वास एवं धार्मिक दायरों में सक्रिय कर देती है।

अनपढ़ों के साथ-साथ पढ़े-लिखे लोगों की अच्छी खासी तादाद जादू टोने, तंत्र-मंत्र, ज्योतिष और लाल किताब के चक्कर में है। वे मुहूर्त देखकर घर से निकलते हैं। जन्मपत्री और राशिफल उनकी दिनचर्या के हिस्से हैं। समाज में वैज्ञानिक चेतना का इस कद्र अभाव है कि लड़का उत्पन्न करने की चाहत में औरतों को रात में चौराहों पर पूजा करते हुए, शमशान घाट से हड्डी उठाते हुए तथा पीपल के पेड़ के नीचे दीया जलाते हुए देखा जा सकता है। शरीर विज्ञान के अनुसार भ्रूण के लिंग के लिए पुरुष जिम्मेवार है, औरत नहीं। अमुक-तमुक क्रियाकलाप भ्रूण का लिंग नहीं बदल सकते यह सामान्य ज्ञान भी हमारी अनुभूति का हिस्सा नहीं बन पाया है। ज्ञान हमारे सोचने के तरीकों को

नहीं बदल पा रहा है और वैज्ञानिक शब्दावली के खोल में अंधविश्वास से जनमानस में स्वीकृति पा लेता है।

पिछले बीस-तीस वर्षों से गांव में शनिदेव और काली माता के मंदिर बनते जा रहे हैं। हमारी भाग्यवादी मनोवृत्ति सामाजिक-राजनैतिक चुनौतियों से जूझने की बजाए कतराने की प्रवृत्ति पर बल देने लगी है। विचारहीन आस्था समाज में विघटन को जन्म देती है। आज पब्लिक के लिए मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे-चर्च प्रेम, करूणा, दया, अहिंसा, सत्य, संयम की साधना के केन्द्र नहीं, बल्कि इच्छाओं एवं कामनाओं को पूरा करने के ढांचे भर रह गए हैं।

आजकल नौजवान का बड़े-बूढ़ों के पांव छूना एक रिवाज सा बन गया है। इससे लग सकता है कि इनके हृदय में वृद्धों के प्रति सम्मान और श्रद्धा है। पुरानी पीढ़ी के प्रति संवेदनशीला का पता घर में उनकी हैसियत और अहमियत से चलता है। घरों में उनकी जगह लगातार सिकुड़ती जा रही है। नई पीढ़ी ने उनके तजुर्बों, अनुभवों और सुक्तिपरक बातों को फालतू और गैरजरूरी घोषित कर दिया है। बुजुर्गों को लगता है कि उनके बच्चे बिगड़ रहे हैं और युवाओं को लगता है कि उनके मां-बाप जमाने की दौड़ में पिछड़ रहे हैं, वे मॉडर्न नहीं हैं, स्मार्ट नहीं हैं।

गांवों की गलियों में ब्यूटी पार्लर व हेयर कटिंग-स्पा की दुकानें खुल रही हैं। युवा पीढ़ी कृत्रिम तामझाम से चमकने वाले शारीरिक सौंदर्य के प्रति सचेत है, लेकिन दिमाग में पोर्न साइटों की सामग्री जमा हो रही है। फेसवाशर, हेयर क्लिनर और स्प्रे उसकी रूप सज्जा के हिस्से बन चुके हैं। वह हर पल सेल्फी मूड में रहता है। व्हाटसैप फेसबुक उनके ज्ञान के स्रोत हैं, जिनमें उन्मादी एवं अप्रमाणिक सूचनाओं की भरमार है।

हरियाणवी लोगों का विश्वास था मोटा खाना और मोटा पहनना, लेकिन अधिकांश लोगों ने इस जीवन शैली को छोड़ दिया है। हम बिना सोचे समझे उपभोक्तावाद की हवा में बहने लगे हैं अर्थात् खाओ, कमाओ और उड़ाओ। ब्रांडिड कपड़े, महंगे मोबाइल, सपोर्ट बाईक/कार इज्जत और सम्मान से जुड़ चुके हैं। अब कोल्ड ड्रिंक, पीजा, बर्गर, फास्टफूड खाद्य सामग्री के हिस्से हैं। कोल्ड ड्रिंक हमारी संस्कृति का अंग बन चुकी है। हर उत्सव और पार्टी इसके बिना अधूरी है। शीतल पेय पदार्थ के रूप में लस्सी का प्रयोग न के बराबर है, जबकि स्वास्थ्य के लिए लस्सी लाभदायक है। हर देशकाल के लोगों का संबंध उनकी जलवायु में पैदा होने वाली फसलों और वातावरण से होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन को चखना अलग बात है, उसे आदतों में शुमार करना अलग बात है।

किसी भी जाति के दर्शन चिंतन का स्वरूप गीतों-गजलों और मेले-ठेलों के माध्यम से झलकता है। आजकल के गीतों में जातीय गौरव को त्याग समर्पण व प्रेम जैसे गुणों की बजाए मनी, मसल और पावर के में चित्रित किया जा रहा है। हमारे युवा नशे और हथियारों से अपनी पहचान जोड़ रहे हैं।

हमारी संस्कृति के अगुवा रंगकर्मी जनमानस की भावनाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप कला के रूपों को नहीं रच पाए हैं। यह सोचने की बात है कि डीजे पर थिरकने वाले अधिकांश लोगों की पहली पसंद पंजाबी गीत हैं। दूसरे नंबर पर फिल्मी गीत आते हैं और तीसरी बारी हरियाणवी गीतों की है। इनकी संख्या और धुनों को आप उंगलियों पर गिन सकते हैं।

शिक्षा-दीक्षा पाकर बने नौकरशाहों, शिक्षकों, बुद्धिजीवियों और पेशेवर लोगों का एक वर्ग ग्रामीणों की सोच के पिछड़ेपन पर आंसू बहाता है। वह गांव के सौंदर्य से अभिभूत रहता है और गाहे-बेगाहे उसके सौंदर्य के कसीदे पढ़ता है। लेकिन शायद ही कोई सफल व्यक्ति अपने गांव में जाकर समस्याओं और चुनौतियों को समझने व हल करने की कोशिश करता हो। ज्यादा से ज्यादा मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारा या गऊशाला के नाम की पर्ची कटाकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझता है। यहां तक कि आरक्षित जातियां, जाति उत्पीड़न से मुक्ति का प्रयास तो करती हैं, लेकिन जाति संरचना की दार्शनिकता पर प्रहार नहीं करती। वे इसके माध्यम से अपना और अपने बच्चों का भविष्य तो सुरक्षित करना चाहते हैं, लेकिन विकास की दौड़ में पीछे छूट गए भाई-भतीजों और बंधुओं की चिंता नहीं सताती।

हरियाणवी समाज कठिन दौर से गुजर रहा है। हमारी दबी हुई मध्यकालीन और सामंती पहचान मुखर होने लगी है। हमारी आधुनिकता अंधी गली में भटक रही है। हर दल और नेता अपने मान-सम्मान-अपमान को जनता से ऊपर रखकर उसे गृह युद्ध में धकेल रहा है। सरकारी पदों को बढ़ाने या नए पद सृजित करने की बजाए लगातार कम होते सरकारी पदों पर आरक्षण के जरिए आसीन होने की होड़ मची है। हमारे नेता भी सरकारी क्षेत्रों में फैलते हुए निजीकरण की चुनौतियों और संभावनाओं पर विचार-विमर्श नहीं करते, बल्कि जाति व धर्म के नाम पर इच्छाओं को भड़काकर अपने राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। हमारे प्रतिनिधि राज्य और जनता के बीच कड़ी का काम नहीं करते बल्कि सौदेबाजी करते नजर आते हैं।

समाज भौतिक दृष्टि से आगे बढ़ रहा है। उसके आर्थिक ढांचे में बदलाव आ रहा है, लेकिन सांस्कृतिक ढांचे को बदले बिना सतत् विकास संभव नहीं है। ऐसे लगता है कि समाज ऊपरी तौर पर बदल रहा है, लेकिन उसके मानस में रूढ़ियों का आदर्शीकरण, मिथकों का वैज्ञानिकीकरण और ज्ञान-विज्ञान के प्रति विमुखता बढ़ती जा रही है।

उपभोक्तावादी जीवन शैली और उग्र रूढ़िवादी मानसिकता का गठजोड़ हमें अंधकार युग में धकेल रहा है। जहां आधुनिक विचारों की बजाए आधुनिक वस्तुओं का बाहुल्य है। हमारे विकास के मॉडल में मूल्यों की बजाए वस्तुओं पर जोर ज्यादा है। हमने मूल्यों के अनुरूप औद्योगिक सभ्यता का निर्माण नहीं किया, बल्कि औद्योगिक सभ्यता ने हमारे शाश्वत मूल्यों पर प्रहार किया है। हमारे सारे विचार पूंजी और भौतिक वस्तुओं के इर्द-गिर्द घूमने लगे हैं। मूल्यों के अभाव में पारम्परिक रूढ़िवादिता मजबूत होने लगी है। पश्चिम की नकल और देशज रूढ़ियों का गुणगान एक ही सिक्के दो पहलू हैं।

मानव का इतिहास संभावनाओं का इतिहास है। हमें जरूरत है एक नया यूटोपिया रचने की जिसमें न पश्चिम की नकल हो और न अतीत का अंधा अनुसरण। किसी भी समाज के मूल्यांकन का आधार आधुनिक वस्तुएं नहीं, बल्कि उसके निवासियों की तार्किकता, विवेकशीलता, सामाजिक गतिशीलता, परानुभूति है।

स्वर्ण जयंती का यह अवसर महज अनुष्ठान बनकर न रह जाए, हमें जरूरत है अतीत का जायजा लेकर उससे सबक लेने की। विकास के प्रतिमान तय करने की और उन्हें हासिल करने के लिए ठोस नीति और नए कार्यक्रम बनाने की। ***सम्पर्क : 94165-50290***

आने वाले सालों में क्या

▫सुरेन्द्र पाल सिंह

एक घटना का जिक्र करते हुए चर्चा को विस्तार देने का प्रयास रहेगा। पानीपत से समालखा के लिए हरियाणा रोडवेज की बस में एक ग्रामीण प्रौढा अपना सामान रखते हुए चढ़ गई। कन्डक्टर ने उसे अपने जाने-पहचाने लहजे में सामान छत पर रखने को कहा। महिला की इस दलील को कि उसे थोड़ी दूर के लिए सामान चढ़ाना और उतारना मुश्किल रहेगा, बदतमीजी के साथ अनसुना कर दिया। उस महिला ने अपना सामान नीचे उतारा और किसी को पैसे देकर छत पर रखवाया। थोड़ी देर में समालखां पहुंचने पर उसने एक युवक से सामान उतारने के लिए सहायता माँगी तो चिर परिचित शैली में जवाब मिला, 'मैं के तेरा नौकर लाग रहा सूं' कन्डक्टर का भी जवाब ऐसा ही था। बाकी सवारियाँ इत्मीनान से इस तमाशे का आनंद ले रही थी। ऐसे में सूट बूट पहने एक पंजाबी सज्जन ने पूरे सम्मान के साथ महिला का सामान उतारने में सहायता की। उसी बस में बैठे हुए एक रिटायर्ड फौजी अफसर कर्नल बी एस त्यागी को इस घटना ने मानसिक रूप से झकझोर कर रख दिया। फलस्वरूप, कर्नल त्यागी ने इस घटना का जिक्र करते हुए एक पुस्तक लिखी 'हिस्ट्री आफ हरियाणा' जिसमें उन्होंने हरियाणा की सांस्कृतिक विरासत और पिछड़ेपन की जड़ों को ढूंढने का प्रयास किया।

गणतंत्र दिवस पर दिखाई जाने वाली झांकियों और लोक सम्पर्क विभाग द्वारा प्रस्तुत हरियाणा की स्टीरियो टाईप छवि से हटकर दैनंदिन जीवन की सकारात्मक या नकारात्मक बारीकियों के माध्यम से ही हरियाणा के भविष्य की वस्तुपरक तस्वीर बनाई जा सकती है। तस्वीर आशावादी नजरिये से ही बनाई जा रही है, इसलिए इस तस्वीर में सुन्दर रंग, मीनाकारी और बेलबूटे तो होंगे ही, लेकिन ये भी जरुरी है कि उस आशावाद में संभावनाओं का समावेश भी हो। ताकि यह महज कल्पनालोक की उड़ान ही बनकर न रह जाए। खींचते हैं एक ऐसी तस्वीर जिसमें हमारे अपने हरियाणा की आने वाले दस वर्षों की झलकी दिखाई दे।

1. हुँकार और गर्जना की भाषा भूतकाल की वस्तु ही रह पाएगी। हरियाणवी समाज हरियाणा में रहने वाले तमाम बाशिंदों का है। न्याय, समता और भाईचारे के सुर होंगे हमारे दैनिक आचरण का अभिन्न हिस्सा। सामाजिक न्याय के प्रति संवेदनशीलता बढ़ेगी और सहनशील वातावरण में आपसी मेलजोल की भावना से निपटाए जाएंगे सामाजिक मुद्दे।

2. लिंग अनुपात करना होगा बराबर बराबर। सिर्फ देश में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में इतने निम्न लिंग अनुपात की कालिख हरियाणवी समाज धोकर रहेगा। बेहतर लिंग अनुपात वाले इलाकों के अनुभवों से सबक लेते हुए हरियाणवी समाज को अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाना होगा। लड़कियां हर क्षेत्र में अव्वल आ रहीं हैं, ये देखने के बाद ये समझ तो बनेगी ही कि इन्हें भी जिन्दा रहने, फलने- फूलने, पढ़ने-लिखने, खेलने-कूदने का पूरा हक है।

3. समान शिक्षा, बेहतर शिक्षा और सभी के लिए शिक्षा उपलब्ध करानी होगी। शिक्षा के बाज़ारीकरण और मुनाफाखोरी के सिलसिले को विराम दिया जाएगा। बेहतर और समान शिक्षा के लिए पूरा हरयाणवी समाज एकजुटता दिखाते हुए इसे मूलभूत अधिकार के रूप में स्थापित कर पाएगा।

4. सबके लिए रोजगार की संभावनाओं को पैदा करते हुए ये समझ बनानी होगी कि ये संघर्ष आपसी सिर फुटौव्वल से सफल नहीं हो पायेगा, बल्कि अधिकतम रोजगार पैदा करने की नीतियां लागू की जाएंगी।

5. कृषि घाटे का सौदा न होकर एक सतत रोजगार और पोषण का माध्यम बनेगी। फसलों के दाम इतने मिलेंगे कि हर किसान को कम से कम न्यूनतम वेतन की गारन्टी हो। भूमिहीन परिवारों को कम से कम 300 दिनों के रोजगार की गारंटी सरकार की तरफ से करनी होगी।।

6. संविधान संगत निर्वाचित पंचायतें बिना गैर-सवैंधानिक पंचायतों की दखलंदाजी के ग्रामसभा के माध्यम से समुचित निर्णय लेकर काम करेगी। निर्णय प्रक्रिया में जनता की सीधी भागीदारी सुनिश्चित होगी जिसमें महिलाएं, अल्पसंख्यक, सामाजिक रूप से उपेक्षित समूहों की भागीदारी अनिवार्य और प्रभावी होगी।

7. ग्रामीण क्षेत्रों को आत्मनिर्भर और मजबूत बनाने के लिए छोटे पैमाने पर उत्पादन को प्रोत्साहित करते हुए ग्रामीण औद्योगिकरण को बढ़ावा देना होगा। सहकारी और सामुदायिक उत्पादक समितियों के गठन को समर्थन और सुविधाजनक बनाया जाएगा। परिस्थितयों के अनुकूल प्राथमिक क्षेत्र की आजीविका जैसे कृषि, बागवानी, पशुपालन, डेयरी और वानिकी पर विशेष फोकस करना होगा।

8. फसल बीमा को बैंक ऋण से ना जोड़ कर सभी के लिए मान्य करना होगा जिसका 75 प्रतिशत प्रीमियम सरकार द्वारा वहन किया जाएगा।

9. विभिन्न प्रोत्साहन योजनाओं के माध्यम से जैविक खेती को पहल देते हुए रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों को चरणबद्ध तरीके से बाहर का रास्ता दिखाना होगा।

10. अनुपस्थित भूस्वामियों और गैर-कृषकों के स्वामित्व को सीमित करते हुए यह अनिवार्य करना होगा कि कोई भूमि बेनामी ना रहे। अधिशेष और अन्य भूमि का भूमिहीन परिवारों में बँटवारा किया जायेगा।

11. वैधानिक शक्तियों से लैस एक 'किसान आय आयोग' की स्थापना

करनी होगी जो किसानों की आय की रक्षा और निगरानी करेगा।

12. वंचित समुदायों की निष्पक्ष पहचान के लिए 'समान अवसर आयोग' की स्थापना करनी होगी जो राज्य की नीतियों की सामाजिक लेखा परीक्षा (सोशल ऑडिट) और सकारात्मक प्रणाली की स्थापना करे।

13. सामाजिक न्याय की नीतियों में वर्गीकृत असमानता (गैर-पिछड़े बनाम पिछड़े की बजाए कम और अधिक पिछड़े) और बहुवर्गीय असमानता (लिंग, वर्ग, जाति आधारित) को रेखांकित करना होगा और कई प्रकार की वंचनाओं के शिकार समूहों के लिए (जैसे गरीब, ग्रामीण, दलित लड़की) विशेष प्रावधान करने होंगे।

14. जाति आधारित असमानता की समाप्ति के लिए विभिन्न जातियों की संख्या और उनकी शैक्षिक एवं आर्थिक स्थिति पर व्यवस्थित जानकारी इकट्ठी करके वंचितों के लिए एक बहुआयामी सूचकांक विकसित करना होगा जिसमे जाति के साथ साथ लिंग, ग्रामीण/शहरी, परिवार की आर्थिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि आदि के अनुसार अभाव अंकों की गणना करते हुए वेटेज निर्धारित किया जायेगा।

15. स्थानीय ज्ञान और भाषा को प्रोत्साहित करना होगा। हमारी विरासत और संस्कृति के विकास और उसके प्रति सम्मान की भावना को प्रोत्साहित किया जायेगा।

16. जाति आधारित और परिवार आधारित राजनीति को खत्म करना होगा जो सभी के प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को प्रोत्साहित करके ही संभव है। चुनाव और धनबल के आपसी रिश्ते को वैधानिक प्रावधानों से कमजोर किया जायेगा।

आने वाले दस वर्षों में हरियाणा राज्य की निखरी और प्रगतिशील तस्वीर बनाने के लिए कितने ही ऐसे कदम उठाने की आवश्यकता पड़ेगी जिनका जिक्र यहां न भी आया हो। अगर सामाजिक पिछड़ेपन को दूर करते हुए सामाजिक-राजनैतिक पहलुओं में लोकतंत्र की स्वस्थ परंपराओं को लागू किया जाए तो हरियाणवी समाज में चमत्कारिक परिवर्तन की संभावनाओं के बीज मौजूद है। *सम्पर्क: 9872890401*

●

टेसू राजा अड़े खड़े

रामधारी सिंह दिनकर

टेसू राजा अड़े खड़े
मांग रहे हैं दही बड़े।

बड़े कहां से लाऊं मैं?
पहले खेत खुदाऊं मैं,
उसमें उड़द उगाऊं मैं,
फसल काट घर लाऊं मैं।
छान फटक रखवाऊं मैं,

फिर पिट्ठी पिसवाऊं मैं,
चूल्हा फूंक जलाऊं मैं,
कड़ाही में डलवाऊं मैं,
तलवार सिकवाऊं मैं।

फिर पानी में डाल उन्हें,
मैं लूं खूब निचोड़ उन्हें।
निचुड़ जाएं जब सबके सब,
उन्हें दही में डालूं तब।

नमक मिरच छिड़काऊं मैं,
चांदी वरक लगाऊं मैं,
चम्मच एक मंगाऊं मैं,
तब वह उन्हें खिलाऊं मैं।

बेटी की सगाई

डा. आर. अस्थाना

बिल्ली मौसी की बेटी की
पक्की हुई सगाई।
अगले दिन बजने वाली थी
उनके घर शहनाई।
सब चूहों के घर बिल्ली ने
संदेशा भिजवाया।
मगर एक भी चूहा उनके
चकमे में न आया।
चूहों ने चिट्ठी भिजवाई,
हम सब हैं बीमार।
दावत में आने से पहले
आया तेज बुखार

चूहा

निरंकार देव सेवक

वह देखो वह आता चूहा,
आंखों को चमकाता चूहा।
मूंछों में मुस्कराता चूहा,
लंबी मूंछ हिलाता चूहा।
मक्खन रोटी खाता चूहा,
बिल्ली से डर जाता चूहा।

नन्हें पंख

चंद्रपाल सिंह यादव मयंक

चिड़िया चली चांद के देश,
नन्हें-नन्हें पंख पसारे।
साथ न कोई संगी-साथी,
चली अकेली, बिना सहारे।
ऊपर को वह उड़ती जाए,
बड़े मजे से गाना गाए।
अपने नन्हें पंख हिलाती,
ऊंचा उड़ना उसको भाए।

चूहे जी पहुंचे थाने

प्रकाश पुरोहित

मूंछे ताने पहुंचे थाने
मूंछे ताने पहुंचे थाने,
चूहे जी इक रपट लिखाने।
बिल्ली मौसी हवलदार थीं,
एक दो नहीं, तीन चार थीं।
पहली ने चूहे को डांटा,
दूजी ने मारा इक चांटा।
बढ़ी तीसरे आंखे मींचे।
चौथी दौड़ी मुट्ठी भींचे।
कांप उठे चूहे जी थर-थर,
सरपट भागे अपने घर पर।
फिरते हैं अब तक घबराए,
लौट के बुद्धू घर को आए।

करनाल : कर्ण नगरी से स्मार्ट सिटी

❑दुलीचन्द रमन

आज जब हम करनाल की ऐतिहासिक यात्रा पर नजर दौड़ाते हैं तो यह महाभारतकालीन शहर करनाल अपनी जड़ें इतिहास में तलाशता हुआ दानवीर कर्ण से जुड़ता है। कर्णताल, कर्ण झील, कर्ण पार्क, कर्ण स्टेडियम इसके प्रमाण हैं कि वर्तमान में भी यह अपनी पुरातन पहचान समेटे हुए है। कभी सुरक्षा की दृष्टि से चाक-चौबंद और किलेबंदी के रूप में करनाल शहर के पांच गेट अभी भी सलामत हैं। जिनमें बांसो गेट, जुंडला गेट, कलन्दरी गेट, कर्ण गेट व सुभाष गेट हैं। कभी करनाल इन्हीं गेटों में ही सिमटा शहर था, जिसमें एक बाजार होता था जो संकरी गलियों वाला भीड़भाड़ वाला सर्राफा बाजार था। पुराने ढर्रे की करियाने की दुकानें गुड़ मंडी और काठ मंडी तक सीमित थी।

सर्राफा बाजार जो कभी तंग गलियों में था। आज चौड़ा बाजार कहलाता है। लेकिन बढ़ती जनसंख्या के कारण चौड़ा बाजार की भीड़ में सिसकता रहता है।

शेरशाह सूरी मार्ग (जीटी रोड) कभी शहर के बीचों-बीच से गुजरता था। बढ़ती भीड़ के कारण जो बाद में बाईपास के रूप में बनाया गया। करनाल की फैलावट ने तथाकथित बाहरी राष्ट्रीय राजमार्ग को भी अपनी आगोश में ले लिया, जिससे शहर फिर से दो हिस्सों में बंट गया। अब पुलों के निर्माण से शहर के दोनों भागों की धमनियों को जोड़ा गया है।

1 नवम्बर 1966 को जब हरियाणा प्रांत बना, तब करनाल हरियाणा के हिस्से के सात जिलों में एक था। जिसमें से बाद में 1966 में कुरुक्षेत्र तो 1989 में कैथल तथा 1992 में पानीपत जिला बन गया। शुरूआत में जब करनाल में नियोजित शहरीकरण की शुरूआत हुई तो हाउसिंग बोर्ड कालोनी तथा सैक्टर-13 का विकास होना शुरू हुआ। लोगों ने शुरू में ज्यादा रूचि नहीं दिखाई। केवल कुछ नौकरीपेशा मध्यम वर्ग तथा पुराने शहर के व्यापारी वर्ग ने ही इन सैक्टरों में अपने आशियाने बनाए। लेकिन जब उदारीकरण की हवा यहां के ग्रामीण इलाकों, सरकारी नौकरशाह तथा व्यापारी वर्ग को लगी तो इस सोये से शहर ने करवट लेना शुरू कर दिया। एक के बाद एक सैक्टर बनना शुरू हो गए। जितने भी प्रशासनिक अधिकारी करनाल में आए, ज्यादातर ने करनाल को अपना निवास स्थान बना लिया। देखते ही देखते इन महंगे सैक्टर्स की तरफ झांकना भी मध्यम वर्ग के बूते से बाहर की बात हो गई। लोग आशियाने की तलाश में कुकुरमुत्ते की तरह उग आई अवैध कालोनियों में जाने लगे। आज भी करनाल की करीब 50 अनाधिकृत कालोनियां मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं।

इस दौरान करनाल के व्यापारिक प्रतिष्ठान भी तेजी से बढ़े। लिबर्टी जूतों का कारोबार देश-विदेश में फैल गया। 'सुविधा' एक दुकान से शुरू होकर एक ब्रांड व मॉल-संस्कृति का परिचायक बन गया। कुंजपुरा रोड जो कभी वीरान सी सड़क थी वो आज देशी-विदेशी ब्रांड के शोरूम का बाजार बन गया।

करनाल को 'धान का कटोरा' कहा जाता है। कृषि यंत्रों की मांग को पूरा करने के लिए सैक्टर-3 इंडस्ट्रीयल ऐरिया में ऐसे सैंकड़ों कारखाने हैं।

करनाल के बीचोंबीच से बहने वाली मुगल नहर बाद में गंदे नाले में तबदील हो गई। करनाल विकास ट्रस्ट ने उसका जीर्णोद्धार करके मार्किट में बदल दिया जो आज करनाल की सबसे महंगी मार्किट है तथा उसके नीचे से गंदा नाला बहता है।

गुड़ मंडी व काठ मंडी की पंसारी व करियाने की दुकानें भी अब नए कलेवर व नई सज्जा के साथ हैं। गद्दी पर बैठने वाले बनिए अब कुर्सियों पर आ चुके हैं। हाथ तराजू की जगह इलेक्ट्रोनिक कांटों ने ले ली है। लेकिन आज भी माल-संस्कृति के साथ-साथ पुराने ढर्रे की पंसारी की दुकानें भी मिल जाएंगी।

करनाल शहर ने इन 50 सालों में काफी बदलाव देखे हैं। जिला सचिवालय, तहसील, सैशन कोर्ट अब नए स्थानों पर जा चुके हैं। शहर के सिनेमा घरों को अपनी चहल-पहल खोकर वीरान होते व बैंक्वेट हालों में तबदील होते देखा है। कभी के.आर. प्रकाश, इंदर पैलेस, अशोका व नावल्टी आबाद रहते थे, लेकिन आज केवल नावल्टी सिनेमा ही कामुक फिल्मों के सहारे अपना वजूद बचाने के लिए संघर्ष कर रहा है। अनेक निजी अस्पतालों ने भी अपने पैर पसार लिए हैं। कभी पश्चिमी यमुना नहर जो शहर की पश्चिमी हद को तय करती थी आज शहर के फैलाव को रोकने में खुद को असमर्थ हो गई है। सब्जी मंडी और अनाज मंडी दक्षिणी छोर पर विस्थापित हो चुकी हैं। उनकी जगह पर मल्टी लेवल पार्किंग बनाकर शहर के बाजार को राहत दी जाएगी।

करनाल में स्थित कृषि व पशु संबंधित अनुसंधान संस्थान जिनमें केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, केंद्रीय गेहूं और जौं अनुसंधान संस्थान, राष्ट्रीय पशु अनुवांशिकी संसाधन ब्यूरो, भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान व राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान अपनी भूमिका निभा रहे हैं तथा अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान हो रहे हैं।

शहर के कई गैर सरकारी संगठन भी अपनी गतिविधियां चलाते रहते हैं। कई साहित्यिक संस्थाएं भी साहित्य के साथ-साथ अपने वजूद को जिंदा रखे हुए हैं। सांझा साहित्य मंच, अपना विचार मंच, कारवाने-अदब, अखिल भारतीय साहित्य परिषद इनमें प्रमुख हैं।

भारत सरकार की 'स्मार्ट सिटी' योजना की दौड़ में सड़कों, चौराहों का सौंदर्यकरण किया जा रहा है। नगर निगम द्वारा आधुनिक सार्वजनिक शौचालयों व साईकिल सवारी को बढ़ावा देने के लिए 'सांझी साइकिल' योजना चल रही है। जो स्वास्थ्य के साथ-साथ पर्यावरण के लिहाज से उम्दा शुरूआत है।

करनाल में इन 50 सालों में होटल संस्कृति भी खूब फल-फूल रही है। पांच सितारा होटल नूर महल, करनाल हवेली, होटल ज्वैल्स, डीवेंचर, प्रेम प्लाजा शहर की पहचान बन चुके हैं। करनाल शहर आधुनिकता के साथ अपनी प्राचीन पहचान के साथ भी मजबूती से जुड़ा हुआ है।

सम्पर्क : 9468409948

गुड़गांव से गुरुग्राम तक

❑जगदीप सिंह

भले ही गुड़गांव बतौर नाम अब गुरुग्राम हो जाये लेकिन साइबर सिटी, मिलेनियम सिटी जैसे खिताब उसके साथ जुड़ चुके हैं। इस महानगर की अहमियत व्यावसायिक तौर पर आज दिल्ली से भी कहीं बढ़कर है। अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों ने अपने डेरे इसी गुड़गांव में डाल रखे हैं। लाखों की संख्या में लोगों को रोजगार यह शहर दे रहा है। मारूति, होंडा जैसी कार व दुपहिया वाहन बनाने वाली औद्योगिक कंपनियों से तो यह शहर अक्सर चर्चा में रहता ही है साथ ही टेक्सटाइल उद्योग भी यहां पर प्रमुख उद्योग है।

लेकिन आज जो तस्वीर हमें दिखाई देती है उसमें यदि कहीं एक गाड़ी भी थोड़ी तिरछी हो जाये तो सारा शहर थम सा जाता है। बारिश की चंद बूंदे 24-24 घंटे तक एक जगह खड़े रहने पर मजबूर कर देती है। लेकिन गुड़गांव जैसा खबरों में दिखाई देता है सिर्फ वैसा नहीं है और ना ही यह पहले से ऐसा था। इसे यहां तक पहुंचने में कई दशक लगे हैं।

गुड़गांव में जन्में एक बुजुर्ग ने गुड़गांव गांव के बसने के बारे में बताया कि इस गांव में सबसे पहले कटारिया गोत्र के जाट आकर बसे थे। जो कि मूल रूप से राजस्थान के रहने वाले थे। सबसे पहले आने वाले शख्स कौन थे, और लगभग किस दौर में वे यहां आकर बसे इस बारे में इन्हें पूरी जानकारी नहीं थी।

यह क्षेत्र दिल्ली से बिल्कुल सटा है इसलिये इसकी अहमियत अधिक रही है। जिसका दिल्ली पर शासन रहा है यह क्षेत्र भी उनके अधिकार में ही रहा है। अकबर के समय भी दिल्ली और आगरा के अधीन ही गुड़गांव का शासन चलाया जाता था। 1803 में सिंधिया के साथ सुर्जी अर्जुन गांव संधि से इसका अधिकतर क्षेत्र अंग्रजों के आधिपत्य में आ गया था। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन तक गुड़गांव की तस्वीर में कोई ज्यादा बदलाव नहीं आया था लेकिन 1861 में गुड़गांव जिस जिले का हिस्सा था उसे 5 तहसीलों में बांट दिया गया। इन पांच तहसीलों में एक गुड़गांव भी थी। फिरोजपुर झिरका, नूंह, पलवल, और रेवाड़ी अन्य तहसीलें थी। आजादी के बाद गुड़गांव संयुक्त पंजाब का हिस्सा बना और 1966 में एक अलग राज्य के गठन के बाद यह हरियाणा में शामिल हुआ।

देश की राजधानी का करीब होना गुड़गांव के विकास के लिये वरदान से कम नहीं है। दरअसल इंटरनेशनल एयरपोर्ट की दूरी भी गुड़गांव से अधिक नहीं है जिस कारण यह शहर तेजी से प्रगति के पथ पर बढ़ता रहा और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त करता रहा। गुड़गांव के विकास की पटकथा लिखने का काम लगभग 70 के दशक में ही शुरु हुआ जब मारुति सुजुकी इंडिया लिमिटेड कंपनी ने अपना पहला मैन्यूफैक्चरिंग प्लांट यहां पर खोला। इसके बाद बाकी कंपनियां भी धीरे-धीरे गुड़गांव की ओर रुख करने लगी। मैन्यूफैक्चरिंग में मारुति ने जिस प्रकार दस्तक दी उसी प्रकार रियल एस्टेट में डीएलएफ ने गुड़गांव में अपने पांव पसारने शुरु किये। हालांकि इस समय तक लोग दिल्ली को ही रहने के लिये ज्यादा तरजीह देते लेकिन जिनकी हैसियत थोड़ी कम होती वे गुड़गांव को बतौर विकल्प चुनने लगे।

आज दुनिया की 250 फार्च्यून कंपनियों के दफ्तर यहां पर हैं। पिछले डेढ़ दशक से गुड़गांव ने ऑटो मोबाइल और आईटी हब के रूप में अपनी विशेष जगह बनाई है। वर्तमान में औद्योगिक क्षेत्र में गुड़गांव का सालाना टर्नओवर लगभग 82 हजार करोड़ रुपये हो चुका है। मीडिया की एक रिपोर्ट के मुताबिक यहां बड़े एव मध्यम स्तर के 555 उद्योग हैं। ऑटोमोबाइल, आईटी-बीपीओ, रेडीमेड गार्मेंट, इलेक्ट्रिकल इलेक्ट्रानिक्स एवं लेदर फुटवियर उद्योगों में 5 लाख से ज्यादा लोगों को काम मिला हुआ है।

इस विकास के लिये आस-पास के कितने गांव इस शहर ने देखते देखते निगल लिये, कितने छोटी जोत वाले किसानों को मजदूर बनने पर मजबूर कर दिया, और कितनों को रातों रात अमीर से और अमीर बना दिया इसकी एक झलक हमें जगदीश चंद्र के उपन्यास घास-गोदाम से भी मिल जाती है। यह दिल्ली एनसीआर के आस-पास जमीन अधिग्रहण को लेकर ही लिखा गया उपन्यास है और प्रभावित और परिवर्तित होते जीवन की तस्वीर को दर्शाता है।

गुड़गांव में जहां हाइवे के एक तरफ चमचमाता मिलेनियम सिटी नजर आयेगा, महानगर की छाती पर सांप सी लौटती हुई मैट्रो नजर आयेगी तो वहीं हाइवे की दूसरी तरफ गुड़गांव गांव है जो आपको किसी छोटे कस्बे से भी अविकसित नजर आ सकता है। जहां जरा सी वर्षा के बाद ही आपको घुटनों तक पानी से होकर गुजरना पड़ेगा।

गुड़गांव में विकास तो हुआ है लेकिन यह विकास सामूहिक रूप से नहीं हुआ। जो गुड़गांव गांव असल में गुरुग्राम है उसमें ना सिवरेज की अच्छी सुविधा है ना ही सड़कों की। खेती लायक तो जमीनें यहां कुछ खास नहीं थी लेकिन रियल एस्टेट व उद्योग कंपनियों के आने से जमीनों के रेट आसमान छूने लगे और लोग रातों-रात बंजर जमीनों के भी हीरों से दाम पा गये। मकानों में कुछ अतिरिक्त कमरे बनाकर या फिर अपनी जमीनों पर अलग से मकान बनाकर उन्हें किराये पर चढ़ाने का कारोबार भी यहां खूब फल-फूल रहा है।

हरियाणा में जमा होने वाले कर का 25 फीसदी हिस्सा अकेले गुड़गांव से जमा होता है। प्रदेश के मनोरंजन कर का लगभग 50 फीसद अकेले गुरुग्राम से जमा होता है। गुड़गांव हरियाणा की वित्तीय राजधानी तो बन ही चुका है। प्रतिव्यक्ति आय के हिसाब से गुड़गांव आज तीसरे नंबर पर आ चुका है।

फैक्ट्री उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों से लेकर सूचना तकनीक की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कर्मचारियों तक के जीवन की दिनचर्या लगभग शिफ्टों में सिमटी है। अंतर सिर्फ इतना है कि तकनीकी रूप से शिक्षित बड़े दर्जे के श्रमिकों को मेहनताना और सुविधाएं ज्यादा मिलती हैं। काम के 8 से लेकर 10 घंटे होते हैं। कुछ क्षेत्रों को छोड़कर उनमें एक निश्चित समयावधि में परियोजना को पूरा करने का लक्ष्य होता है। जबकि मजदूरों को 12-12 घंटों तक कठिन शारीरिक परिश्रम करना होता है। दिन भर की हाड़-तोड़ मेहनत के बावजूद एक सम्मानजनक जीवन जीने लायक मेहनताना उनको नहीं मिलता है। एक ओर ये पढ़े लिखे कर्मचारी किश्तों के रूप में अपनी सुख-सुविधा-विलासिता की चीजों को जुटा लेते हैं तो दूसरी ओर ये श्रमिक तबके छोटे-छोटे कमरों

में सामूहिक रूप से ऊंघने लायक जगह जुटा पाते हैं उसमें भी सौ तरह की बंदिशें मकान मालिकों की झेलनी पड़ती हैं।

पिछले दिनों गुड़गांव को केंद्र में रखकर हरियाणावी पृष्ठभूमि की एक फिल्म आई थी नाम भी एन एच-10 था। उसमें गुड़गांव में नायिका के साथ एक हादसा होता है कि वह देर रात कंपनी में काम से लौट रही होती है कि शराब के नशे में धुत कुछ बाइक सवार उसका रास्ता रोकने की कोशिश करते हैं। वह किसी तरह वहां से बच निकलती है और अपने पति, जिसकी पंहुच पुलिस के उच्चाधिकारियों तक होती है, को साथ लेकर पुलिस अधिकारी से मिलती है। पुलिस अधिकारी का एक संवाद है कि 'यह शहर एक बढ़ता हुआ बच्चा है कूद तो मारेगा ही'। फिल्म का यह संवाद सिर्फ फिल्मी नहीं है बल्कि वर्तमान की सच्चाई है।

दिल्ली जयपुर हाइवे से दूसरी ओर की दुनिया एक अलग दुनिया है। यहां आई.टी. कंपनियों में काम करने वाले युवा सप्ताह के अंत पर मनोरंजन के लिये क्लबों में शामें गुजारते हैं। व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन की परेशानियों को कीमती शराब के जाम के साथ पी जाना चाहते हैं। आनंद लेने के ये 'रचनात्मक' तरीके भी खोजते रहते हैं। जिसमें आकस्मिक आनंद के लिये किसी को भी छेड़ने की चुनौती स्वीकार करने से लेकर महिला मित्रों से सामूहिक खिलवाड़ तक।

इसमें सिर्फ बड़ी-बड़ी कंपनियों में अच्छे खासे पैकेज पर काम करने वाले घरों से दूर एकांत जीवन बिताने वाले युवा ही नहीं हैं बल्कि कुछ राजनीतिज्ञों व उच्च अधिकारियों की बिगड़ैल संतानें भी शामिल हैं। इन युवाओं में सिर्फ लड़के शामिल नहीं हैं बल्कि लड़कियां भी संलिप्त होती हैं। एम.जी रोड़ यानी महरौली-गुड़गांव रोड़ पर आभिजात्य वर्ग के इन लोगों के मनोरंजन की तमाम चीजें सुलभ होती हैं। हर शाम यहां देर रात बड़ी-बड़ी गाड़ियों की भीड़ दिखाई दे सकती है। शनिवार को तो यहां का नजारा और भी रंगीन होता है। सिकंदरपुर और एमजी रोड़ मेट्रो स्टेशन पर देर रात सुरक्षा का बड़ा मसला बन जाता है।

आर्थिक विकास के मामले में गुड़गांव ने नये मुकाम हासिल किये हैं, इस शहर में अपराधियों की संख्या भी बढ़ रही है। अपराधियों के संगठित गिरोह यहां सक्रिय रहते हैं।

सम्पर्क: 9416854057

पाठक पाति

अंक 6 में ज्ञान विवेक ने ललित कार्तिकेय को भावभीनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत की है। वाकई ललित भाई एक जुनून की हद तक प्रगतिशील मूल्यों से प्रतिबद्ध थे। धारा प्रवाह वक्ता थे, अकाट्य तर्कों के धनी थे और कभी-कभी रूखे व्यवहार से मित्रों को नाराज करने वाले भी। मैंने उनके साथ अनेक गोष्ठियों में भाग लिया। 'अथ' का कहानी अंक सह सम्पादित किया, सरस्वती विहार दिल्ली तथा वल्लभगढ़ उनके निवास पर जाकर ज्योति भाभी का आतिथ्य स्वीकार किया तथा उन्हें मिस भी किया। हरियाणा में प्र.ले.स. की गतिविधियों में ललित का योगदान भूला नहीं जा सकता।

प्रस्तुत अंक- 7 में गुरदयाल सिंह तथा हरिभजन सिंह रेणु को साहित्य में अमूल्य योगदान के लिए याद किया गया है। गुरदयाल सिंह का आत्मकथ्य तथा रेणू पर पूर्ण मुद्गिल का आलेख इस अंक की विशिष्ट उपलब्धियां हैं। मैंने भी एक आलेख (गुररदयाल की कहानियों पर) प्रयाग के हिन्दी दिवस सम्मेलन (2005) में पढ़ा और उनका संदेश भी जब पढ़ा (जो उन्होंने मुझे फोन पर दिया था।) तो हाल तालियों से गूंज उठा। रेणू जी से भी तीन-चार बार सिरसा में भेंट हुई। वह भी अपनी सादगी और प्रतिबद्धता से अत्यंत प्रभावित करते थे। उनके देहांत के वर्ष साहित्य सभा, कैथल ने उन्हें सम्मानित भी किया। यह सम्मान उनके परिवार ने स्वीकार किया। इन तीनों दिग्गजों को मेरा भी नमन।

'देस हरियाणा' ने रेणु जी की कविताएं देकर उनका सम्मान दो गुना कर दिया है। बहुत अच्छा भाषान्तर हुआ है। नेपाली जी का लंबा गीत, मेघ जी की कविता तथा अन्य सब कविताएं, रागनियां व गजलें श्रेष्ठ बन पड़ी हैं, झकझोरती हैं।

'फेस बुक' तथा 'प्राण प्रतिष्ठा' दोनों कहानियां क्रमश: डिजीटल अप-संस्कृति तथा क्रूर रूढ़िवादिता एवं श्रम के अनादर को बेबाकी से दिखाती है। भाषा के मूल पर चोमस्की के साथ गूढ़ संवाद मुझे याद करा गया। कैसे मैं भी अंग्रेजी भाषा-विज्ञान के छात्रों को चोमस्की के सिद्धांतों पर आधारित Deep Structure, Surface Structure, Generature Grammer तथा Transformational Grammer की मूल अवधारणाएं समझा सका।

अमृत लाल मदान, मो: 9466239164

■■■

देस हरियाणा का सितम्बर-अक्टूबर 2016 का अंक पढ़ने को मिला। सम्पादकीय के बहाने सम्पादक महोदय ने समाज की उस मनोवृति से अवगत करवाया। आज भले ही बेटा बेटी एक समान के कितने ही नारे लगें पर कहीं-न-कहीं आज भी इनमें भेद किया जाता हे। आज भी बेटियों के लिए स्वयं निर्णय लेना एवरेस्ट लांघने जैसा है।

'प्राण प्रतिष्ठा' कहानी में लेखक ने दलितों के प्रति हो रहे अमानवीय व्यवहार को उजागर करके समाज के उन ठेकेदारों से प्रश्न किया है कि जब मंदिर का निर्माण करते समय तो दलित काम करे लेकिन मंदिर बनते ही उन्हें मंदिर में प्रवेश से रोक दिया जाता है। बताइए तब ऐसी कौन सी समस्या आ खड़ी होती है। हरिभजन रेणु की कविताएं एक से बढ़कर एक लगीं।

कमलेश चौधरी ने भौतिकवादी चकाचौंध में डूबे शहरवासियों का जीवों के प्रति संवेदनहीनता का यथार्थ चित्रण अपने अनुभव 'माई दे मलोटा' में किया। शहर वालों के लिए तो यह बात काल्पनिक सी लगने वाली है। शिक्षा के अन्तर्गत जो आलेख दिया वह आज जाति धर्म के आधार पर बंटे समाज का मार्गदर्शन करता है।

सियाराम शरण की कहानी 'काकी' मन को छूती है। बच्चों का भोलापन बाल कहानियों की ताकत होती है। इस कहानी में बच्चों का भोलापन पाठक पर लम्बे समय असर डालने वाला है।

किशनलाल शर्मा की लघु कथाएं जहां प्रकृति पर रहे हो कुठाराघात को उजागर करती है वहीं प्रकृति और मानव के सह संबंधों को दर्शाने का प्रयास करती हैं। आवरण पृष्ठ मनमोहक लगा। सभी लेख ज्ञानवर्धक लगे। सुन्दर अंक के लिए सम्पादक मंडल को बधाई ।

राधेश्याम भारतीय- 93153-82236